साम्ययोगमीमांसा

भाषानुवाद-समन्विता

लेखकोऽनुवादकश्च

प्रो. मुकुटबिहारीलालः

सम्पादकः

राष्ट्रियपण्डित-श्रीव्रजवल्लभद्विवेदः



प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी - २२१ ००१

शोधप्रकाशन-ग्रन्थमाला — २७

साम्ययोगमीमांसा

भाषानुवाद-समन्विता

लेखकोऽनुवादकश्च

प्रो. मुकुटविहारीलालः

काशीहिन्दूविश्वविद्यालये राजशास्त्र-
विभागाध्यक्षचरः

सम्पादकः

राष्ट्रियपण्डित-श्रीव्रजवल्लभद्विवेदः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः

प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी - २२१ ००१

प्रकाशक
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ी मठ
वाराणसी - २२१ ००१

प्रथम संस्करण २००१ ई.

मूल्य : सजिल्द ३५०/-
अजिल्द ३००/-

अक्षर संयोजन
शिव-शक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी

मुद्रक
मित्तल आफसेट
कौसलेश नगर, सुन्दरपुर
वाराणसी

Research Publications Series — 27

SĀMYAYOGAMĪMĀMSĀ

[With Hindi Translation]

by

Prof. Mukut Bihari Lal

Formerly Head, Department of Political Science
Banaras Hindu University, Varanasi

Edited by

Pt. Vrajavallabha Dwivedi

Director, Shaiva Bharati Shodha Pratishthanam

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Published by :
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadi Math
Varanasi - 221 001 (India)

ISBN 81-86768-50-5 (Hb) 81-86768-51-3 (Pb)

First published, 2001

Price : Rs.350 (Hb), Rs.300 (Pb)

Laser Typeset at :
Shiva-Shakti Computer Process
Jangamawadi Math, Varanasi - 221 001

Printed at :
Mittal Offset
Kausalesh Nagar, Sundarpur
Varanasi

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संस्थापक



श्री काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर

श्री १००८ जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी का

शुभाशीर्वचन

धर्मप्रधान हमारे भारत देश में प्राचीन काल से अनेक धर्म विद्यमान हैं। सभी धर्मों का मूल उद्देश्य प्राणिमात्र के लिए शान्ति प्रदान करना ही है। मानव समाज के अभ्युदय एवं नि:श्रेयस के लिए जिन गुण, कर्म और साधनाओं की आवश्यकता है, उन सब को धर्म में देखा जा सकता हैं। इसीलिए धर्म की व्याख्या करते समय वैशेषिकसूत्र में कहा गया है—"यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स: धर्म:"। अन्यत्र भी "पतितं पतन्तं पतिष्यन्तं धारयतीति धर्म:" इस प्रकार धर्म शब्द की व्युत्पत्ति बताई गई है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रमादवशात् पतित हुए, पतित हो रहे और पतित होनेवाले लोगों को उद्धार का अवसर प्रदान कर जो उसका मार्ग बताता है, वह धर्म है। इस प्रकार सभी के उत्थान के लिए ही धर्म प्रवृत्त हुआ है। ऐसे धर्म के संग्रह करने के मार्ग का उपदेश करते हुए जगद्गुरु रेणुक भगवत्पादाचार्य जी ने कहा है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दया क्षमा ।
दानं पूजा जपो ध्यानमिति धर्मस्य संग्रह: ।।

(सि. शि. १६.५९)

अर्थात् अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, दान, पूजा, जप तथा ध्यान ये सभी धर्म-संग्रह के उपाय हैं। इन उपायों को अपने जीवन में लानेवाला व्यक्ति किसी का भी अहित कैसे करेगा? जो किसी का अहित मन में भी नहीं सोचता, उसका स्वयं भी हित ही होगा। इस प्रकार धर्म अपने तथा दूसरों के हित का उपदेश देता है।

आज के वातावरण में आधुनिकता के नाम पर ऐसे सनातन धर्म के प्रति श्रद्धा कम हो रही है। हमारी दृष्टि में यह धर्म भारतीय संस्कृति से समरस है। वस्तुत: विचार किया जाय तो आधुनिक प्रगति के लिए यह धर्म अवरोधक नहीं है, अपि तु प्रेरक ही है। अत: प्रामाणिक प्रगति के लिए प्राचीन भारतीय सनातन धर्म तथा आधुनिक वैज्ञानिक विचार—ये दोनों आवश्यक हैं। इन दोनों का सामंजस्य ही प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल उद्देश्य है। इसीलिए यहाँ पर प्राचीन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित समत्व, कर्मयोग, विश्वभावना, निष्काम सेवा, शील और संयम की तथा अर्वाचीन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीयता, अन्तरराष्ट्रीयता, लोकतन्त्र, संयम, समाजवाद एवं इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या आदि विषयों की पृष्ठभूमि में लेखक ने अपने विचारों को अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त दान, ज्ञान, कौटुम्बिक जीवन, लोकहित, नारीजीवन, विश्वशान्ति, सत्य, शिक्षा आदि मानवसमाज के उत्थान के लिए उपयोगी अनेक विषयों पर पर्याप्त चर्चा इस ग्रन्थ में उपलब्ध है।

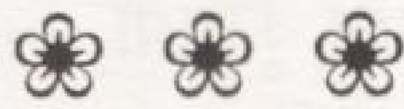
श्री जगद्‌गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान के अधीन कार्यरत शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा विगत आठ वर्षों से श्री महाशिवरात्रि के शुभ पर्व पर प्राचीन आगमों के साथ-साथ अर्वाचीन विद्वानों के ग्रन्थों का भी प्रकाशन हो रहा है। उस शृंखला में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के राजशास्त्र विभाग के कभी प्रोफेसर के रूप में कार्यरत विद्वान् स्व० श्री मुकुट बिहारी लाल जी के संस्कृत भाषा में रचित और उन्हीं के द्वारा हिन्दी भाषा में अनूदित 'साम्ययोगमीमांसा' नामक इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता में साम्य शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। गीता का प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक पर गहरा प्रभाव है। गीता की समन्वयप्रधान दृष्टि का इसमें अनुसरण किया गया है। आज के प्रबुद्ध पाठक को भारतीय विचारों के साथ पाश्चात्य चिन्तकों की मनीषा से भी परिचित कराने का यहाँ प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। ग्रन्थकार अब दिवंगत हो चुके हैं। "काश्यां मरणान्मुक्तिः" इस शास्त्रवचन के अनुसार तथा संस्कृत भाषा और समाज-कल्याण की संवृद्धि में निरन्तर सचेष्ट ऐसे महानुभाव को मुक्तिलाभ होना स्वाभाविक है। हमारे शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के निदेशक, राष्ट्रपति-पुरस्कृत पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने अत्यन्त अवधान पूर्वक इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है। श्री द्विवेदी जी के प्रति भगवान् विश्वेश्वर एवं श्री जगद्‌गुरु विश्वाराध्य जी का अनन्त आशीर्वाद सदैव रहे।

पण्डित श्री नारायणदत्त तिवारी जी ने हमारे अनुरोध पर अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकाल कर इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिख दिया है। आपने स्वतन्त्रता संग्राम के समय आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे भारतीय दर्शन एवं साहित्य-संस्कृति के प्रखर विद्वान् के नेतृत्व में समाजवादी आन्दोलन एवं स्वातन्त्र्य संघर्ष में भाग लिया था और

प्रो. मुकुटबिहारी लाल जी का आप गुरुतुल्य आदर करते हैं। उत्तरप्रदेश में मुख्यमन्त्री पद के अतिरिक्त आपने केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में वित्त, उद्योग और विदेश मन्त्री के रूप में अपनी बहुमुखी योग्यता का प्रदर्शन किया है। भारत के प्रमुख अर्थविशेषज्ञों में इनकी गिनती की जाती है और ये आजकल भारत सरकार की सार्वजनिक लेखासमिति के अध्यक्ष हैं। हम उनके आयुरारोग्य की कामना करते हैं।

संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग में कार्यरत पं. श्री ददन उपाध्याय जी की सूक्ष्म दृष्टि इस प्रकाशन को परिमार्जित रूप दे सकी है। डॉ. जी. सी. केण्डदमठ केन्द्रीय ग्रन्थालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने इस ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण की जिम्मेदारी निभाई है। साथ ही इन्होंने तथा सं. सं. वि. वि. के सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग के प्रवाचक डॉ. शीतलाप्रसाद उपाध्याय ने इस ग्रन्थ के अपूर्ण भाग को सुलभ कराने में सहायता की है। शिव-शक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस में कार्यरत श्री राजशेखर जी. हिरेमठ ने आकर्षण अक्षर-संयोजन एवं परिशुद्ध संस्करण प्रस्तुत कर अपना सराहनीय सहयोग दिया है। इस शुभ अवसर पर हम इन सबको भूल नहीं सकते। इन सबकी मंगलकामनाओं के साथ हम अपना आशीर्वचन पूर्ण करते हैं।

महाशिवरात्रि, २०५७ **इत्याशिषः**



प्राक्कथन

प्रो. मुकुटबिहारी लाल जी संस्कृत भाषा में भी लिखने में पारंगत थे, यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ। सुना अवश्य था, किन्तु उनकी संस्कृत रचनाओं से परिचय मेरा पहली बार हुआ, जब प्राक्कथन लिखने के लिये उनकी साम्ययोगमीमांसा नामक पुस्तक मेरे पास आई। भारतीय संस्कृति के नवनिर्माण में प्राचीन भारतीय साहित्य और आधुनिक पाश्चात्य विचारों से क्या लिया जा सकता है, इस विषय में प्रोफेसर साहब ने बहुत कुछ लिखा है। आचार्य नरेन्द्रदेव जी के साथ मिलकर इन्होंने अभिनव भारतीय संस्कृति के निर्माण में महनीय सहयोग किया है। आचार्य जी का और प्रोफेसर साहब का यह निश्चित मत था कि हमें एक ऐसी संस्कृति का विकास करना है, जिसका मूल प्राचीन सभ्यता में हो, जिसका रूप-रंग देशी हो, जिसमें पुरातन संस्कृति के उत्कृष्ट अंश सुरक्षित हों और साथ-साथ उसमें ऐसे नवीन अंशों का भी समावेश हो, जो आज जगत् में प्रगतिशील हैं और संसार के सामने नवीन आदर्श उपस्थित करते हैं। इनके प्रस्तुत ग्रन्थ में ये विचार मूर्त रूप धारण कर हमारे सामने आये हैं।

जैसा कि मैंने देखा, इनकी तीन कृतियों — समाजवादसाहस्री, समाजदर्शनम् और कल्याणोत्कर्षसत्पथम् —को मिलाकर यह नाम दिया गया है। इनका हिन्दी अनुवाद भी प्रोफेसर साहब ने ही किया है। यह भी संयोग ही रहा है कि अपनी इन विभिन्न रचनाओं की एक परिचयात्मक प्रस्तावना भी लिखकर इन्होंने छोड़ रखी थी। मेरा आग्रह है कि इस पुस्तक को पढने से पहले पाठक समाजवाद के इस विशिष्ट विद्वान् की प्रस्तुत प्रस्तावना को अवश्य पढ लें। विद्वान् लेखक ने अपनी पुस्तक का परिचय स्वयं ही इस तरह से दिया है — प्राचीन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित समत्व, कर्मयोग, विश्व-भावना, निष्काम सेवा, शील और संयम तथा अर्वाचीन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्टीयता, लोकतन्त्र और समाजवाद एवं इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या ही इस पुस्तक में प्रतिपादित विचारों के मूल आधार हैं। मनुष्यता का समुचित आदर और उसका सर्वांगीण विकास ही पुस्तक का मूल मन्त्र है, मानवमात्र का अभ्युदय ही इसका लक्ष्य है।

ग्रन्थ के परिशिष्टों में दी गई प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थ-ग्रन्थकारों की नामावली को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थकार ने प्राच्य और पाश्चात्य शास्त्रों का कितना गहरा अध्ययन किया है। भाषानुवाद के बीच-बीच में दी गई टिप्पणियों में प्रतिपादित महत्त्वपूर्ण विषयों की सूचना ग्रन्थ के प्रारंभ में दी गई टिप्पणी-गत विषयसूची से मिल

जाती है। हमारी दृष्टि में वासना का क्षय अथवा शोधन, कर्तव्य और अधिकार (प्राचीन एवं नवीन दृष्टि), लोकसेवक और राजनीतिज्ञ, लोकनेता, समाजवाद का सांस्कृतिक लक्ष्य जैसी टिप्पणियों का आजकल के वातावरण में विशेष महत्त्व है। मेरा निश्चित मत है कि न केवल सांस्कृतिक, अभिनव भारत की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान में भी इस ग्रन्थ की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

यह आश्चर्य की ही बात है कि एक धार्मिक संस्था ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित कराया है। कर्णाटक के वीरशैव धर्म-दर्शन से संबद्ध वाराणसी स्थित जंगमवाड़ी मठ के वर्तमान मठाधीश डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी ने अभी कुछ वर्ष पहले शैवभारती शोध-प्रतिष्ठान की स्थापना की है। यहाँ से प्रधान रूप से उन शैवागमों का प्रकाशन और उन पर शोध कार्य हो रहा है, जिनके अनुसार शैव दीक्षा में मानवमात्र का अधिकार मान्य है। इस प्रतिष्ठान के निदेशक एवं प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी तन्त्रागमशास्त्र और भारतीय दर्शन के महनीय विद्वान् पद्मविभूषण पं. गोपीनाथ कविराज जी के शिष्य हैं। भारतीय संस्कृति इनके अध्ययन का प्रिय विषय रहा है। आचार्य नरेन्द्रदेव एवं प्रो. मुकुटबिहारी लाल के ये निकट सम्पर्क में रहे हैं। प्रोफेसर साहब की इस रचना को प्रकाश में लाने के लिये मैं डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी के प्रति सादर आभार प्रदर्शित करता हूँ।

महाशिवरात्रि, २०५७ वि. **नारायणदत्त तिवारी**



प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय संस्कृति और अर्वाचीन संस्कृति के सजीव प्रगतिशील तत्त्वों का सामंजस्य ही इस पुस्तक का मूल उद्देश्य है । इस प्रयास का आधार लेखक का यह विश्वास है कि प्राचीन और अर्वाचीन दोनों में से किसी का भी सर्वथा परित्याग असंभव है । भारतीय संस्कृति के दीर्घकालीन सर्वजनीन सजीव मूल्यों और तत्त्वों का पाश्चात्य संस्कृति के सजीव प्रगतिशील तत्त्वों और वैज्ञानिक उपलब्धियों का सजीव मेल सांस्कृतिक प्रगति के लिये आवश्यक है । आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में हमें एक ऐसी संस्कृति का विकास करना है, *जिसका मूल प्राचीन सभ्यता में हो, जिसका रूप-रंग देशी हो, जिसमें पुरातन संस्कृति के उत्कृष्ट अंग सुरक्षित हों और साथ-साथ उसमें ऐसे नवीन अंशों का भी समावेश हो, जो आज जगत् में प्रगतिशील हैं और संसार के सामने नवीन आदर्श उपस्थित करते हैं ।*

प्राचीन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित समत्व, कर्मयोग, विश्व-भावना, निष्काम सेवा, शील और संयम तथा अर्वाचीन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता, लोकतन्त्र और समाजवाद एवं इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या ही इस पुस्तक में प्रतिपादित विचारों के मूल आधार हैं । मनुष्यता का समुचित आदर और उसका सर्वांगीण विकास ही पुस्तक का मूल मन्त्र है, मानवमात्र का अभ्युदय ही इसका लक्ष्य है ।

लेखक के विचार में इस साम्य-वैषम्य मिश्रित संसार में वैषम्य का सर्वथा परित्याग असम्भव है । विषमता और विभिन्नता प्रकृति और जीवन दोनों के अनिवार्य अंग हैं । विभिन्नता प्रकृति तथा सामाजिक जीवन की शोभा और लक्षण हैं । संसार का अस्तित्व विभिन्नता में है । पर विषमता और विभिन्नता में अन्तर्हित समत्व ही मूल तत्त्व है । इसका दर्शन, अभिव्यक्ति और अनुसरण जीवन के उत्कर्ष एवं समाज के विकास के लिए नितान्त आवश्यक हैं । समत्व की भावना मनुष्यत्व का लक्षण, मानव-स्वभाव का सर्वोत्कृष्ट गुण है । इसका सर्वांगीण विकास ही अभ्युदय और निःश्रेयस की साधना है । समत्व का दर्शन ही जीवन की सर्वोत्कृष्ट सिद्धि है । समत्व पर आश्रित व्यवहार ही सत्पुरुषों का क्रिया-कलाप है ।

लोभ और अहंकार समत्व के शत्रु तथा जीवन के सर्वश्रेष्ठ उत्कर्ष में बाधक हैं । दोनों ही अज्ञान के सहचर तथा सब अनर्थों और दोषों के अधिष्ठान हैं । लोभ और

अहंकार का परित्याग तथा समत्व की नैसर्गिक भावना का विकास ही मानव का पुनीत कर्तव्य है । इसीमें उसका मनुष्यत्व है । यही उसके जीवन की परख है ।

लोभ और अहंकार के कारण प्राकृतिक विषमता ने सामाजिक जीवन में अप्राकृतिक विनाशकारी रूप धारण कर लिया है । सारा समाज अन्याय, आधिपत्य, संघर्ष, शोषण और अशान्ति से ग्रस्त है । मनुष्यत्व और बन्धुत्व का सर्वांगीण विकास असंभव हो गया है । सार्वजनिक जीवन भी व्यापार में परिणत हो गया है । निष्काम लोकसेवा सैद्धान्तिक कल्पना समझी जाने लगी है । इस विनाशकारी परिस्थिति का समत्व द्वारा परिशोध समाज की प्रगति तथा मानवीय जीवन के उत्कर्ष के लिए नितान्त आवश्यक है । विषमता और विभिन्नता के मौलिक भेद को ध्यान में रखते हुए विभिन्नता की पृष्ठभूमि में समत्व तथा निष्काम सेवा की पवित्र भावना के आधार पर समाज का पुनर्निमाण युग की पुकार तथा मानव की प्रगति की माँग है । सामाजिक विषमताओं का यथासंभव परित्याग, विभिन्न मानव शक्तियों की अभिव्यक्ति की समुचित सुविधा, समत्व की साधना एवं निष्काम सेवा समाज की प्रगति, अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए नितान्त आवश्यक हैं।

अतीत में भारतीय विद्वानों ने पौरुष और दैव के पारस्परिक सम्बन्धों की विस्तार से समीक्षा की है । उनके कतिपय वाक्यों के आधार पर बहुत-से सज्जनों ने भाग्य, अर्थात् दैव को ही भारतीय संस्कृति का प्रमुख सिद्धान्त मान रखा है । पर वास्तव में दैव के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए पुरुषार्थ के महत्त्व का प्रतिपादन करना ही अधिकांश प्राचीन विद्वानों का लक्ष्य रहा है । उनके विचार में संसार कर्मभूमि है, मनुष्ययोनि कर्मयोनि है, सृष्टि में मनुष्यत्व ही सर्वश्रेष्ठ है, कर्म ही प्रमुख है। दैव तो पूर्वसंचित कर्मों का ही नाम है, सत्कर्मों के द्वारा दुर्दैव को जीता जा सकता है, जीवन के सर्वार्थों को सिद्ध किया जा सकता है, मनुष्यत्व का विकास करते हुए समत्व की सिद्धि करके परमानन्द की प्राप्ति की जा सकती है । इन विचारों की पुष्टि और इनके आधार पर सत्कर्मों का अनुष्ठान भारतीय समाज की प्रगति तथा जनजीवन के उत्कर्ष के लिए आवश्यक है ।

भारतीय संस्कृति में समत्व की सिद्धि के अनेक मार्ग बताये गये हैं । लेखक के विचार में कर्मयोग ही इनमें सर्वोत्तम है । इसके द्वारा सांसारिक समृद्धि और आध्यात्मिक निःश्रेयस दोनों की सिद्धि संभव है । विश्वकल्याण के निमित्त साम्यभाव एवं निष्काम कर्म जीवनसिद्धि और सामाजिक कल्याण का सर्वश्रेष्ठ सुलभ साधन है। शुकदेव और शंकराचार्य आदि कतिपय विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न महापुरुष बचपन में ही संन्यास को ग्रहण करने के अधिकारी हो सकते हैं, पर जनसाधारण के लिए गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता स्वीकार करना नितान्त आवश्यक है । कौटुम्बिक कर्तव्यों की उपेक्षा तथा सामाजिक जीवन का

तिरस्कार सर्वथा हानिकर है । संसार में रहकर प्रकृतिजन्य गुणों का उपभोग करते हुए मानव धीरे-धीरे संयम, ज्ञान और सत्कर्मों के द्वारा अपनी सद्भावनाओं को परिपुष्ट तथा अपने मनुष्यत्व का विकास कर सकता है । नैतिक गुणों का विकास तो समाज में ही संभव है । संयमी पुरुष संसार में रहते हुए अपना जीवनोत्कर्ष कर सकता है; संयम-विहीन व्यक्ति जंगल में रहकर भी कुछ नहीं कर सकता । संसार की झंझटों से घबड़ाकर संन्यास के अलंकार ग्रहण कर लेना सर्वथा निरर्थक है । **कषायों** के परिपक्व होनों पर संन्यास ग्रहण किया जा सकता है । पर समत्व की सिद्धि, लोकात्मोत्कर्ष की अभिवृद्धि और स्वार्थ का त्याग ही संन्यास के ध्येय हैं ।

लेखक का निश्चित मत है कि व्यक्ति और समाज का गहरा सम्बन्ध है । जहाँ मनुष्य के वैयक्तिक जीवन का प्रभाव समाज पर पड़ता है, वहाँ सामाजिक व्यवस्था और परिस्थिति का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है । जहाँ समाज के संचालन, उत्कर्ष और कल्याण के लिए विद्याशीलसम्पन्न कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति परम आवश्यक है, वहाँ व्यक्ति के नैतिक उत्कर्ष और कल्याण के लिए स्वच्छ सामाजिक वातावरण आवश्यक होता है । मनुष्य की सहज सामाजिक प्रवृत्तियाँ अच्छे समाज में ही ठीक तौर पर विकसित और प्रफुल्लित होती हैं । बुरे समाज में तो वे कुण्ठित रहती हैं । मनुष्य का जीवन विकृत हो जाता है, मानव दानव बन जाता है । जनसाधारण के लिए आदर्शों की साधना उन आदर्शों पर आश्रित समाज-व्यवस्था और सामाजिक परिस्थिति में ही सुलभ होती है । हाँ, कुछ विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न, कर्तव्यनिष्ठ महापुरुष प्रतिकूल परिस्थिति में भी उनसे संघर्ष करते हुए जीवन में नैतिक आदर्शों को आत्मसात् कर सकते हैं ।

लेखक के विचार में स्वार्थप्रेरित अर्थ-व्यवस्था में लोभ की प्रवृत्ति पुष्ट और बलवती होती है, वह जीवन की अधिकांश प्रक्रियाओं का आधार बन जाती है, निजी लाभ की प्रेरणा ही मानव की प्रकृति समझी जाने लगती है, निजी सम्पत्ति मनुष्य के उत्कर्ष और कल्याण का मापदण्ड बन जाती है । ऐसे समाज में धनी निन्यानवे के फेर में और गरीब रोटी की चिन्ता में फँसा रहता है । लोभ में फँसे व्यक्ति के लिए लोकहित की सच्ची साधना असंभव है । वह तो स्वार्थ की सिद्धि को ही परम पुरुषार्थ समझता है, लोकार्थ को भी स्वार्थ-बुद्धि से करता है और लोकहित की प्रक्रियाओं को भी स्वार्थ की सिद्धि का साधन बनाने का प्रयास करता है । वह सामाजिक उत्तरदायित्व और अधिकार का लोकहित को पुष्ट करने के बजाय, निजी स्वार्थ की सिद्धि में प्रयोग करता है । ऐसे समाज में समत्व की चर्चा भी निरर्थक ही है । निःसन्देह शोषक और शोषित की, अमीर और गरीब की समता केवल विडम्बना है । स्वार्थ-संघर्षों और विषमताओं से ग्रस्त समाज में जनसाधारण के लिए समत्व और लोकहित की आराधना बहुत कठिन है । यही कारण

है कि हजारों वर्षों तक समत्व और लोकहित का पाठ पढ़ने के बाद भी लोकहित के बजाय स्वार्थ ही हमारे जीवन की प्रमुख प्रेरणा है तथा हमारे व्यवहार और आचारसंहिता में समता का कोई स्थान नहीं है ।

इस विषम परिस्थिति का परिशोध समत्व, लोकतन्त्र और लोककल्याण की भावना द्वारा ही हो सकता है । इसके आधार पर संगठित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में ही जनसाधारण के अभ्युदय और निःश्रेयस की समन्वित सिद्धि और मानव-व्यक्तित्व का सर्वोच्च उत्कर्ष सम्भव है । समसमाज ही समत्व की सामाजिक अभिव्यक्ति है । समसमाज में ही वर्गसंघर्ष को समाप्त कर समत्व के आधार पर व्यक्तियों का पारस्परिक मानवीय संबन्ध प्रतिष्ठित किया जा सकता है । समाजवाद की आर्थिक व्यवस्था में ही निजी लाभ और लोभ के बजाय लोकहित और समसुख आर्थिक प्रक्रियाओं का आधार बन सकते हैं, राष्ट्रोत्कर्ष द्वारा व्यक्तियों को अपने व्यक्तिगत समोत्कर्ष की प्राप्ति हो सकती है । लोकतान्त्रिक व्यवस्था में ही जनसाधारण के लिए स्वतन्त्रता और समता का उपभोग सम्भव है । ऐसी व्यवस्था में ही जनता अपने भाग्य की विधाता और अपने राष्ट्र की निर्माता बन सकती है । मानवता और विश्वकल्याण की भावना पर आश्रित भौमिक राष्ट्रियता एवं उदार देशबन्धुत्व द्वारा ही साम्प्रदायिक कलह और विद्वेष से छुटकारा संभव है, राष्ट्रोत्कर्ष को मानवमात्र के उत्कर्ष का साधन बनाया जा सकता है, राष्ट्रहित और विश्वकल्याण में सामंजस्य प्रतिष्ठित किया जा सकता है ।

लेखक का विचार है कि समसमाज का समाजवादी आन्दोलन आर्थिक और राजनीतिक के साथ-साथ मानवीय और सांस्कृतिक आन्दोलन है और उसके सही स्वरूप की व्याख्या के लिए उसकी आर्थिक और राजनीतिक धारणाओं और ऐतिहासिक विश्लेषण के साथ-साथ उसके नैतिक और सांस्कृतिक स्वरूप का ज्ञान भी आवश्यक है । इस पुस्तक के लेखक के विचार में समाजवादी संस्कृति भारतीय संस्कृति के सार्वजनिक सिद्धान्तों और तत्त्वों के बहुत हद तक समरस है । अहंकार, लोभ और अन्याय का परित्याग, समत्व की सिद्धि, निष्काम भावना, लोकहित की वृद्धि, कर्तव्यपरायणता, विनय, करुणा और शील प्राचीन भारतीय संस्कृति के दीर्घकालीन सार्वजनिक तत्त्व हैं । समाजवाद इन सब सिद्धान्तों का समर्थन करता है । वह स्वीकार करता है कि निष्काम लोकहित ही समत्व की सिद्धि का सुगम मार्ग है, निष्काम सेवा ही लोकहितकारी तप है, कर्तव्यपरायणता ही सर्वश्रेष्ठ व्रत है, लोभ और अहंकार का त्याग ही सच्चा त्याग है, निजी लाभ के मोह को छोड़ कर संयम के साथ सुनियोजित ढंग से लोकहित की वृद्धि ही यज्ञ है, करुणा तथा विश्वबन्धुत्व, समता, न्यायनिष्ठा और पराक्रम ही मनुष्यत्व के सद्गुण हैं । समाजवाद की यह भी धारणा है कि समत्व की नींव पर आश्रित समाजवादी व्यवस्था और संस्कृति में ही सार्वजनिक मानवीय मूल्यों का पूर्ण विकास और जनसाधारण

के लिए उनकी उपलब्धि संभव है । सामन्तवादी और पूँजीवादी प्रथा में थोड़े-से साधु-सन्त ही दूषित परिस्थितियों के कुप्रभाव से अपने को बचाकर इन सर्वजनीन मूल्यों को अपने जीवन में सिद्ध कर सकते हैं ।

लेखक ने अपनी कई पुस्तकों में समाजवाद के सांस्कृतिक और नैतिक सिद्धान्तों की संक्षेप में व्याख्या करते हुए उसके आर्थिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक पक्ष की विस्तार से विवेचना की है । कुछ लेखों में समाजवाद के नैतिक सिद्धान्तों का भी विश्लेषण किया गया है । इस पुस्तक में समाजवाद के आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्तों की संक्षेप में चर्चा करते हुए और सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाली शक्तियों की समीक्षा करते हुए समसमाज, लोकतन्त्र और राष्ट्रीयता के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों और सिद्धान्तों पर विशेष ध्यान दिया गया है । इन मूल्यों और सिद्धान्तों के आधार पर काफी विस्तार के साथ शिक्षार्थी, शिक्षक, शिक्षित, राष्ट्रनिष्ठ नागरिक, लोकनेता, लोकसेवक, लोकतान्त्रिक सार्वजनिक कार्यकर्ता, शासक, गृहिणी, साधु-संन्यासी और सत्पुरुषों के विशिष्ट सद्गुणों की तथा राज्य, न्याय, आर्थिक व्यवस्था, शिक्षापद्धति, गृहस्थ आदि के नैतिक लक्षणों की विवेचना की गयी है ।

विचारों, भावों और वाक्यों की पुनरावृत्तियों को दूर करने के लिए लगभग २०० श्लोक इस पुस्तक में शामिल नहीं किए गये हैं, फिर भी कतिपय मूल सिद्धान्तों और विचारों की पुनरावृत्तियाँ इनमें पायी जाती हैं । विभिन्न सन्दर्भों में इस प्रकार की पुनरावृत्तियाँ बहुत हद तक भारतीय साहित्यकारों की दृष्टि में क्षम्य भी हैं । इस पुस्तक में इतनी पुनरावृत्तियाँ कहाँ तक क्षम्य हैं, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकते हैं । लेखक तो इसके लिए क्षमाप्रार्थना ही कर सकता है ।

लेखक का छन्दशास्त्र का ज्ञान नगण्य तथा संस्कृत साहित्य और व्याकरण का ज्ञान बहुत सीमित है । प्राचीन शास्त्रों और ग्रन्थों के व्याख्यांशों की सहायता से भी वह जिन श्लोकों की रचना कर पाया था, उनमें से भी बहुतों में छन्द की त्रुटियाँ और कुछ में व्याकरण की त्रुटियाँ रह गयी थीं । इन त्रुटियों के निराकरण के लिए लेखक काशीस्थ ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी महेश्वरानन्द जी का, जो पूर्वाश्रम में संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् पण्डित महादेव पाण्डेय जी के नाम से विख्यात थे, बहुत आभारी है । काशी विश्वविद्यालय के एक सह-अध्यापक के नाते लेखक का स्वामी जी महाराज के उनके पूर्वाश्रम में घनिष्ठ और मधुर सम्बन्ध था । स्वामी जी महाराज ने जिस सहृदयता, प्रेम और योग्यता के साथ लेखक के विचारों और भावों को मान्यता प्रदान करते हुए तथा लेखक द्वारा प्रयुक्त शब्दों और वाक्यों को भी यथासंभव सुरक्षित रखते हुए त्रुटियों का निराकरण किया है, उसके लिए वह उनका बहुत ही कृतज्ञ है ।

स्वामी जी महाराज के निरन्तर प्रोत्साहन और सहयोग के बिना इस अल्पज्ञ लेखक के लिए प्राचीन समत्वयोग और अर्वाचीन लोकतान्त्रिक समाजवाद के सिद्धान्तों की कड़ी के रूप में इस पुस्तक को प्रस्तुत करना कदापि संभव न होता। अपने इस प्रयास में लेखक कहाँ तक सफल हुआ, इसका निर्णय तो तत्त्वज्ञ ही कर सकते हैं। लेखक को तो स्वामी जी महाराज का आशीर्वाद और विचारशील पाठकों की सद्भावना ही उसके प्रयत्न का पर्याप्त पुरस्कार है।

इस पुस्तक में बहुत-से विचारों और सिद्धान्तों का समावेश है। पर शायद ही कोई ऐसा सिद्धान्त या विचार हो, जिसे लेखक का मौलिक विचार या सिद्धान्त कहा जा सके। सभी विचारों के लिए वह उन प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों का आभारी है, जिन्होंने उनको प्रतिपादित और पुष्ट किया तथा उनका परिमार्जन और परिशोधन किया। उन सबके प्रति वह कृतज्ञता प्रकट करता है। उन ग्रन्थकारों का वह विशेष रूप से कृतज्ञ है, जिनके उद्धरण इस पुस्तक में दिये गये हैं। अधिकांश उद्धरण मूल ग्रन्थ से ही लिए गये हैं। पर कुछ उद्धरण संग्रह-ग्रन्थों से भी लिए गये हैं, जिनमें डाक्टर भिक्खनलाल आत्रेय का "योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त", पण्डित नारायणराम आचार्य द्वारा संपादित "सुभाषितरत्नभाण्डागारम्", डॉ. मंगलदेव शास्त्री द्वारा संकलित "सुभाषित-सप्तशती" तथा गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा संगृहीत "सूक्तोक्तिसुधासागर" प्रमुख हैं। लेखक इनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। अर्वाचीन विचारों के सम्बन्ध में कोई उद्धरण नहीं दिए गये हैं। पर उन सबके लिए वह अनेक पाश्चात्य विद्वानों के साथ-साथ आचार्य नरेन्द्रदेव का विशेष रूप से आभारी है, जिन्होंने इस देश में उन्हें प्रसारित और पुष्ट किया और भारतीय संस्कृति में उनका समावेश राष्ट्र के उत्थान तथा जीवन के उत्कर्ष के लिए परम आवश्यक बताया। इस लेखक द्वारा लिखी पुस्तक "आचार्य नरेन्द्रदेव युग और नेतृत्व" के अन्तिम अध्यायों की सहायता से इन विचारों का अधिक विस्तार के साथ अध्ययन किया जा सकता है।

मुकुट बिहारी लाल



सम्पादकीय वक्तव्य

प्रोफेसर साहब श्री मुकुटबिहारी लाल जी की संस्कृत भाषा में रचित और उन्हीं के द्वारा हिन्दी भाषा में अनूदित रचना को **साम्ययोगमीमांसा** के नाम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें विचित्र सा अनुभव हो रहा है। प्रोफेसर साहब हिन्दू विश्वविद्यालय में राजशास्त्र विभाग से संबद्ध थे। इस विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना मदनमोहन मालवीय के प्रति तो वे श्रद्धावनत थे ही, महात्मा गाँधी की विचारधारा से भी वे पूर्ण रूप से प्रभावित थे। आचार्य नरेन्द्रदेव के साथ तो उनका परिपूर्ण सौहार्द था। इन सबके विषय में उन्होंने कुछ न कुछ लिखा है।

महामना मालवीय जी के सम्पर्क में आने से इनका प्राचीन भारतीय राजशास्त्र से गहरा लगाव हो गया और इसके कारण ही उन्होंने संस्कृत भाषा का भी पर्याप्त ज्ञान संचित किया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और उसकी टीकाओं के साथ राजशास्त्र के प्राचीन अन्यान्य ग्रन्थों का तथा महाभारत शान्तिपर्व और संस्कृत महाकाव्यों में प्रसंगवश प्रतिपादित भारतीय राजशास्त्र की विविध विधाओं का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया था। इस ज्ञान का उन्होंने किस तरह से उपयोग किया, यह तो हमारी जानकारी में नहीं है, किन्तु तदाधारित संस्कृत भाषा में निबद्ध उनके विचारों को हमने सुना-सुनाया और संस्कृत साप्ताहिक 'गाण्डीवम्' में उनको प्रकाशित भी कराया था।

आचार्य नरेन्द्रदेव के "बौद्ध धर्म-दर्शन" ग्रन्थ के प्रकाशन के क्रम में पण्डित श्री जगन्नाथ उपाध्याय जी के साथ मुझे भी आचार्य जी के नजदीक जाने का अवसर मिला था। राजनीति का मेरे ऊपर कोई प्रभाव न होने से लोकमान्य जयप्रकाश नारायण और खाटी समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे महानुभावों से तो मेरा कोई सम्पर्क न हो सका, हाँ दो महानुभावों— प्रोफेसर साहब तथा प्रो. राजाराम शास्त्री जी के सांनिध्य में मैं अवश्य आ सका। ये दोनों ही महानुभाव आधुनिक समाजवादी दृष्टि के साथ भारतीय संस्कृति के समग्र रूप से भी पूरी तरह से समरस थे।

भारतीय संस्कृति के प्रति मुझमें रुचि जगाने वाले महानुभाव डॉ. मंगलदेव शास्त्री जी थे। ये काशी के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के प्रिंसिपल थे और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना में इनका महनीय अवदान था। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन की अध्यक्षता में इन्होंने भारतीय संस्कृति परिषद् की स्थापना की थी और उसका प्रथम अधिवेशन प्रयागराज में महाकुंभ के अवसर पर सन् १९४८ में त्रिवेणी तट पर

हुआ था । उसमें हमलोग भी संमिलित हुए थे । शास्त्री जी के संस्कृति संबन्धी ग्रन्थों के विषय में अन्यत्र लिखा जा चुका है । प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने भी इनके ''सुभाषित-सप्तशती'' नामक ग्रन्थ की चर्चा की है ।

संस्कृति विषयक मेरा पहला निबन्ध ''भारतीयसंस्कृतेर्विनियोग:'' सारस्वती सुषमा (व. ७, अ. २, संवत् २००९) में छपा था । तन्त्रयात्रा (पृ. १७५-१८०) में इसका पुन: प्रकाशन हुआ है । भारतीय संस्कृति में विश्व संस्कृति के बीज छिपे हुए हैं । उनको उजागर करना ही संस्कृति-संबन्धी मेरे अनुशीलन का मुख्य लक्ष्य रहा है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार पुरुषार्थ ही इसके मुख्य आधार हो सकते हैं और त्याग, तपस्या, सहिष्णुता एवं समन्वय के मजबूत पायों पर यह संस्कृति-प्रासाद खड़ा हो सकता है । इसीलिये राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के कामशास्त्र की निन्दा[१] करने पर हमने उसका प्रतिवाद किया था । संस्कृत भाषा में लिखी गई इस तरह की टिप्पणियों एवं निबन्धों का ''तन्त्रयात्रा'' और ''निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्'' नामक संस्कृत ग्रन्थों के 'विचारविप्रुष:' एवं 'संस्कृतिसाहित्यम्' नामक विभागों में तथा हिन्दी भाषा में लिखे गये निबन्धों का संग्रह ''आगम और तन्त्रशास्त्र'' के संस्कृति खण्ड में एवं ''निगमागमीय संस्कृति'' में यथास्थान हुआ है । ''भारतीय संस्कृति के नये आयाम'' नामक एक ग्रन्थ भी हमारा इधर प्रकाशित हुआ है । निगमागम की अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ इसमें इनकी परस्पर अनुस्यूतता भी प्रदर्शित है । इसी ग्रन्थ की प्रस्तावना में हमने इसे स्पष्ट किया है कि समन्वय संस्कृति में होगा, धर्मों में नहीं । अब हम यह कहने की स्थिति में हैं कि स्मार्त तन्त्रों की पद्धति से हम पंचायतन पूजा जैसे माध्यमों से धार्मिक दृष्टि में भी उदारता का प्रवेश करा सकते हैं । महात्मा गाँधी ने प्रार्थना-सभा के रूप में एक अच्छा कदम बढाया था ।

''आत्मनि सति परसंज्ञा'' इत्यादि उक्तियों के माध्यम से रागद्वेष जैसे दोषों से छुटकारा पाने के लिये बौद्ध दार्शनिक आत्मा को ही अस्वीकार कर देते हैं । दूसरी तरफ ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना के विकास के लिये, परिमिताहन्ता को विश्वाहन्ता में विकसित करने वाले दर्शनों का भी यहाँ प्रादुर्भाव हुआ । क्षणिकवादी मान्यताओं ने चिरस्थायी स्मारकों का निर्माण किया और दूसरी तरफ नित्य आत्मेश्वरवादी मान्यता सब-कुछ अग्नि को समर्पित कर देती है । वर्तमान समय में सीमान्त की बौद्ध प्रजा पर बौद्धेतर कर्मकाण्डों का प्रभाव देख कर कुछ लोग परेशान हो उठते हैं, जब कि अन्य विचारक इसको समन्वयात्मक दृष्टिकोण के आधार पर विकसित पंचायतन पूजापद्धति का अंग

---

१. प्रथमत: ''सारस्वती सुषमा'' में संपादकीय टिप्पणी के रूप में प्रकाशित ''कामशास्त्रगर्हा'' का ''तन्त्रयात्रा'' (पृ. २११-२१२) में पुन: प्रकाशन हुआ है ।

मानते हैं। जैन धर्म का अनेकान्तवाद भारतीय राष्ट्रीयता के अधिक अनुकूल है, किन्तु राष्ट्रवाद के विघटन में संलग्न पाश्चात्य दृष्टि के साथ ही उनसे प्रभावित भारतीय बुद्धिजीवियों की दृष्टि भी अतीव संकीर्ण हो गई है।

आज सर्वधर्म-समभाव की नहीं, सर्वधर्म-समादर की अपेक्षा है। सभी धर्मों के प्रति आदरभाव को रखते हुए भी हमें तर्क को उनका अनुचर न मानकर उसके सहारे विश्व में वर्तमान सभी धर्मों की समीक्षा करनी चाहिये। तन्त्रागमशास्त्र की सभी शाखाओं में निर्दिष्ट षडंग योग में तर्क का विशिष्ट स्थान है। "तर्कमृषिं प्रायच्छन्" यह निरुक्तकार यास्काचार्य की उक्ति है। इनका स्थिति-काल पाणिनि से पहले माना जाता है। इसी तर्क का सहारा लेकर हम भी मीमांसाशास्त्र की आवाप और उद्वाप की पद्धति से "पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्" महाकवि कालिदास की इस उक्ति का अनुसरण कर पुरातन कालातीत तत्त्वों का परित्याग और नूतन उपादेय तत्त्वों का परिग्रह कर अभिनव भारतीय संस्कृति के निर्माण का पथ प्रशस्त कर सकते हैं। भारत में एकाधिक बार इस प्रक्रिया का सफल परीक्षण हो चुका है। प्रोफेसर साहब ने भी अपने ग्रन्थ में इसी पद्धति का अनुसरण किया है।

प्राचीन भारत में 'श्रमणब्राह्मणम्' की जो स्थिति बनाई गई थी, कुछ वैसी ही स्थिति वर्तमान में भी नाना प्रकार के नारों के माध्यम से जगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। हम तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन के प्रथम भाग की प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैं कि व्याकरणशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में यह उदाहरण नहीं मिलता। वही स्थिति आज प्रचलित इन नारों की भी है। अधुना उपलब्ध एक हजार वर्ष पहले के संस्कृत साहित्य में हिन्दु शब्द संभवत: नहीं मिलेगा, किन्तु आज यह शब्द भारतीयता को नष्ट करने का प्रमुख साधन बन गया है। यही स्थिति धर्मनिरपेक्षता शब्द की भी है। ***स्मार्त धर्म अथवा सनातन धर्म के माध्यम से सभी धर्मों और सम्प्रदायों में सहिष्णुता और समन्वय को उजागर करने वाली भारतीय दृष्टि 'सेक्युलर' शब्द की परिधि से बाहर कर दी गई है और पूरे विश्व में एकमात्र अपना ही वर्चस्व स्थापित करने के लिये धर्मान्तरण के माध्यम से उद्यत दृष्टियाँ इस शब्द की छत्रछाया में पनप रही हैं।***

इतना ही नहीं, भारतीयता को नष्ट करने के लिये ब्राह्मणवाद, मनुवाद, वर्णाश्रमधर्म जैसे कालातीत शब्दों के माध्यम से भारती प्रजा में परस्पर के भेदभाव को बढ़ाने के लिये अहर्निश प्रचार किया जा रहा है। प्रान्तीयता और भाषावाद के भूतों को भी खड़ा किया जा रहा है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को ही वेद मानने वाले, धर्मान्तरण के माध्यम से एकेश्वरवाद की स्थापना में लगे हुए अथवा 'श्रमणब्राह्मणम्' को पाणिनि-पतंजलि का वाक्य मानने वाले यह सब करें, यह तो समझ में आता है, किन्तु अपने

को भारतीय राष्ट्र का चतुर्थ स्तंभ मानने वाली, देशी और विदेशी भाषाओं के माध्यम से मुखरित हो रही भारतीय पत्रकारिता भी भावात्मक एकता के स्थान पर विघटनवादी प्रवृत्तियों का साथ देने लगे, यह दुनिया का आठवाँ आश्चर्य ही माना जायगा।

भारतीय संस्कृति के उदारवादी दृष्टिकोण को समझने के लिये हम ब्राह्मण और श्रमण शब्दों के स्थान पर ऋषि और मुनि शब्दों को अधिक सशक्त समझते हैं। इन शब्दों का प्रयोग डॉ. मंगलदेव शास्त्री जी ने किया है। प्रथम शब्द नैगमिक और दूसरा आगमिक दृष्टि का परिचायक माना जा सकता है। ऋषि सपत्नीक आश्रम में रहता था। सामाजिक शिक्षा के साथ राजनीति को अनुशासित रखना भी उसका कार्य था। मुनि वैराग्य-प्रधान जीवन जीता था। यह सदा दार्शनिक चिन्तन में लगा रहता था। ऋषि की ऐहलौकिक दृष्टि प्रधान थी, जब कि मुनि प्रधान रूप से पारलौकिक जीवन जीता था। ऋषिसंस्था वर्णाश्रमधर्मप्रवण थी, जब कि मुनिसंस्था इस तरह के बन्धनों से मुक्त। बुद्ध और महावीर के पूर्वकालीन साहित्य में उपलब्ध इनकी गतिविधियों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण अपेक्षित है और इस कार्य में उत्तर काल में विकसित बौद्ध और जैन साहित्य भी हमारी सहायता कर सकता है। यहाँ आते-आते इन दोनों दृष्टियों में स्पष्ट अन्तर देखने को मिलता है। इनको हम ब्राह्मण और श्रमण शब्द से संबोधित कर सकते हैं। "यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्" इस सिद्धान्त को ऋषिसंस्था ने मान लिया और मुनिसंस्था ऋषिसंस्था की ओर उन्मुख होने लगी।

उस प्राचीन साहित्य में पांचरात्र और पाशुपत मतों की पर्याप्त चर्चा मिलती है। पांचरात्र मत को प्रवृत्तिप्रधान और पाशुपत मत को निवृत्तिप्रधान बताया गया है। इनको हम ऋषिसंस्था और मुनिसंस्था से जोड़ सकते हैं। वैखानस आगम में हम देखते हैं कि इसका झुकाव वैदिक संस्था की तरफ अधिक है और पाशुपत मत मोहेंजोदड़ो में उपलब्ध सामग्री से समरस लगता है। यहाँ उपलब्ध ऊर्ध्व-मेढ्र मुद्राओं में, नेत्रतन्त्र में वर्णित विश्वरूप के ध्यान में और पश्चिम भारत में उपलब्ध लकुलीश की मूर्तियों में बहुत समानता मिलती है। कापालिक, कारुक, कालामुख, कौल जैसे मतों की प्रवृत्ति के बीज इनमें देखे जा सकते हैं।

बौद्ध और जैन धर्म का संबन्ध श्रमण-परम्परा से माना जाता है। जैन धर्म में मुनि शब्द आज भी अत्यन्त आदरभाव का सूचक है। प्रवृत्ति-प्रधानता और निवृत्ति-प्रधानता के रूप में इनकी पांचरात्र और पाशुपत मत से समानता के रहने पर भी इनका विकास पर्याप्त भिन्न परिस्थितियों में हुआ है। वैदिक कर्मकाण्ड का बौद्ध धर्म पर बहुत थोड़ा प्रभाव है। इसी तरह से जैन धर्म पर लकुलीश पाशुपत मत की कुछ प्रवृत्तियों का कोई प्रभाव देखने को नहीं मिलता, जब कि कौल मत के माध्यम से ये प्रवृत्तियाँ बौद्ध धर्म की परवर्ती शाखाओं में अवश्य प्रविष्ट हो गईं।

यह हम जानते हैं कि नैगमिक दृष्टि में उपनयन, वेदाध्ययन आदि में तीन ही वर्णों को अधिकार प्राप्त था और आगमिक दृष्टि के अनुसार सभी वर्ण दीक्षा के अधिकारी थे। दीक्षा के उपरान्त जिस धर्म में वह दीक्षित होता था, वही उसका वर्ण हो जाता था, अर्थात् वह बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त कहलाने लगता था। उसके लिये पूर्व वर्ण का स्मरण वर्जित था। नाम-दान की विधि के द्वारा उसका नाम भी बदल जाता था। बोधि, प्रभु, पाद, योगी, नाथ, आनन्द, शिव, शंभु, राशि जैसे पदों को जोड़ कर यह नाम-दान की विधि सम्पन्न होती थी। दीक्षा और पुरश्चरण के समय सर्वत्र [१]अग्नि-समाराधन प्रचलित था, "तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन" के विभिन्न अधिकारों और प्रकरणों में हमने इन सभी तन्त्रागमीय धर्मों की परस्पर अनुस्यूतता पर पर्याप्त चर्चा की है।

यहाँ आते-आते हम देखते हैं कि ऋषि-संस्था एक प्रकार से समाप्त-सी हो गई है। वर्णाश्रम-व्यवस्था डगमगा गई है। आगमिक संस्कृति ने वर्ण-व्यवस्था को बौद्ध, जैन, वैष्णव आदि धर्मों से जोड़ दिया और आश्रम-व्यवस्था में गृहस्थ एवं संन्यासी ही बचे रह गये हैं। ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ अब शब्द के रूप में ही बचे हैं। ब्राह्मण आज धर्माचार्यों की कृपा पर टिका हुआ है। तो भी हम देखते हैं कि ब्राह्मणवाद और मनुवाद के भूत को खड़ा करने का दिन-रात अथक प्रयास किया जा रहा है। संन्यासी बनने के लिये ७५ वर्ष की आयु आज अपेक्षित नहीं है। वैदिक अथवा अवैदिक सभी धर्मों ने इसे मान्यता दे दी है। ऋषि-संस्था की यह पराभूति दुनिया के लिये अशुभ सिद्ध होगी। सभी धर्मों में अल्प वय में संन्यास की स्वीकृति जैनाचार्य सोमदेव सूरि के यशस्तिलकचम्पू (९५९ ई.) में उद्धृत नीलपट की इस उक्ति का ही स्मरण कराती है—

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य महतीं सर्वार्थसम्पत्करीं
ये मोहादवधीरयन्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं मुण्डीकृता लुञ्चिताः
केचित् पञ्चशिखीकृताश्च जटिनः कापालिकाश्चापरे॥

ऋषि-संस्था और मुनि-संस्था में पुनः सामंजस्य बैठाया जाना चाहिये। ऋषि और मुनि दोनों के लिये सभी एषणाओं से मुक्ति अपेक्षित है। तभी वे समाज और राजनीति को विपथगामी होने से बचा सकेंगे।

वर्तमान समय में संस्कृति के माध्यम से यह कार्य हो सकता है। इसके लिये हमें वेद से लेकर महात्मा गाँधी तक की पूरी परम्परा को मान्यता देनी होगी। आज

---

१. "तन्त्रेषु वैदिककर्मकाण्डस्य प्रभावः" शीर्षक निबन्ध देखिये।

तो स्थिति यह है कि महात्मा गाँधी के प्रिय भजन पर इसलिये रोक लगा दी गई है कि उसमें **वैष्णव** शब्द आ गया है । ***इस शब्द के बहाने संपूर्ण मानवता को जो संदेश वहाँ दिया गया है, उसका धर्मनिरपेक्षतावादियों के लिये कोई मूल्य नहीं है ।*** हमारे पत्रकार बन्धु ही नहीं, नई पीढी के राजनीतिज्ञ और बुद्धिजीवी भी समग्र भारतीय संस्कृति के स्वरूप को बिना समझे-बूझे धर्मनिरपेक्षता का बाना पहने कुछ तथाकथित पाश्चात्य विचारकों का और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के माध्यम से सर्वत्र कलह और अशान्ति के बीज बोने वाले महानुभावों का अन्धानुकरण करने में ही लगे हुए हैं ।

इस विकट परिस्थिति में हमें आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में एक ऐसी संस्कृति का विकास करना होगा, जिसका मूल प्राचीन सभ्यता में हो, जिसका रूप-रंग देशी हो, जिसमें पुरातन संस्कृति के उत्कृष्ट अंग सुरक्षित हों और साथ-साथ उसमें ऐसे नवीन अंशों का भी समावेश हो, जो आज जगत् में प्रगतिशील हैं और संसार के सामने नवीन आदर्श उपस्थित करते हैं । प्रो. मुकुटबिहारी लाल जी के ***साम्ययोगमीमांसा***[1] के नाम से संकलित इन छन्दों में इसी कार्य को सम्पन्न करने का स्तुत्य प्रयास हुआ है । अभिनव भारतीय संस्कृति की रचना में ये कितने उपयोगी हैं, इसका निर्णय विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ा जा रहा है । पाठकों की सुविधा के लिये यहाँ अकारादि क्रम से कुछ सूचियाँ जोड़ी जा रही हैं ।

आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवादी संस्थान के मन्त्री श्री सत्यप्रकाश मित्तल जी से हमें यह सामग्री प्राप्त हुई है । इसके लिये हम उनके प्रति और उस संस्थान के वर्तमान मन्त्री श्री अजयकुमार जी के प्रति इस शोध संस्थान की तरफ से आभार प्रकट करते हैं ।

महाशिवरात्रि, संवत् २०४७
वाराणसी।

विद्वद्वशंवद
व्रजवल्लभ द्विवेदी



---

१. साम्य, समत्व, सम जैसे शब्दों का भगवद्गीता में शताधिक बार प्रयोग हुआ है । "समत्वं योग उच्यते" (२.४८) यह भगवती गीता का उद्घोष है । प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रो. मुकुटबिहारी लाल जी ने इसी विषय की स्थापना की है, अत: उनके इस संग्रह को यही नाम दे दिया गया है । **समाजवादसाहस्त्री** के अतिरिक्त यहाँ उनके उन सभी वचनों को संगृहीत किया गया है, जिनका भाषानुवाद उन्होंने स्वयं कर दिया था । संस्कृत छन्द और भाषानुवाद के क्रम में कहीं-कहीं क्रमभेद या न्यूनाधिक संख्या हो गई है । अधिकांश स्थलों पर उनको उसी तरह से रख दिया गया है ।

विषय-सूची

साम्ययोगमीमांसा-प्रकरणत्रयम्

प्रकरणत्रयविषयानुक्रमणी



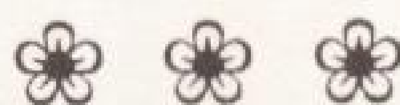
टिप्पणी-गत विषयसूची

समाजवादसाहस्री

समाजदर्शनम्

कल्याणोत्कर्षसत्पथम्

परिशिष्ट



साम्ययोगमीमांसा

समाजवादसाहस्री

समाजदर्शनम्

कल्याणोत्कर्षसत्पथम्

समाजवादसाहस्री

व्रतम्

मानवानां हितार्थाय समत्वसहितो ह्यहम् ।
सततं भूतिकर्माणि कुर्यामित्येव मे व्रतम् ।।१।।

स्वातन्त्र्यं न्यायबन्धुत्वे समत्वं सहकारिता ।
लोकनिष्ठा समोत्कर्षो मानवत्वं जगद्धितम् ।।२।।

सौम्यत्वं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानं शीलं पराक्रमः ।
समन्वितो गुणैरेतैः करिष्ये लोकमङ्गलम् ।।३।।

उद्योगेन व्रतेनैव बुद्ध्या शौर्येण साहसात् ।
कर्तव्यं सततं कृत्वा करिष्ये लोकमङ्गलम् ।।४।।

जीवनदर्शनम्

नानाशक्तिसमायुक्ता नानावैभवसम्भवा ।
पारमार्थिकसत्ता वै जगतो मूलकारणम् ।।१।।

ईशो हि विश्वकर्ताऽसौ प्रधानपुरुषेश्वरः ।
विश्वसाक्षी विधाता च वदन्तीश्वरवादिनः ।।२।।

मनुष्यों के हित के निमित्त समतासहित निरन्तर कल्याणकारी कार्य करूँ, यही मेरा व्रत है।।१।। सामाजिकता, उदारता, विश्वबन्धुत्व, सरलता, सौजन्य, सत्संकल्प, सत्य, सौहार्द्र, सहकारिता, सदाचार, बल, धैर्य, लोकज्ञान तथा पराक्रम इन गुणों से सम्पन्न हो मैं लोककल्याण करूँगा।।२-३।। मानव के उत्कर्ष की वृद्धि तथा सबकी स्वतन्त्रता के निमित्त मैं राष्ट्र में लोकतान्त्रिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करूँ।।४।।

कार्यकारण के सूत्र से यह जगत् नियन्त्रित है। स्थिति अधिभूत, पौरुष अधिदैव, प्रकृति गुणसम्पन्न तथा स्वभाव अध्यात्म कहलाता है। बाह्य संसार का चक्र क्रिया और शक्ति से सम्पन्न है।।१-२।। विभिन्न शक्तियों से और वैभव से सम्पन्न पारमार्थिक सत्ता

मूलं प्रकृतितत्त्वं हि सर्वविश्वस्य कारणम्।
विज्ञानशास्त्रसंदक्षास्तामेतां व्याहरन्ति वै।।३।।
निर्गुणं च निराकारं ब्रह्म तन्मुनिभिः स्मृतम्।
मूलतत्त्वस्य नाम्नाऽपि सा प्रसिद्धिमुपागता।।४।।
अक्षरानाद्यनन्तस्य सर्वशक्तियुतस्य च।
विभूत्या मूलतत्त्वस्य सर्वं विश्वं विभासते।।५।।
विकासप्रदसंसारे विकासस्य क्रमेण च।
विभूत्या मूलतत्त्वस्य जीवनस्योद्भवो भवेत्।।६।।
मानवं जीवनं मूलतत्त्वस्य परमा कृतिः।
नानावैभवसम्पन्नं मानुष्यं परमं स्मृतम्।।७।।
मानवः सर्वजीवेषु सर्वश्रेष्ठः प्रकीर्तितः।
आदर्शो ज्ञानकर्तृत्वे तद्विशिष्टगुणाः स्मृताः।।८।।
मानवो मननज्ञानकृतिभिः सृजते गुणान्।
जीवनादर्शलक्ष्याणि लभते श्रेय उत्तमम्।।९।।
आदर्शो जीवनं कामं विकासयति सर्वदा।
लक्ष्यस्य शक्यते सिद्धिर्ज्ञानेन कर्मभिः शुभैः।।१०।।
विदांवरा व्याहरन्ति [१]पुरुषश्चाधिदैवतम्।
[२]अधिभूतं क्षरो भावः [३]स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।।११।।

ही संसार का मूल कारण है।।३।। कुछ लोग उसे मूल तत्त्व, कुछ ब्रह्म, कुछ ईश्वर या प्रकृति तत्त्व कहते हैं।।४।। परन्तु यह सब स्वीकार करते हैं कि वह अक्षर, अनादि और अनन्त है, तथा सम्पूर्ण विश्व का हेतु तथा अपार शक्ति से सम्पन्न है।।५।। विकासशील संसार में विकास के क्रम से मूल तत्त्व की विभूति से जीवन का उद्भव (उदय) होता है।।६।। मानव जीवन तो मूल तत्त्व की परम कृति है। विभिन्न विभूतियों से और वैभव से सम्पन्न मनुष्यता सर्वोत्तम कही जाती है।।७।। मानव मूल तत्त्व के सब वैभव को प्राप्त करता है और अपने प्रयत्न से कल्याणप्रद साधन का उपभोग, अर्थात् प्रयोग करता है।।८।। सब जीवों में मानव श्रेष्ठ है। आदर्श, ज्ञान और रचना उसके विशेष गुण हैं।।९।। मनुष्य चिन्तन, ज्ञान और कार्यों के गुणों तथा जीवन के आदर्शों और लक्ष्यों की रचना करता है।।१०।। आदर्श ही सदा ठीक तौर पर जीवन विकसित

---

१. गीता ८.४ २. गीता ८.४ ३. गीता ८.३

नरः कर्ता च भोक्ता च साधनं साध्यसाधकौ।
आनन्दः कार्यलक्ष्यं वै कार्यक्षेत्रं भवस्तथा।।१२।।

सुन्दरं च शिवं सत्यमानन्दस्य गुणाः स्मृताः।
नूनं तेषां समायोगादानन्दं पद्यते भवे।।१३।।

[1]पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।
[2]पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।।१४।।

[3]न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजते प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।१५।।

[4]अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम्।
कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः।।१६।।

सुखदुःखमये लोके गुणैः सत्कर्मभिः शुभैः।
लक्ष्यमानन्दकल्याणे मानवो लभते ध्रुवम्।।१७।।

जीवनं यो विजानाति कल्याणानन्दसाधनम्।
आनन्दं नूनमाप्नोति सर्वजीवहिते रतः।।१८।।

करता है। ज्ञान और कर्मों द्वारा लक्ष्य की सिद्धि हो सकती है।।११।। मनुष्य कर्ता, भोक्ता, साधन, साध्य और साधक है। अपना तथा समाज का उत्कर्ष और कल्याण जीवन का ध्येय कहा जाता है।।१२।। सत्य, शिव और सौन्दर्य आनन्द के गुण हैं। इन सबके सम्यक् सहयोग से ही संसार में आनन्द प्राप्त होता है।।१३।। जो व्यक्ति जीवन को कल्याण और आनन्द का साधन जानता है, वह कल्याण का सृजन करता है तथा आनन्द को फैलाता है।।१४।। जो व्यक्ति जीवन को सर्वलोकहितकारक समझता है, वह सेवा तथा समत्व-योग से जगत् के हित का विस्तार करता है।।१५।। जो जीवन को अपने तथा समाज के उत्कर्ष का साधन समझता है, वह सामाजिकता, मानवता तथा समता का अनुष्ठान करता है।।१६।। समता, स्वतन्त्रता और मानवता से सम्पन्न जीवन शुभ है। लोकसेवा तथा सर्वांगीण उत्कर्ष उसका ध्येय है।।१७।। शौर्य तथा लोकन्याय से सम्पन्न एवं मानवता और सत्य से भूषित जीवन उत्तम कहा जाता है।।१८।।

---

१. गीता १३.२० २. गीता १३.२१ ३. गीता ४.२०
४. भागवत १०.२४.१

शरीरम्

[१]जीवितं च शरीरं च द्वयमन्योन्यमाश्रितम् ।
जन्मसंवृद्धिमृत्यूँश्च संसारे सह गच्छति ।।१।।

[२]सुखायैव न दुःखाय तनुः सौभाग्यसुन्दरी ।
[३]ज्ञयस्य त्वियमनन्तानां सुखानां कोशमालिका ।।२।।

वाहनं सर्वकार्यस्य जीवनोत्कर्षसाधनम् ।
शरीरं रक्षयेन्नित्यं कल्याणाय च योजयेत् ।।३।।

[४]यावत्तिलं तथा तैलं यावद्देहं तथा दशा ।
कर्मेन्द्रियैश्च कर्तव्यमानन्दो जगतो हितम् ।।४।।

[५]शरीराज्जायते व्याधिर्मानसो नात्र संशयः ।
[६]ततः स्वास्थ्याय चित्तस्य शरीरं रक्षयेद् दृढम् ।।५।।

जीवन और शरीर दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। ये दोनों संसार में साथ साथ जन्म लेते, बढ़ते और मृत्यु को प्राप्त होते हैं।।१।। सौभाग्यसुन्दरी काया सुख के लिये है, दुःख के लिये नहीं है। ज्ञानियों के लिये तो वह अनन्त सुखों के भण्डार की माला है।।२।।

योगवाशिष्ठ में बताया गया है कि अज्ञानियों के लिये ही यह काया दुःख का कारण है, अर्थात् वे ही इसका दुरुपयोग कर दुःख उठाते हैं।

सब कामों के वाहक तथा जीवन की उन्नति के साधक शरीर की नित्य रक्षा की जाय तथा उसे कल्याणकार्यों में लगाया जाय।।३।। निस्सन्देह शरीर से मन की व्याधि पैदा होती है, अत: चित्त के स्वास्थ्य के लिये शरीर की दृढ़ता से रक्षा की जाय।।४।। यह भी निश्चित है कि मन से शरीर में व्याधि पैदा होती है। इसलिये शरीर के स्वास्थ्य के लिये चित्त की दृढ़ता से रक्षा की जाय।।५।।

मन, और शरीर का गहरा सम्बन्ध है। अस्वस्थ चित्त से शरीर में और अस्वस्थ शरीर से चित्त में विकार उत्पन्न होते हैं। स्वस्थ जीवन के लिये मन और शरीर दोनों का स्वस्थ होना आवश्यक है।

---

१. शान्ति. २२४ २. यो. वा. ४.२३.११ ३. यो. वा. ४.२३.१८
४. यो. वा. ६.२.१०४.४२ ५. शान्ति. १६.९ ६. शान्ति.२६.९

मानसाज्जायते व्याधिर्देहस्य चेति निश्चितम् ।
तस्मात् स्वास्थ्याय देहस्य चित्तं संरक्षयेद् दृढम् ।।६।।

सर्वेषां लक्ष्यकार्याणामारोग्यं मूलमुत्तमम्[1] ।
व्यायामभोजनाभ्यां च वर्धयेत् स्वास्थ्यमङ्गलम् ।।७।।

आरोग्याच्च शरीरस्य मानवो विन्दते सुखम् ।
आधिव्याधिप्रकोपाभ्यां शरीरं रक्षयेद् दृढम् ।।८।।

[2]अनिवार्येण शोकेन शरीरं चोपतप्यते ।
[3]धैर्येण युक्तस्य सतः शरीरं न विशीर्यते ।।९।।

[4]प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
तयोश्च स्वस्थयोगेन मन्तव्यं साधयेत् सुधीः ।।१०।।

दान्तो शान्तः शरीरेण प्राप्यते परमं सुखम् ।
तस्मात् सम्यक् प्रयत्नेन संयमं ह्याचरेन् नरः ।।११।।

आहारे व्यवहारे च संयमं परिपालयेत् ।
तयोरेव हि संशुद्ध्या वर्धेते स्वास्थ्यमङ्गले ।।१२।।

प्राज्ञाः शरीरसम्पत्तिं वर्धयेयुः प्रयत्नतः ।
युक्ताहारविहारौ वै स्वास्थ्यमङ्गलवर्धकौ ।।१३।।

शरीर के आरोग्य से मनुष्य को सुख प्राप्त होता है। दृढ़तापूर्वक मानसिक पीड़ा एवं शरीरिक रोग से शरीर की रक्षा की जाय।।६।। अपने तथा समाज के उत्कर्ष की सिद्धि तथा जीवन के आनन्द के निमित्त क्रोध, चिन्ता और भय को छोड़कर ज्ञान, साहस, सत्कार्य, युक्ताहारविहार, शील, व्यायाम, संयम तथा उत्कृष्ट उदार भावों द्वारा सुधी अपना स्वास्थ्य साधे।।७-८।। यदि शोक को रोका न जाय तो उससे शरीर संतप्त हो उठता है। जो धैर्य से युक्त है, उस सत्पुरुष का शरीर नष्ट नहीं होता।।९।। विवेक से मन के दुःख को और औषधि से शरीर के दुःख को दूर करे। उन दोनों के स्वस्थ मेल से बुद्धिमान् अपने मन्तव्य को सिद्ध करे।।१०।। दान्त और शान्त शरीर से परम सुख को प्राप्त करता है। अतः यथोचित्त प्रयत्न द्वारा मनुष्य संयम का आचरण करे।।११।। भोजन और व्यवहार में संयम का पालन करे। इन दोनों की शुद्धि से स्वास्थ्य और कल्याण की वृद्धि होती है।।१२।। समझदार शरीर-सम्पत्ति को यत्न से बढ़ायें। ठीक ठीक आहार

---

१. चरक २. शान्ति. २२६.४ ३. शान्ति. २२७.४
४. शान्ति.

सदाचारो विहारश्च समलक्ष्यगुणान्वितौ ।
तयोरेव समायोगादानन्दं लभते नरः ।।१४।।

[१]आचाराल्लभते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ।
विहाराल्लभते सौख्यं समायोगाच्च मङ्गलम् ।।१५।।

मानवः शुद्धचित्तेन व्यायामैः संयमेन च ।
युक्तविश्रामयत्नाभ्यां लभते स्वास्थ्यमङ्गलम् ।।१६।।

[२]आदेहं विद्यते चित्तं त्यागस्तस्य न विद्यते।
[३]त्यागो हि कर्मणां तस्मादादेहं नोपपद्यते ।।१७।।

[४]यत्साम्यं चेतसो योगान्न तु कर्मेन्द्रियस्थितेः ।
लोकायोत्कर्षकार्येषु कर्मेन्द्रियाणि योजयेत् ।।१८।।

कर्मभूमिरयं लोको गतिप्रगतिसंयुतः ।
जीवितं शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः ।।१९।।

स्वभावः

[५]स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ।
आचारः खलु जीवस्य स्वभावेनाभिपद्यते ।।१।।

तथा विहार स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ाते हैं।।१३।। सदाचार और विहार दोनों का एक ही लक्ष्य है। इन दोनों के समुचित योग से ही मनुष्य आनन्द प्राप्त करता है।।१४।। आचार से आयु बढ़ती है और बुराइयाँ दूर होती हैं। विहार से सुख की प्राप्ति होती है। इन दोनों के सहयोग से कल्याण की अभिवृद्धि होती है।।१५।। मनुष्य चित्त की शुद्धि से, व्यायाम, संयम से तथा यथोचित्त विश्राम और उद्योग से स्वास्थ्य मंगल प्राप्त करता है, अर्थात् स्वास्थ्य के लिये ये सब आवश्यक हैं।।१६।। चित्त आजीवन विद्यमान रहता है, उसका त्याग नहीं होता, इसलिये चित्त को व्रत से अर्थात् विश्वास, आशा और संकल्प से अपने तथा लोक के उत्कर्ष कार्यों में लगाये।।१७-१८।। यह संसार गतिशील और प्रगतिशील कर्मभूमि है। यहाँ उत्कृष्ट उदार सत्कार्यों से जीवन का त्राण, अर्थात् रक्षा और उद्धार हो सकता है।।१९।।

सब मनुष्य स्वभाव पर आश्रित हैं, स्वभाव का अनुगमन करते हैं। निस्सन्देह जीव के आचार-व्यवहार स्वभाव से ही प्राप्त होते हैं।।१।। सभी भाव स्वभाव से उत्पन्न होते

---

१. मनु. ४.१५६ २. यो. वा. ६.२.२.३५ ३. यो. वा. ६.२.२.४०
४. यो. वा. ६.२.२.४३ ५. भागवत १०.२४.२६

[१]स्वभावभाविनो भावाः स्वभावप्रेरिताः गुणाः।
[२]तथा सर्वाणि कर्माणि स्वभावस्यैव लक्षणम् ।।२।।

[३]सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति सर्वदा।
[४]स्वभावाल्लभते प्रज्ञां शान्तिमेति स्वभावतः ।।३।।
स्वभावो गतिशीलस्तु स्वभावः प्रगतिप्रियः।
स्वभावः प्रगतिप्राणो वर्धयेल्लोकमङ्गलम् ।।४।।

[५]इन्द्रियाणां तु सर्वेषामीश्वरं मन उच्यते।
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।।५।।

स्वभावस्तु मनुष्याणां त्रिगुणात्मक उच्यते।
सुहिते तस्य सिद्धिश्च सात्त्विकी परिलक्ष्यते ।।६।।

[६]यद् यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्।
[७]सङ्कल्पमूलास्ते सर्वे सङ्कल्पो विषयात्मकः ।।७।।

सौहार्दं समता सत्यं स्वातन्त्र्यं सहकारिता।
मानुष्यं मार्दवं मौनमौदार्यमार्जवं क्षमा ।।८।।

करुणा प्रीतिरानन्द उद्रेके सुहिते रतिः।
धैर्यं सहानुभूतिश्च सात्त्विकाः सद्गुणाः स्मृताः[८] ।।९।।

हैं, सभी गुण स्वभाव से प्रेरित हैं तथा सब काम स्वभाव को ही लक्षित, अर्थात् सूचित करते हैं।।२-३।। स्वभाव गतिशील और प्रगतिशील है। प्रगतिशील स्वभाव से ही लोकमंगल बढ़ता है।।४।। मन सब इन्द्रियों का ईश्वर कहा जाता है। इन सबकी प्रवृत्ति का हेतु मन ही है।।५।। मनुष्य जो कुछ करता है, वह सब इच्छा की चेष्टा है। वे सब संकल्पमूलक हैं और संकल्प विषय से बनता है।।६।। मनुष्य का स्वभाव तीन गुणों से बना हुआ है। अच्छे हित में उसकी सिद्धि सात्त्विकी कहलाती है।।७।। सौहार्द, समता, सत्य, स्वतन्त्रता, सहकारिता, मानवता, मृदुता, मनन-चिन्तन, सरलता, क्षमा, करुणा, प्रेम, आनन्द, संवृद्धि और सुहित में अनुराग, धैर्य तथा सहानुभूति सात्त्विक गुण बताये जाते हैं।।८-९।। क्रूरता, भेदबुद्धि, विषमता, वैर, संग्राम, दर्प, द्वेष, बहुत बोलने का

१. शान्ति. २२२.२७; शान्ति. २२२.२२ २. शान्ति. २२२.२५ ३. गीता १७.३
४. शान्ति. २२२.३५ ५. शान्ति. ३११.२१ ६. मनु. २.४
७. मनु. २.३ ८. शान्ति.३१३.२७.२०

क्रूरता भेदबुद्धिश्च वैषम्यं वैरविग्रहौ ।
दर्पो द्वेषोऽतिवादश्च कामः क्रोधो मदस्तथा ।।१०।।

परापवादेषु रतिर्विवादानां च सेवनम् ।
आधिपत्यमहङ्कार एते प्रोक्ता रजोगुणाः[१] ।।११।।
अज्ञानं लोभमोहौ च प्रमादो मत्सरस्तथा ।
आलस्यं स्तब्धता भीतिरेते वै तमसो गुणाः[२] ।।१२।।

[३]अन्योऽन्यसम्पर्कवशात् सर्वे संक्रामिका गुणाः ।
सद्गुणैर्भावसंशुद्ध्या वर्धते लोकमङ्गलम् ।।१३।।

गतिः प्रगतिस्तेजश्च शक्तिसाहसपौरुषम् ।
उत्साहस्फूर्तिसामर्थ्यं गुणाः सात्त्विकराजसाः ।।१४।।

अत्याचारो बलात्कारः सन्तापः प्रतिगामिता ।
दमनं शोषणं चैव गुणास्तामसराजसाः ।।१५।।

सर्वकार्यं गृहस्थस्य त्रिगुणं स्यान्न संशयः ।
सङ्घातेन हि तेनैव सर्वसृष्टिसमुद्भवः ।।१६।।

त्रिगुणैश्च समायुक्तः प्राधान्येन गुणस्य च ।
विशिष्टगुणसम्पन्नो मानवः समुदाहृतः ।।१७।।

स्वभाव, काम, क्रोध, मस्ती, दूसरों की बुराई में अनुराग, वाद-विवाद में रुचि, आधिपत्य की भावना और अहंकार ये सब रजोगुण कहे जाते हैं।।१०-११।। अज्ञान, लोभ, मोह, असावधानी, ईर्ष्या, आलस्य, जड़ता, भय ये सब तामसिक गुण हैं।।१२।। एक दूसरे के सम्पर्क के कारण सभी गुण संक्रामक हैं। अच्छे गुणों से तथा स्वभाव की शुद्धि से लोकमंगल बढ़ता है।।१३।। गतिशीलता, प्रगतिशीलता, तेज, शक्ति, साहस, पौरुष, उत्साह, स्फूर्ति और सामर्थ्य सात्त्विक-राजस गुण हैं।।१४।। अत्याचार, बलात्कार, सन्ताप, प्रतिगामिता, दमन और शोषण ये तामस-राजस गुण हैं।।१५।। तीनों गुणों से सम्पन्न मनुष्य गुण की प्रधानता से विशेष गुणसम्पन्न कहा जाता है।।१६।। जो मनुष्य स्वभाव से शुद्ध, सत्य और समता में प्रतिष्ठित एवं हर्ष और आनन्द से सम्पन्न है, वह पुरुष सात्त्विक कहलाता है।।१७।। जो मनुष्य वैरबुद्धि एवं मस्ती और क्रोध से

---

१. शान्ति. ३१३.२२-२४ २. शान्ति. ३१३.२५-२६ ३. कामन्दक ५.७

योरो नरो भावसंशुद्धः सत्यसाम्यप्रतिष्ठितः ।
हर्षानन्दसमायुक्तः सात्त्विकः स उदाहृतः ।।१८।।
यो वैरबुद्धिसंयुक्तो मदक्रोधसमावृतः ।
अहङ्कारवशीभूतो राजसः स नरः स्मृतः ।।१९।।
यस्तु संमोहसयुक्तो जडत्वेन समावृतः ।
अज्ञानेन समाविष्टस्तामसः स नरः स्मृतः ।।२०।।
दम्भिनः शोषकाः क्रूराः परश्रमसमाश्रिताः ।
आधिप्यभावसंयुक्ता नरा राजसतामसाः ।।२१।।
सत्पथे शौर्यसम्पन्नस्तेजस्वी क्रान्तिनिष्ठितः ।
न्यायसङ्घर्षसंलग्नो नरो राजससात्त्विकः ।।२२।।

पौरुषम्

[1]पौरुषं न परित्याज्यं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
[2]शुभेन कर्मणा सौख्यं कार्य एव पराक्रमः ।।१।।
[3]कर्मभूमिरयं लोक उद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
[4]कर्मणापद्यते क्षेमं कर्मैव गुरुरीश्वरः ।।२।।
[5]दुर्लभः परभावो हि यावन् नो पौरुषं कृतम् ।
[6]सर्वं पुरुषकारेण कृतेनेहोपलभ्यते ।।३।।

लिपटा हुआ है तथा अहंकार के वश में है, वह राजसिक कहा जाता है। जो व्यक्ति, अव्यवस्था और जड़ता में फंसा है और अज्ञान से पराभूत है, वह तामसिक कहलाता है।।१८-१९।। दम्भी, शोषक, क्रूर, दूसरों के श्रम पर जीवन व्यतीत करने वाले तथा आधिपत्य की भावना से युक्त पुरुष राजस-तामस कहलाते हैं। सत्पथ में वीर, तेजस्वी, क्रान्ति में संलग्न तथा न्यायसंघर्ष में संलग्न पुरुष राजस-सात्त्विक हैं।।२०-२२।।

श्रमशील मनुष्य ही मधु, अर्थात् जीवन के माधुर्य को पाता है, वही स्वादिष्ट फल का आस्वादन करता है। पड़े रहने वाले का सौभाग्य (उत्कर्ष, श्रेष्ठता) सोता रहता है, चलने वाले का सौभाग्य चलने लगता है।।१।। यह संसार कर्म भूमि है। उद्यम ही पौरुष है। कर्म ही पुरुष है। कर्म ही सबका गुरु और ईश्वर है।।२।। प्रकृतिजन्य गुणों से सबको बरबस काम करना ही होता है। बिना काम के तो शरीर यात्रा भी सम्भव नहीं है।।३।।

---

१. यो. वा. २. गीता ३.८ ३. शान्ति २३३.९
४. भागवत १०.२४.२७ ५. भर्तृ. नीति. ६. मनु. ६.२३

[१]विदांवरा व्याहरन्ति पुरुषश्चाधिदैवतम्।
पुरुषेणेह सर्वार्थसाफल्यं लभते नरः।।४।।

[२]चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदम्बरम्।
[३]शेते निपद्यमानस्य चरति चरतो भगः।।५।।
[४]लोकार्थं लोकयात्रार्थं जीवनोत्कर्षहेतवे।
प्रयत्नं कुरुते नित्यं विद्यावृत्तव्रतान्वितः।।६।।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
[५]अनासक्तं कर्मफले नैष्कर्म्यं परिकीर्तितम्।।७।।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
[६]उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु।।८।।

[७]बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम्।
[८]उपायेन हि यत्कुर्यात् तन्न शक्यं पराक्रमैः।।९।।

[९]देशकालौ समासाद्य विक्रमेत विचक्षणः।
[१०]नासम्यक्कृतकारी स्यादप्रमत्तः सदा भवेत्।।१०।।

मनुष्य कर्मों के न करने से, अर्थात् निकम्मे बैठे रहने से नैष्कर्म्य को प्राप्त नहीं करता। कर्मफल से अनाशक्ति ही नैष्कर्म्य कहलाती है।।४।। कर्म से सब कुछ घटित होता है। कर्म ही गति (फल) का साधन है। सब कुछ कर्म से प्राप्त होता है। अकर्मण्य को भाग्य से कुछ नहीं मिलता है।।५।। भाग्य कुछ नहीं करता, यह केवल कल्पना ही है। जो पिछला पौरुष है, वहीं भाग्य शब्द से सम्बोधित किया जाता है।।६।। निराशा में फंसे व्यक्ति मानते हैं कि सब कुछ भाग्य के अधीन है। जो धीर और उन्नति करने वाले हैं, वे भाग्य की कब प्रतीक्षा करते हैं?।।७।। परम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर पिछले पौरुष को जीतो। भाग्य इस तरह जीता जा सकता है, जैसे युवक से बच्चा।।८।। प्रभु न तो लोगों के कर्तापन को, न कर्मों को, न कर्मफल के संयोग को रचता है। सबका अपना अपना स्वभाव ही बरत रहा है।।९।। यदि दूसरों के कर्मों का फल देने वाला कोई ईश्वर है, तो वह भी कर्ता को ही भजता है (फल वितरित करता है)। वह अकर्ता (कर्म न

१. गीता ८.४
२. ऐत. ब्राह्मण ७.२.५
३. ऐत. ब्राह्मण ७.१५.३
४. गीता ३.४
५. वेदव्यास
६. वा. रा. ५.१.१२३
७. चाणक्य २७.२६
८. पञ्चतन्त्र. श्लो. २२८
९. शान्ति २४०.२८
१०. शान्ति २४०.६०

[1]प्रारम्भं तस्य कुर्याद्धि यत्समाप्तिं सुखं व्रजेत्।
[2]विपन्ने च समारम्भे सन्तापं मा स्म वै कृथाः ।।११।।

[3]सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्।
[4]चिरेण निश्चयं कृत्वा चिरं न परितप्यते ।।१२।।

कर्तव्यमिति यत्कर्म क्रियते न्यायनिष्ठया।
मानवानां हितार्थे वै तत् सात्त्विकमुदाहृतम् ।।१३।।

[5]सत्कारमानपूजार्थं प्रतिलाभार्थमेव वा।
दम्भरागद्वेषयुक्तं कर्म तद् राजसं स्मृतम् ।।१४।।

[6]मोहादारभ्यते कर्म मूढग्राहेण वा पुनः।
[7]परस्योत्सादनार्थं वा यत् तत्तामसमुच्यते ।।१५।।

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
लोकात्मोत्कर्षसिद्ध्यर्थं कार्यं कर्म समाचरेत् ।।१६।।

[8]कर्मैव पुरुषो नूनं पुरुषस्यैव कर्मता।
[9]कर्मभूमौ तथा नास्ति भेदः पुरुषकर्मणोः ।।१७।।

करने वाले) का ईश्वर नहीं है अर्थात् उसे फल नहीं देता।।१०।। जो ईश्वर से प्रेरित हो स्वर्ग या नरक को जाये, वह सदा पशु की तरह पराधीन है, इसमें कोई सन्देह नहीं।।११।। अपने को ही सुख-दुःख का कर्ता मानना चाहिये। पौरुष द्वारा ही नियति का नियमन होता है।।१२।। उठना चाहिये, सजग होना चाहिये, कल्याणकारी कामों में जुट जाना चाहिये, उत्साही पुरुष कर्मों में आलस्य नहीं करते।।१३।। पहले (उद्योग करने पर भी) असमृद्धि होने पर भी अपना अपमान न करे। समझदार लोग आपत्काल तथा कष्ट में भी उत्साह नहीं छोड़ते।।१४।। जो बीत गया, उस पर शोक नहीं करना चाहिये। वर्तमान की ही चिन्ता की जाय। सुधी साहस और विवेक से भविष्य को साधे।।१५।। शुभ चाहने वाला अनागत (भविष्य) का प्रबन्ध करे, निरन्तर सत्प्रयत्नों द्वारा आने वाले दुःख का निवारण करे।।१६।। विद्या, सदाचार तथा दृढ़ प्रतिज्ञा से सम्पन्न पुरुष लोकहित, जीविका तथा जीवन के उत्कर्ष के निमित्त नित्य प्रयत्न करता

---

१. शुक्र ४.३११ २. शान्ति. ५६.१६ ३. विदुर. २.८
४. शान्ति. २६६.७३ ५. गीता. २७.२६ ६. गीता २८.२१; गीता १७.२९
७. मनु. २.२ ८. यो. वा. ६.२.२८.८ ९. यो. वा. ६.२.२८.६

[१]राजसं तामसं त्यक्त्वा सात्त्विकं मार्गमास्थितः ।
[२]उद्धरेदात्मनात्मानं लोकस्य हितमाचरेत् ।।१८।।

[३]कर्मभूमिमिमां प्राप्य कर्तव्यं कर्म यच्छुभम् ।
सद्गुणैश्च पौरुषेण मन्तव्यं सिद्ध्यति ध्रुवम् ।।१९।।

[४]आपत्काले च कष्टेऽपि नोत्साहस्त्यज्यते बुधैः ।
साहसेन विवेकेन भविष्यं साधयेत् सुधीः ।।२०।।

[५]धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत् ।
दुःसाध्यां सिद्धिमायान्ति'' दृढाभ्यासेन सत्कृतैः।।२१।।

[६]दैवं न किञ्चित् कुरुते केवलं कल्पनेदृशी ।
[७]प्राक्तनं पौरुषं तद्वै दैवशब्देन कथ्यते ।।२२।।

[८]मूढैः प्रकल्पितं दैवं तत्परास्ते क्षयं गताः ।
[९]वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ।।२३।।

[१०]दैवायत्तं हि मन्यन्ते नैराश्येन समावृताः ।
[११]ये धीरा ये च विक्रान्तास्तैः किं दैवं प्रतीक्ष्यते ।।२४।।

है।।१७।। स्वतन्त्रता, जनकल्याण, विद्याशील, परिश्रम, सहकारिता तथा सर्वांगीण विकास पौरुष कहलाता है, अर्थात् यही पौरुष के लक्षण हैं।।१८।। बुद्धिमान् पुरुष देश और काल के अनुरूप पराक्रम करे। किसी कार्य को अच्छी तरह सम्पन्न किये बिना न छोड़े, सदा सावधान रहे।।१९।। उसी कार्य को आरम्भ करे, जिसकी समाप्ति सुख से हो जाय। यदि आरम्भ किए काम में बाधा उपस्थित हो जाय, तो साहस नहीं छोड़ना चाहिये।।२०।। खूब सोच समझकर काम करना चाहिये। जल्दी में कोई काम नहीं करना चाहिये। चिरकाल के बाद किसी निश्चय तक पहुँचने पर दीर्घ काल तक पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता।।२१।। बुरा काम न करें, क्योंकि बाद में बुरा काम करने वाले को कष्ट होता है। अच्छा काम निश्चय ही करना चाहिए, इसके करने से कष्ट नहीं होता।।२२।। जिससे अयश या अपकर्ष मिले या जिससे मनुष्य कर्तव्य से भ्रष्ट हो जाय, उसे कभी नहीं करना चाहिए।।२३।। जिसके कारण दूसरों की निन्दा करे, उसे स्वयं कभी न करे।

१. शान्ति. ३२६.२८ २. गीता ६.५ ३. वा. रा. २.१०९
४. कथासरित्सागर ५. यो. वा. ६.२.६७.३३ ६. यो. वा. २.९.३
७. यो. वा. २.९.६ ८. यो. वा. २.८.१६ ९. वा. रा. २.२३.२६
१०. यो. वा. २.५.२९ ११. यो. वा. २.७.७

[१]परं पौरुषमाश्रित्य प्राक्तनं पौरुषं जयेत् ।
[२]दैवं जेतुं यतो यत्नैर्बालो यूनेव शक्यते ।।२५।।
[३]कर्मणा जायते सर्वं कर्मैव गतिसाधनम् ।
[४]तस्मात् कर्मैव कर्तव्यं नास्ति सिद्धिरकर्मणः ।।२६।।

आत्मनिग्रहः

[५]मनःशुद्ध्यैव शुद्धिः स्याद् देहिनां नात्र संशयः ।
समाहितं मनश्चैव लभते श्रेय उत्तमम् ।।१।।
[६]मनुष्याणां तु सर्वेषां मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
शनैः शनैरभ्यासेन मनः कुर्यात् समाहितम् ।।२।।
समाहितं यस्य मनः स शान्तः परिचक्षते ।
मुदिताऽभयमक्रोधो मौनं च न्यायनिष्ठता ।।३।।
सौम्यत्वं भावसंशुद्धिर्विवेको ह्रीरचापलम् ।
आर्जवं मार्दवं चैव शान्तस्य सद्गुणाः स्मृताः ।।४।।

विद्याचरण-सम्पन्न सद्गुणों द्वारा हित करे।।२४।। विद्वत्ता और श्रम एक दूसरे पर आश्रित हैं। जहाँ नीति और बल दोनों हैं, वहाँ चारों ओर लक्ष्मी प्राप्त होती है।।२५।। सच्चरित्र का योग बुद्धि और साहस का भूषण है। सुधी ज्ञान, साहस तथा चरित्र से सत्कर्म करता है।।२६।। जो काम सत्कार, मान तथा पूजा प्राप्त करने के लिए, बदले में फल मिलने की आशा से तथा पाखण्ड एवं राग-द्वेष से किया जाता है, वह राजसिक कहलाता है।।२७।। जो काम मोह या हठ से, दूसरे किसी का बुरा करने के उद्देश्य से किया जाता है, वह तामसिक कहा जाता है।।२८।। राजसिक तथा तामसिक मार्ग को छोड़कर सात्त्विक मार्ग का अवलम्बन कर अपने से अपना उद्धार करे तथा लोकहित का आचरण करे।।२९।।

निस्सन्देह मन की शुद्धि से ही मनुष्यों (प्राणियों) की शुद्धि होती है। मन को प्रशान्त करने से उत्तम कल्याण प्राप्त होता है।।१।। नि:सन्देह मन और इन्द्रियाँ एक दूसरे पर आश्रित हैं। मन इन्द्रियों का स्वामी है और इन्द्रियाँ उसकी कार्यवाहक हैं।।२।। अपने तथा समाज के उत्कर्ष के निमित्त प्राणायाम, सदाचार, संयम, व्रत, प्रेम, निष्काम भावना, ज्ञान, न्यायनिष्ठा एवं जनकल्याणकारी सत्कार्यों तथा समत्व के अभ्यास द्वारा

---

१. यो. वा. २.५.९ २. यो. वा. २.६.२९ ३. वि. पु. १.१८.३२
४. शान्ति. १०.२६ ५. ज्ञानार्णव, पृ.२३४ ६. गीता ६.२६

[१]न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यति लालयेत्।
[२]अतोऽप्रमत्तः सेवेत विषयांस्तु यथोचितान्।।५।।

[३]वासना वै प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि।
दृढव्रतेन यत्नाच्च त्यजेद् दुर्व्यसनं सुधीः।।६।।

[४]कायेन संयता धीरा वाचा वै शुभसंयताः।
मनसा संयता ये च ते वै सम्पूर्णसंयताः।।७।।

दान्तश्च सत्त्वसंशुद्धः शान्तश्च दृढनिश्चयः।
[५]विवेकवानुदारात्मा विजितेन्द्रिय उच्यते।।८।।

[६]मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः।
[७]सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।।९।।

[८]यत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीः सर्वतोमुखी।
[९]नयस्य विनयो मूलं भद्रो विनयेन शोभते।।१०।।

मन को प्रशान्त करे।।३-४।। जिसका मन समाहित है, वही शान्त कहलाता है। मुदिता, भय और क्रोध का अभाव, चिन्तन-मनन, न्यायनिष्ठा, सौम्य भाव, स्वभाव की शुद्धि, विवेक, विनय, चंचलता का अभाव, सरलता, मृदुता, प्रशान्ति ये सद्गुण कहे जाते हैं।।५-६।। मनुष्य न तो इन्द्रियों को पीड़ा दे और न उनके साथ अधिक दुलार करे। सावधान हो विषयों का ठीक ठीक सेवन करे।।७।। निस्सन्देह वासना को प्रयत्न से शुभ पथ में प्रवृत्त किया जाय। बुद्धिमान् दृढ़ संकल्प और यत्न से दुर्व्यसनों को छोड़ दे।।८।।

जीवन के आदर्श के सम्बन्ध में दीर्घ काल से दो मत चले आ रहे हैं—एक वासना के क्षय का सिद्धान्त और दूसरा वासना के शोधन का सिद्धान्त है। आधुनिक विद्वान् वासना के क्षय के बजाय उसकी शुद्धि पर ही जोर देते हैं। उनके विचार में शुद्ध वासना द्वारा ही विश्व-कल्याण या लोक-कल्याण का सम्पादन किया जा सकता है। उसके द्वारा ही जीवन का समोत्कर्ष सम्भव है। वासना के क्षय का लक्ष्य पारलौकिक हो सकता है। लोकयात्रा और लोकहित से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

जो धैर्यवान् पुरुष शरीर, वाणी और मन से संयत है, वही पूरी तौर पर संयत है।।९।। नियन्त्रण, धैर्य, गम्भीरता, अभय, क्षमा, कोमलता, विनय उदारता, समता,

---

१. शुक्र. ३.१४ २. शुक्र. ३.१६ ३. मुक्तिकोपनिषद् २.५.६
४. धम्मपद, कोधवग्गो २४ ५. यो. वा. ६. शान्ति. २५०.४
७. गीता १८.२ ८. शुक्र. २.२७ ९. कामन्दक २.१९; २.६५

[१]मनः कर्मेन्द्रियं नूनं स्थिते ह्यन्योन्यमाश्रिते।
इन्द्रियाणां मनो नाथ इन्द्रियं कार्यवाहनम्।।११।।

चेतोनिरोधो जनयेदिन्द्रियाणां च निग्रहम्।
समलस्य गुणैर्युक्तौ वर्धयेतां च मङ्गलम्।।१२।।

दमस्तु निग्रहं धैर्यं गाम्भीर्यमभयं क्षमा।
मार्दवं ह्रीरकार्पण्यं समता सत्यमार्जवम्।।१३।।

निष्ठामयोऽयं पुरुषो निष्ठा लोकस्य धारिणी।
निष्ठाविरहितं कर्म तामसं परिचक्ष्यते।।१४।।

निष्ठया परया तप्तं क्रियते यद्गुणान्वितैः।
अफलकाङ्क्षिभिर्युक्तैः कर्म तत्सात्त्विकं स्मृतम्।।१५।।

लोकनिष्ठा परा निष्ठा तस्याः समुदयः शुभः।
मानवानां हितार्थाय वृणुयात् सज्जनः सदा।।१६।।

सदुद्देश्यसमायुक्तः सत्कार्यं कुरुतेऽनिशम्।
वृत्तेन निष्ठया तप्तो ध्येयं धारयते दृढम्।।

सदुद्देश्यसमायुक्तं वृत्तशीलगुणान्वितम्।
व्रतेन श्रद्धया तप्तं यत्कर्म तत्तपः स्मृतम्।।१७।।

सत्य और सरलता यम के लक्षण हैं।।१०।। दान्त, शान्त, स्वभाव से शुद्ध, दृढ़ निश्चय वाला, विवेकी, उदारात्मा जितेन्द्रिय कहा जाता है।।११।। पुरुष निष्ठामय है। श्रद्धा लोक को धारण करती है। निष्ठाविहीन कार्य तामसिक है।।१२।। जो कर्मफल की आकांक्षा से निर्मुक्त, गुणों से समन्वित तथा उच्चतम श्रद्धा से समायुक्त है, वही सात्त्विक कर्म है।।१३।। लोकनिष्ठा ही उच्चतम निष्ठा है। उसका उदय शुभ है। मनुष्यों के हित के निमित्त सज्जन सदा उसको अपनाये।।१४।। सदुद्देश्य से सम्पन्न सज्जन निरन्तर शुभ कार्य करते हैं, सदाचार और निष्ठा से तपे वे ध्येय को दृढ़ता से धारण करते हैं।।१५।। अपने तथा समाज के उत्कर्ष की सिद्धि के निमित्त व्रत तथा शील से समन्वित वृत्ति, सिद्धि तथा सदाचार विद्वानों द्वारा तप कहलाता है।।१६।। शिष्टाचार, स्वास्थ्य की रक्षा, सदाचार, शौच, पराक्रम, इन्द्रियों का नियन्त्रण, बल और अहिंसा शारीरिक तप हैं।।१७।। विवेक तथा कल्याण से सम्पन्न सत्य वाक्य, स्वाध्याय, कोमलता और

१. शान्ति. २६२.२२

शिष्टाचारः स्वास्थ्यरक्षा वृत्तं शौचं पराक्रमः ।
दमो बलमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।१८।।

वाक्यं विवेकसंयुक्तं सत्यं हितसमन्वितम् ।
स्वाध्यायो मृदुता मौनं वाङ्मयं तप उच्यते ।।१९।।

लोकार्थो न्यायनित्यत्वं समता मुदिता व्रतम् ।
भावशुद्धिर्मनुष्यत्वं तपो मानसमुच्यते ।।२०।।

दृढविश्वाससंयुक्तः सदुद्देश्यगुणान्वितः ।
आशाविभूषितो भावः श्रद्धा निष्ठा प्रकीर्तिता ।।२१।।

निष्ठया दृढसङ्कल्पैर्मन्तव्यार्थस्य सिद्धये ।
निर्णीतकर्मकरणं व्रतं वै समुदाहृतम् ।।२२।।

कर्मयोगः

[1]सर्वथा कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ।
[2]तस्माद् योगाय युज्येत समो भूत्वा फलं त्यजन् ।।१।।

[3]कर्मयोगाय युज्येत योगः कर्मसु कौशलम् ।
कर्मयोगसमायुक्तः कार्यसिद्धिं लभेत् शुभाम् ।।२।।

कार्यशक्तिं लोकहितं समत्वं न्यायनिष्ठता ।
निष्कामकर्माभिरतिः कर्मयोगः प्रकीर्तितः ।।३।।

मौन वाणी का तप है।।१८।। लोकहित, सदा न्यायप्रवृत्ति, समता, मुदिता, संकल्प, भावशुद्धि, मानवता मन का तप है।।१९।। दृढ़ विश्वास से सम्पन्न, सदुद्देश्य से समन्वित, आशा से विभूषित भाव श्रद्धा (निष्ठा) कहलाता है।२०।। मन्तव्य की सिद्धि के निमित्त श्रद्धा तथा दृढ़ संकल्प से निश्चित कर्म का अनुष्ठान व्रत कहलाता है।।२१।। श्रद्धा, विवेक तथा संकल्प से अपने और समाज के उत्कर्ष के निमित्त सब शक्तियों का प्रयोग व्रत का ध्येय है।।२२।।

विरक्ति और राग को छोड़कर मध्यम वृत्ति (जीवनचर्या) का आचरण करे। समता के भाव से युक्त हो जनमंगल को बढ़ाये।।१।। संन्यास और भोग को छोड़कर मध्यम मार्ग पर चले। निष्काम भाव से युक्त हो कर्तव्य कर्म को करे।।२।। शास्त्र के विद्वान् और लोक के ज्ञाता दोनों ही निष्कामता को बड़ा बताते हैं। मनुष्य निष्काम कर्मों से

---

१. गीता ५.२ २. गीता २.५० ३. गीता २.५०

दृढनिष्ठाविवेकाभ्यां लोकस्योत्कर्षहेतवे ।
प्रयोगः सर्वशक्तीनां व्रतस्य ध्येयमुच्यते ।।

कार्यकर्माभिरमणं व्यवहारान्वितं व्रतम् ।
ज्ञानं कर्मसु कौशल्यं कार्यशीलं प्रशस्यते ।।४।।

कर्तव्यनिष्ठो नापेक्षस्तुष्ठो निष्कामकर्मणा ।
रतो लोकहिते दान्तः कर्मयोगाय कल्पते ।।५।।

निष्कामकर्माभिरतो निर्द्वन्द्वो दृढनिश्चयः ।
न्यायनिष्ठोऽनहंवादी कर्मयोगाय कल्पते ।।६।।

अभ्यासयोगयुक्तेन यतात्मा दृढनिश्चयः ।
निष्कामकर्मसंसिद्धिं कार्यनिष्ठोऽधिगच्छति ।।७।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।
कार्यं प्रभावसंयुक्तं सहजं कुरुतेऽनिशम् ।।८।।

[1]विदांवरा व्याहरन्ति कृपणाः फलहेतवः ।
[2]युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।।९।।

विरक्तिं रागमुत्सृज्य मध्यां वृत्तिं समाचरेत् ।
युक्तः समत्वभावेन वर्धयेद् जनमङ्गलम् ।।१०।।

ही शुभ उत्कर्ष प्राप्त करता है।।३।। कर्मसंन्यास से कर्मयोग सर्वथा श्रेष्ठ है। इसलिये सम होकर तथा फल को त्याग कर कर्मयोग के लिये जुट जाना चाहिये।।४।। कर्मयोग के लिये जुट जाय, योग ही कर्मों में कुशलता है। कर्मयोग में संलग्न व्यक्ति उत्तम कार्यसिद्धि प्राप्त करता है।।५।। कार्यों में संलग्न पर व्यक्तिगत स्वार्थ कामनाओं से रहित समत्त्वयोग में परायण ही योगयुक्त कहलाता है।।६।। समता, सत्य, निष्काम निष्ठा तथा मानवता से सम्पन्न, सदा लोकहित में संलग्न पुरुष कर्मयोगी है।।७।। निष्काम भावना से सम्पन्न, श्रेष्ठ श्रद्धा से तप्त तथा कर्तव्य-बुद्धि से किया काम योगयुक्त कहा जाता है।।८।। सदुद्देश्य से सम्पन्न तथा स्वार्थ और अहङ्कार से मुक्त लोकहित में किया गया कर्म ही निष्काम कर्म है।।९।। प्रत्येक मनुष्य लक्ष्य की सिद्धि के निमित्त नित्य काम करता ही रहता है। कर्मफल में चिन्ता और उत्तेजना का अभाव निष्कामत्व कहलाता है, अर्थात् निष्काम कर्म भी किसी लक्ष्य की सिद्धि के लिये ही किया जाता है, पर उसमें दूसरे कामों की तरह कर्मफल की व्यग्रता नहीं होती।।१०।।

---

१. गीता २.४९ २. गीता ५.१२

संन्यासं योगमुत्सृज्य मध्यां वृत्तिं समाचरेत् ।
युक्तो निष्कामभावेन कार्यं कर्म समाचरेत् ।।११।।

[१]शास्त्रज्ञाता च लोकज्ञो नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ।
[२]नैष्कर्म्यं लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ।।१२।।

क्रियासु युक्तचेष्टो वै साम्ययोगपरायणः ।
[३]निस्पृहः सर्वकामेभ्यो योगयुक्तः प्रकीर्तितः ।।१३।।

नियन्त्रितमना योगी निस्पृहः सर्वकर्मसु ।
समत्वं सेवते नित्यं सङ्क्लेष्टेनापराजितः ।।१४।।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
सेवते जनकल्याणं वेदपुण्यमनाश्रितः ।।१५।।

महात्मा गाँधी ने श्रीमद्भगवद्गीता के इस विचार की पुष्टि करते हुए कहा है कि गीता के अनुसार जो कर्म को छोड़ता है, उसका पतन होता है। जो कर्मफल को छोड़ता है, वह ऊपर उठता है। पर फल के परित्याग का अर्थ परिणाम के प्रति उदासीनता नहीं है। प्रत्येक कार्य के सम्बन्ध में उसके सम्भावित परिणाम, उसके उपाय तथा उसकी क्षमता की जानकारी आवश्यक है। जो व्यक्ति इन सबसे समन्वित हो, उपस्थित कार्य की पूर्ति में पूरी तौर पर संलग्न है, परिणाम की इच्छा से रहित है, उसने ही काम के फल का परित्याग किया है। फल के त्याग का यह अर्थ नहीं कि परित्यागी को फल प्राप्त नहीं होगा।... उसे तो वास्तव में हजार गुना फल मिलता है। गाँधी जी कहते हैं कि जो फल की चिन्ता करता है, वह कर्तव्य के पालन में प्रायः धैर्य छोड़ देता है। वह व्यग्र हो जाता है, क्रोध से भर जाता है और अनुचित कार्य करने लगता है तथा किसी एक कार्य के प्रति निष्ठावान् न रहकर एक कार्य से दूसरे पर कूदता है।

कार्यशीलता, लोकहित, समता, न्यायनिष्ठा, निष्काम कर्म के प्रति रुचि कर्मयोग कहा जाता है, अर्थात् ये सब कर्मयोग के लक्षण हैं।।११।। कर्तव्य कर्म में संलग्नता, व्यावहारिकता, व्रत, कर्मों का ज्ञान और कुशलता कार्यशीलता कही जाती है।।१२।। लोकहित में संलग्न, संयमी, निष्काम कर्म से सन्तुष्ट, कर्तव्यनिष्ठ, इच्छारहित व्यक्ति कर्मयोग के लिये अनुष्ठान करता है, अर्थात् कर्मयोग के लिये कर्तव्यनिष्ठा, निस्पृहता तथा निष्काम कर्म में रुचि आवश्यक है।।१३।। अभ्यास, संयम, व्रत तथा न्याययुक्त कार्यों से कर्मण्य निःसन्देह निष्कामत्व प्राप्त करता है।।१४।। योगी लोग अनासक्त हो आत्मशुद्धि, लोकहित तथा न्याय को प्रतिष्ठित करने के निमित्त कर्म करते हैं।।१५।।

---

१. भागवत ११.३.४२ २. भागवत ११.३.४६ ३. गीता ६.१७

कर्मयोगी यमी वीरो निर्ममो निरहङ्कृतः ।
प्रतिष्ठापयते न्यायं समत्वं जगतो हितम् ।।१६।।

[1]युक्ताचारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
निष्कामभावयुक्तस्य योगो भवति दुःखहा ।।१७।।

[2]योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ।
लोकस्य संग्रहार्थं च न्यायस्थापनहेतवे ।।१८।।

योगिनो ज्ञानसम्पन्ना मानवानां हिते रताः ।
समाः सर्वेषु लोकेषु निर्द्वन्द्वा निरहङ्कृताः ।।१९।।

न्यायनिष्ठा मुक्तसङ्गा निर्भीकाः शीलसंयुताः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकाराः सिद्धा निष्कामकर्मसु ।।२०।।

[3]सततं भूतिकर्माणि योगयुक्तः करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।।२१।।

समभावसमायुक्तः कार्यं कर्म करोति यः ।
[4]अनाश्रितः कर्मफलं स योगी परमो मतः ।।२२।।

कल्याणार्थाय जीवानां साम्यस्थापनहेतवे ।
कुरुते कार्यकर्माणि योगयुक्तो महामनः ।।२३।।

निष्ठया परया तप्तं निष्कामत्वसमन्वितम् ।
कर्तव्येन कृतं कर्म योगयुक्तं प्रकीर्तितम् ।।२४।।

जो व्यक्ति कर्मफल का आश्रय छोड़कर समभाव से समन्वित हो कर्तव्य कर्मों को करता है, वही परम योगी है।।१६।। योगी लोग ज्ञानसम्पन्न, मनुष्यों के हित में संलग्न, सब में समता का अनुभव करने वाले, निर्द्वन्द्व, निरहङ्कारी, न्यायशील, आसक्ति से मुक्त, निर्भीक, शीलवान्, सिद्धि तथा असिद्धि में निर्विकार एवं निष्काम कर्म में सिद्ध होते हैं।।१७-१८।। प्राणियों के कल्याण तथा समत्व की स्थापना के निमित्त कर्मयोग में युक्त महापुरुष कर्तव्य कर्मों को करता है।।१९।। कार्यनिष्ठ कर्मयोग द्वारा लोकहित साधता है तथा न्याय, समता एवं जगत् का हित प्रतिष्ठापित करता है।।२०।। निर्द्वन्द्व, निरहंकारी, संयमी, वीर कर्मयोगी न्याय, समता तथा विश्वकल्याण को प्रतिष्ठित करता

---

१. गीता ६.२७ २. गीता ५.२२ ३. गीता ६.२
४. गीता ६.२

सदुद्देश्यसमायुक्तं सङ्गं त्यक्त्वा फलं तथा।
व्रतेन क्रियते यत्तत् निष्कामं कर्म वै स्मृतम्।।२५।।

पुरुषो लक्ष्यसिद्ध्यर्थं कर्माणि कुरुतेऽनिशम्।
अनुद्वेगः कर्मफले निष्कामत्वमुदाहृतम्।।२६।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति साधकः।
निष्कामकर्माभिरतो भवे चरति नित्यशः।।२७।।

समाजः

समं जना अजन्त्यस्मिन् समाजः प्रतिपद्यते।
सहकार्यं समोत्कर्षो न्यायः शीलं पराक्रमः।।१।।

स्वराज्यं समताराज्यं कर्तव्ये दृढनिष्ठता।
ज्ञानं शिवं मनुष्यत्वं समाजस्य सुलक्षणम्।।२।।

समाजो मानवो नित्यं स्थितावन्योन्यसंश्रयात्।
ततस्तयोः समायोगाद् राष्ट्रोत्कर्षः समृद्ध्यति।।३।।

सहयोगात् समाजस्य पौरुषं सिद्ध्यति स्फुटम्।
पौरुषेणैव सर्वस्य हितं लोकस्य सिद्ध्यति।।४।।

समाजे मानवः शान्तिं सुखं ज्ञानं च विन्दति।
मानवानां पौरुषेण समाजः सम्प्रवर्धते।।५।।

है।। कर्मयोग से लोकहित के निमित्त कार्यनिष्ठा सिद्ध होती है। कल्याण में निष्ठावान् योगी जनमङ्गल को बढ़ाता है।।२१।।

कर्मयोग के ज्ञान के लिये लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की टीका सहित श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन लाभप्रद है।

जिसमें सब लोग समान रूप से जाने जाते हैं, वह समाज कहलाता है। सहकारिता, सम्यक् उत्कर्ष, न्याय, शील, पराक्रम, स्वतन्त्रता, समता, प्रेम, कर्तव्य में दृढ़ निष्ठा, ज्ञान, कल्याण, मनुष्यता—ये समाज के शुभ लक्षण हैं, अर्थात् अच्छे समाज के ये गुण हैं।।१-२।। समाज और मानव नित्य एक दूसरे पर आश्रित हैं। उन दोनों के संयोग से राष्ट्र का उत्कर्ष सम्यक् रूप से बढ़ता है।।३।। समाज के सहयोग से पुरुषार्थ निश्चय ही सिद्ध होता है। पुरुषार्थ से ही सारे समुदाय का हित सिद्ध होता है।।४।। समाज में मनुष्य शान्ति, सुख तथा ज्ञान को प्राप्त करता है। मनुष्यों के

समाजमानवोत्थानं राष्ट्रोत्थानं प्रकीर्त्तितम् ।
तस्मात्तयोः समुत्थाने प्रयत्नं कुरुते सुधीः ।।६।।

नैष्ठिको ज्ञानसम्पन्नः सङ्कष्टेनापराजितः ।
विद्यया कर्मणा शीलै राष्ट्रोत्थानं विवर्धयेत् ।।७।।

अन्योऽन्यसहकार्यं तत् सकलं राष्ट्रवर्धनम् ।
सहयोगादभ्युदयो यशः शान्तिश्च वर्धताम् ।।८।।

[1]न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं मानुष्यमूलकम् ।
मानुष्यं सर्ववर्णानां मानवानां परो गुणः ।।९।।

भवे वैभिन्यसंयुक्ते साधवः समदर्शिनः ।
मानसत्कारसेवाभिर्मानुष्यं विन्दते सुधीः ।।१०।।

सज्जनः सम्यगाचारो रक्षयेन्नरगौरवम् ।
संवर्धयेद्धि बन्धुत्वमेकत्वं जनमङ्गलम् ।।११।।

[2]कर्मशीलगुणाः पूज्यास्तथा जातिकुले नहि ।
[3]न वर्णतो न जनकाद् ब्रह्मतेजः प्रपद्यते ।।१२।।

[4]न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जते ह्यहंभावः स वै सत्पुरुषः स्मृतः ।।१३।।

पुरुषार्थ से समाज की अभिवृद्धि होती है।।५।। समाज और मानव दोनों का उत्कर्ष राष्ट्र का उत्थान कहलाता है। इसलिये बुद्धिमान् दोनों के ठीक ठीक उत्थान के लिये प्रयत्न करते हैं।।६।। ज्ञानसम्पन्न मानव संकष्टों से बिना पराजित हुए विद्या, कर्म और शील से राष्ट्र के उत्थान को बढ़ायें।।७।। पारस्परिक सहयोग सारे राष्ट्र की अभिवृद्धि करता है। सहयोग से अभ्युदय, यश और शान्ति प्राप्त होती है।।८।। समाज की अच्छी व्यवस्था के बिना किसी को सुख प्राप्त नहीं होता। स्वतन्त्रता और समता का अपहरण कर अच्छी सामाजिक व्यवस्था सिद्ध नहीं होती।।९।। राष्ट्र की सेवा, समोत्कर्ष और आनन्दमय जीवन सबका अधिकार और कर्तव्य हैं।।१०।। संसार में समष्टिवादी और व्यक्तिवादी दो प्रकार के दृष्टिकोण हैं। व्यक्तिभाव अहंकार और मद को पैदा करता है। समष्टिभाव मानव के व्यक्तित्व का अपहरण करता है। इन दोनों के

---

१. शान्ति. २. शुक्र. २.५५ ३. शुक्र. १.३९
४. भागवत ११.२

यस्य कस्य च वर्णस्य ज्ञानं देहे प्रतिष्ठितम् ।
तस्य कीर्तिर्यशो मानं विराजन्ते हि सर्वशः ।।१४।।

यो नरः संयमे सत्ये सत्कार्ये सततोत्थितः ।
स श्रेष्ठत्वमवप्नोति [1]वृत्तेन हि भवेद् द्विजः ।।१५।।

संयोग में ही लोकहित निहित है। निःसन्देह व्यष्टि और समष्टि की मर्यादित भावनाएँ ही संसार का हित, सौहार्द, व्यक्तित्व और लोकमंगल को बढ़ाती हैं।।११-१४।। समष्टि और व्यष्टि (समाज और व्यक्ति) का सामञ्जस्य संवृद्धि और आनन्द का कारण है। समाज के हित में संलग्नता कल्याण और उत्कर्ष का साधन है।।१५।।

व्यक्ति और समष्टि के पारस्परिक सम्बन्ध के प्रश्न पर चिरकाल से कई विचारधाराएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् व्यक्ति को समाज का मूल आधार स्वीकार करते हुए व्यक्तिवाद को पुष्ट करते हैं। उनके विचार में समाज व्यक्तियों का समूह है, प्रत्येक मनुष्य स्वतः उद्देश्य स्वरूप है, व्यक्तिगत प्रेरणा और स्वार्थ ही सामाजिक प्रक्रियाओं का मूल स्रोत है, व्यक्तिगत हितों की उपलब्धि में रुकावटों को दूर करना ही सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य है। अन्य विद्वान् व्यक्ति के बजाय समष्टि की प्रधानता स्वीकार करते हुए समष्टिवाद को पुष्ट करते हैं। ये विचारक व्यक्ति को समष्टि का अवयवमात्र समझते हैं। व्यक्तिगत मानस को समष्टि के लोकमानस की कृति मानते हैं, समष्टि के उद्देश्य की सिद्धि ही व्यक्ति की वृत्ति स्वीकार करते हैं। कुछ दूसरे विद्वान् व्यक्ति और समष्टि दोनों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए, दोनों को अपनी गति, प्रगति के लिये अन्योन्याश्रित समझते हैं, संसार के समस्त व्यापार को मानस और समाज दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम मानते हैं। इनके विचार में लोकमानस और व्यक्तिगत मानस दोनों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए 'व्यक्ति और समष्टि' की मान-मर्यादाओं में सामंजस्य आवश्यक समझते हैं। अतिव्यक्तिवाद और अतिसमष्टिवाद दोनों ही दोषपूर्ण हैं। जहाँ मानव साधन और साध्य दोनों है, व्यक्तित्व के विकास के लिये नैतिक, बौद्धिक और कलात्मक जीवन की अभिव्यक्ति का पूरा और स्वतन्त्र अवसर आवश्यक है, वहाँ 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है', समाज मनुष्य के जीवन का अनिवार्य तत्त्व है, मानवीय गुणों की सृष्टि समाज में ही होती है। समग्र की पूर्णता में ही व्यक्ति की पूर्णता है, समाज का अंग होकर ही, अपने संकुचित स्वार्थ का परित्याग करके ही सहयोगयुक्त मानव कल्याण के प्रयासों द्वारा ही, व्यक्ति अपनी पूर्णता प्राप्त कर सकता है। (देखें—"आचार्य नरेन्द्रदेव – युग और नेतृत्व", पृ. ४६२-४६५)

---

१. भागवत ११.७.१०

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ।
[1]मनुष्यास्तु तथा शान्ता निर्वैराः सुहृदः समाः ।।१६।।

सुव्यवस्थां समाजस्य विना सौख्यं न कस्यचित् ।
स्वातन्त्र्यं समतां हित्वा सा व्यवस्था न सिद्ध्यति ।।१७।।

राष्ट्रसेवा समोत्कर्षः सानन्दं जीवनं तथा ।
उदाहरन्ति सर्वेषामधिकारान् कृतानि च ।।१८।।

व्यष्टेश्चैव समष्टेश्च दृष्टी द्वे जगतो मते ।
व्यष्टिभावो ह्यहङ्कारं सृजत्येव मदं तथा ।।१९।।

दृढं समष्टिभावश्च व्यक्तित्वं हरतेऽनिशम् ।
संयोगे हि तयोरेव निहितं लोकमङ्गलम् ।।२०।।

भावौ मर्यादितौ नूनं सेवेते जगतो हितम् ।
वर्धयेते हि सौहार्दं व्यक्तित्वं लोकमङ्गलम् ।।२१।।

वर्णों की कोई विशेषता नहीं, सभी मनुष्यतामूलक हैं। मनुष्यता ही सब वर्णों के मनुष्यों का बड़ा गुण है।।१६।। विभिन्नतासम्पन्न संसार में साधु लोग समदर्शी होते हैं। बुद्धिमान् मान-सत्कार तथा सेवा से मनुष्यता की आराधना करते हैं।।१७।। शुद्ध आचारवान् सज्जन मानव-गौरव की रक्षा करे, बन्धुता, एकता तथा जनकल्याण की वृद्धि करें।।१८।। जिसके हृदय में जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम तथा जाति से अहंकार नहीं होता, वही निस्सन्देह सज्जन है।।१९।। जो व्यक्ति संयम, सत्य तथा सत्कार्य में सदा संलग्न (उत्थित) है, वह श्रेष्ठता को प्राप्त करता है। सदाचार से द्विजत्व (श्रेष्ठता) की प्राप्ति होती है।।२०।। प्रारम्भ में कृतयुग (सत्य युग) में सब व्यक्तियों का हंस वर्ण था। उस समय जब मनुष्य शान्त, निर्वैर, सुहृद् और समान थे।।२१।।

वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद हैं, पर सभी स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भ में वर्णों का भेद नहीं था। श्रीमद्भागवत के साथ साथ महाभारत के शान्तिपर्व में भी इसे स्वीकार किया गया है। (देखें शान्तिपर्व) जिन विद्वानों ने चातुर्वर्ण्यव्यवस्था की मान्यता स्वीकार की है, उनमें से ही बहुतों ने ज्ञान, भक्ति तथा सदाचार की श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए सब वर्णों के ज्ञानी और भक्तों की श्रेष्ठता को मान्यता दी है। (भागवत ७.९.१०)। ज्ञानी और भक्त के लिये वर्ण और जन्म के

---

१. भागवत ११.५.२२

अहंकार का त्याग आवश्यक बताया है। शान्तिपर्व आदि कतिपय शास्त्रों में आचार को ही द्विजत्व का आधार बताकर नैतिक गुणों के आधार पर विभिन्न वर्णों की व्याख्या की गयी है। शान्तिपर्व में यह स्वीकार करते हुए कि सभी वर्णों के मनुष्य मूलतः 'ब्रह्मज' हैं, क्षमता और व्यवसाय के आधार पर कालान्तर में वर्णों की उत्पत्ति का विश्लेषण किया गया है। (देखें शान्तिपर्व) कतिपय विद्वानों ने गुण, कर्म और स्वभाव को ही वर्णों की विभिन्नता का आधार बताया है। (देखें गीता, शुक्रनीति)। दूसरे विद्वान् इस आधार को स्वीकार करके पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान करते हुए कहते हैं कि जीव अपने पूर्वजन्म के संचित कर्म और गुण के आधार पर विभिन्न वर्णों में जन्म लेता है और इस तरह जन्म वर्ण का आधार बन जाता है। पर व्यवहार में जन्म का गुण, कर्म तथा स्वभाव से अनिवार्य सम्बन्ध दिखाई नहीं पड़ता। एक ही परिवार में विभिन्न गुण और स्वभाव के व्यक्ति जन्म लेते हैं, विशिष्ट वर्ण से सम्बन्धित कुलों में बहुत से ऐसे मनुष्य जन्म लेते हैं, जिनके गुण, कर्म और स्वभाव वर्णविशेष के गुणों और लक्षणों के विपरीत होते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में द्विज-परिवारों के गुणविहीन, आचारहीन व्यक्तियों को 'द्विजबन्धु' की संज्ञा प्रदान की गयी है और उन्हें ज्ञान के क्षेत्र में शूद्रवत् बताया है। (देखें श्रीमद्भागवत)। यह भी बताया है कि 'जिस पुरुष के वर्ण का जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे में पाया जाय, तो उसे भी उसी वर्ण का मानना चाहिये (भागवत ७.११.३५)। अत्रिसंहिता में जहाँ 'जन्मना ब्राह्मण' के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है, वहाँ कहा गया है कि संस्कारों से द्विजत्व और विद्या से विप्रत्व प्राप्त होता है (अत्रिसंहिता १४१-१४२) और आचरण के भेद से जन्मना विप्र दस प्रकार के हो सकते हैं (देखें अत्रिसंहिता ३७२-३८२)। इस तरह शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है कि आचार की शुद्धि द्वारा साधारण मनुष्य द्विजत्व प्राप्त कर सकता है और विपरीत आचरण, गुण, कर्म और स्वभाव से ब्राह्मण वर्ण में जन्मा व्यक्ति म्लेच्छ तथा चाण्डाल भी बन सकता है। विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति से सम्बन्धित एक वेदमन्त्र के आधार पर बहुत से विद्वान् समाज में वर्णों का स्थान तथा उनकी ऊँच-नीच स्थिति को निर्धारित करते हैं। पर आचार्य आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव आदि विद्वानों के विचार में इस मन्त्र का मूल उद्देश्य सब वर्णों को 'ब्रह्मज' बताते हुए अवयवी के आधार पर उनमें और समाज में एकता प्रतिष्ठित करना है। जो भी हो, वैषम्यसम्पन्न श्रेणीबद्ध समाज एक ऐसे सिद्धान्त को मान्यता प्रदान कर सकता है तथा उसकी पुष्टि कर सकता है, जो समाज में जन्म से व्यक्ति का स्थान निर्धारित करता है, ऊँच-नीच के सिद्धान्त को पुष्ट करता है तथा समान सुविधा से बहुत से व्यक्तियों को वर्जित कर देता है। समत्व पर आधारित जनतान्त्रिक समाज तो उसी सिद्धान्त को स्वीकार कर सकता है, जो एकत्व की पुष्टि

समाजोत्कर्षः

सततं पौरुषं कालः स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात् ।
ततस्तयोः समायोगादुत्थानं सम्प्रवर्धते ।।१।।

संस्कारः करणं चैव स्थितिः कालः प्रकीर्तितः ।
नराणां विविधाश्चेष्टाः पौरुषं परिकीर्तितम् ।।२।।

स्वभावः पौरुषं कालः सर्वमत्र प्रयच्छति ।
परमेतेषु सर्वेषु पौरुषं वै विशिष्यते ।।३।।

स्वभावविजयः शौर्यं संयमेन च सत्कृतैः ।
अभ्यासेन विवेकेन जयं प्राप्नोति मानवः ।।४।।

करे और सबको समान रूप से अपने मनुष्यत्व की अभिव्यक्ति और विकास की सुविधा प्रदान करे तथा लोकहित की वृद्धि करते हुए समत्व की सिद्धि का अवसर दे, जिससे जन्म के बजाय आचरण तथा समाजसेवा के आधार पर समाज में व्यक्ति का पद निर्धारित हो, गुण और स्वभाव के आधार पर मानव का कार्यक्षेत्र निश्चित हो एवं समाजोपयोगी कार्य को सम्मान प्राप्त हो।

पौरुष और काल निरन्तर एक दूसरे पर आश्रित हैं। इन दोनों के संयोग से ही उत्कर्ष होता है।।१।। संस्कार, उपकरण और परिस्थिति **काल** कहलाता है। पुरुषों की विभिन्न चेष्टाएँ **पौरुष** कहलाती हैं।।२।।

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने काल शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया है। इस पुस्तक में ऊपर लिखे अर्थ में ही 'काल' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

स्वभाव, पौरुष और काल तीनों ही सब चीजों को नियन्त्रित करते हैं, पर इनमें पौरुष का विशेष स्थान है।।३।। स्वभाव पर विजय शौर्य है। संयम, सत्कार्य, अभ्यास और विवेक द्वारा मानव स्वभाव पर विजयी हो सकता है, अर्थात् निरन्तर अभ्यास से संयमी पुरुष विवेक और सत्कार्य से स्वभाव को बदल सकता है।।४।।

कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि स्वभाव को बदलना असम्भव है और स्वभाव के विपरीत कार्य अप्राकृतिक है। पर बहुत से विद्वानों का विचार है कि जहाँ मानव-स्वभाव मानव क्रियाकलापों को नियन्त्रित करता है, वहाँ सामाजिक परिस्थितियाँ और मानव-प्रयत्न भी मानव-स्वभाव को प्रभावित करते हैं। स्वभाव वास्तव में काल और पौरुष की क्रिया-प्रतिक्रिया की पृष्ठभूमि में सहज प्रवृत्तियों का संघात है।

स्वभावप्रेरितं कर्म बुद्धिः कालानुसारिणी ।
[१]तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्यैव कुर्वते ।।५।।

पुरुषः पौरुषेणैव सर्वार्थमधिगच्छति ।
प्राप्यते कर्मणा सर्वं न कालादकृतात्मनः ।।६।।

यत्नो हि सततं कार्यस्ततः कालेन सिद्ध्यति ।
[२]पौरुषेणैव रूपेण नियतिर्हि नियामिका ।।७।।

समाजलक्ष्यसिद्ध्यर्थं समाजोत्कर्षहेतवे ।
[३]देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।।८।।

कर्म स्वभावप्रेरित है और बुद्धि परिस्थिति और संस्कार का अनुसरण करती है, फिर भी बुद्धिमान् श्रेष्ठ पुरुष ठीक तौर पर विचार करके ही सब काम करते हैं।।५।।

भर्तृहरि जी ने नीतिशतक में कहा है —

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ।। (नीति. ८९)

मनुष्यों को फलप्राप्ति कर्म के अनुसार होती है और बुद्धि कर्म के अनुसार ही चलती है, फिर भी बुद्धिमान् को विचारपूर्वक काम करने वाला ही होना चाहिये। अर्थात् यद्यपि हमारी बौद्धिक प्रक्रियाएँ स्वभाव, काल और कर्म से बहुत हद तक प्रभावित होती हैं, फिर भी बुद्धिमान् को यथासम्भव विचार से काम लेना चाहिये, अच्छी तौर पर विचार करके निर्णय करना चाहिये।

पुरुष पौरुष से ही सब उद्देश्यों को प्राप्त करता है, कर्म से ही सब कुछ मिलता है, कर्महीन काल से कुछ प्राप्त नहीं करता, अर्थात् यद्यपि मानव जीवन और क्रियाकलाप काल यानी परिस्थितियों और साधनों से प्रभावित होते हैं, पर बिना प्रयत्न के परिस्थितियों और साधनों से काम नहीं चल सकता, उनका सदुपयोग करके ही आगे बढ़ा जा सकता है। संस्कारों को भी कर्म की अपेक्षा होती है। कर्मविहीन संस्कार अर्थहीन है।।६।। सदा प्रयत्न किया जाय, तब काल से सिद्धि होती है। नियति भी पुरुषार्थ के रूप से ही जगत् का नियन्त्रण करती है, अर्थात् नियति को भी पुरुषार्थ की जरूरत होती है। परिस्थिति और उपकरणों को यत्न की अपेक्षा होती है।।७।। समाज के लक्ष्य की सिद्धि तथा उसके उत्कर्ष के निमित्त देश, काल और बल को जानकर सब कामों को साधा जाय। कार्य की सिद्धि के लिये देश, काल और बल का ज्ञान

---

१. चाणक्य १३.१८ २. यो. वा. ३.६२.८७ ३. चाणक्य ६.१७

[1]वार्त्ता प्रजां साधयति वार्त्ता वै लोकसंश्रयः ।
तथा मतिर्यथा वृत्तिरित्येव मुनिनोच्यते ।।९।।

[2]वार्त्तामूलो ह्ययंलोकोऽर्थो हि कालस्य कारणम् ।
अर्थे व्यवस्थितं राज्यं सौख्यं च लोकमङ्गलम् ।।१०।।

अर्थानुरूपो वै राज्यं न्यायस्तदनुगच्छति ।
यथा न्यायस्तथा रक्षाऽधिकारो गौरवं तथा ।।११।।

अर्थव्यवस्था न्यायश्च स्थितावन्योन्यसंश्रयात् ।
धनात् प्रभावितो न्यायो धनं न्याये प्रतिष्ठितम् ।।१२।।

आवश्यक है, अर्थात् परिस्थितियों की कठिनाइयों और सम्भावनाओं तथा व्यक्तिगत और सामाजिक शक्तियों और क्षमताओं को ध्यान में रखे बगैर काम करना उचित नहीं है। उपलब्ध उपकरणों, परिस्थिति की सम्भावनाओं, सामाजिक शक्ति तथा व्यक्तिगत क्षमता का विकास और सदुपयोग ही सफलता की कुंजी है।।८।। वार्ता, अर्थात् व्यवसाय ही प्रजा को साधती है, वार्ता ही लोक को आश्रित करती है। विद्वानों का कहना है कि जैसा व्यवसाय वैसी मति होती है, अर्थात् उद्योग-व्यवसाय लोक का आधार तथा व्यक्ति के जीवन का साधन है। मनुष्य की चिन्तन-धारा उससे प्रभावित होती है। जीवन-निर्वाह से सम्बन्धित क्रियाकलापों की बुद्धि पर छाप पड़ती है। विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित समुदायों के सोचने का अपना ढंग होता है।।९।। जीविका की व्यवस्था ही इस जगत् का मूल है। आर्थिक व्यवस्था ही काल का कारण है। आर्थिक व्यवस्था पर ही राज्य की व्यवस्था, सुख और लोक-कल्याण आश्रित हैं।।१०।।

बहुत से प्राचीन विद्वानों ने राज्य को काल का कारण बताया है। पर ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण के बाद समाजशास्त्र के आधुनिक विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि राजनीतिक व्यवस्था स्वयं आर्थिक व्यवस्था पर आश्रित है, आर्थिक परिस्थिति और उपकरण संस्कारों का निर्माण करते हैं, समाज की गति-विधि और स्वरूप को प्रभावित करते हैं। सांसारिक सुख और कल्याण तो आर्थिक साधनों पर ही निर्भर है।

आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप ही राज्य की व्यवस्था होती है, न्याय राज्य के समरूप होता है और जैसी न्यायव्यवस्था होती है, वैसी ही मनुष्य की रक्षा तथा उसके अधिकार और गौरव, अर्थात् मान-मर्यादा होती है।।११।। अर्थव्यवस्था और न्याय

---

१. कामन्दक १३.२७ २. शान्ति. ६८.३५

न्याये चार्थोपकरणे लोकन्यायो विशिष्यते।
न्याये प्रतिष्ठितोऽर्थो हि वर्धते लोकमङ्गलम् ।।१३।।

न्यायो वै गतिशीलश्च क्रियाशक्तिसमन्वितः।
सम्पन्नश्चाधिकारेण तत्प्रभावो विशेषतः ।।१४।।

सर्वे विकाससम्पन्नाः क्रियागतिसमन्विताः।
प्रभावयन्ति चान्योन्यं विकसन्ति च सर्वशः ।।१५।।

सुखदुःखे विषादश्च रागद्वेषौ हिते रतिः।
उल्लासः क्रोधहर्षौ च क्रूरता करुणा क्षमा ।।१५।।

एक दूसरे पर आश्रित हैं। धन से न्याय प्रभावित होता है और धन न्याय में प्रतिष्ठित है, अर्थात् आर्थिक-व्यवस्था का न्याय-व्यवस्था पर गहरा प्रभाव है। सामन्तशाही और पूंजीवादी आर्थिक-व्यवस्थाओं की न्याय-व्यवस्था भिन्न हैं, उनमें मौलिक भेद है। प्रत्येक आर्थिक-व्यवस्था को अपनी रक्षा और प्रगति के लिये समरूप न्याय-व्यवस्था की आवश्यकता होती है।।१२।। न्याय और आर्थिक उपकरणों में लोकन्याय प्रमुख है। लोकन्याय पर आश्रित अर्थ-व्यवस्था ही लोकमंगल को बढ़ाती है।।१३।।

एकमात्र ऐतिहासिक दृष्टि से न्याय की प्रमुखता सिद्ध करना कठिन है। पर नैतिक दृष्टि से लोकन्याय अवश्य ही आर्थिक उपकरणों और साधनों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उपकरणों और साधनों का न्यायपूर्ण उपयोग ही लोक के कल्याण की अभिवृद्धि कर सकता है। (लोकन्याय के स्वरूप के सम्बन्ध में पुस्तक के न्याय-प्रकरण को देखें)

न्याय गतिशील तथा क्रिया और शक्ति से सम्पन्न है। अधिकार से सम्पन्न होने के कारण उसका विशेष प्रभाव है।।१४।। सभी विकास-सम्पन्न तथा क्रिया और गति से समन्वित हैं। वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और सब ओर विकसित होते रहते हैं।।१५।।

आर्थिक प्रक्रियाओं का अन्य सामाजिक प्रक्रियाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अन्य प्रक्रियाएँ और संस्थाएँ आर्थिक प्रक्रिया के समरूप होती हैं और आर्थिक व्यवस्था के मौलिक परिवर्तन के साथ साथ बदलती रहती हैं। पर अन्य सामाजिक प्रक्रियाएँ केवल यन्त्रवत् काम नहीं करतीं, उनकी अपनी गति और शक्ति होती है। वे अपनी आन्तरिक शक्ति से भी विकसित होती हैं और एक दूसरे को भी प्रभावित करती हैं। इनमें न्याय का विशिष्ट स्थान है, क्योंकि अन्य संस्थाओं की तुलना में वह अधिक शक्तिसम्पन्न है और उसकी शक्ति अधिक व्यापक है।

समवायश्च सङ्घर्षः प्रीतिलाभौ च मत्सरः।
उत्कर्षश्चापकर्षश्च ह्युद्भवन्ति भवे सदा।।१६।।

गतिश्च प्रगतिश्चैव तस्य नैसर्गिकौ गुणौ।
पौरुषस्य समायोगात् ते ह्युत्कर्षं समृध्नुतः।।१७।।

कार्यनिष्ठश्च विक्रान्तो विषादेनापराजितः।
देशकालौ समासाद्य समाजोत्कर्षमावहेत्।।१८।।

आनन्दोत्कर्षसिद्ध्यर्थं साम्यस्थापनहेतवे।
स्वातन्त्र्याय च सर्वेषां मानवानां हिताय च।।१९।।

त्यक्त्वा हृदयदौर्बल्यं सङ्कष्टेनापराजितः।
सङ्घर्षात् सहयोगेन वैषम्यं निश्चितं जयेत्।।२०।।

संवर्धयेच्च स्वातन्त्र्यं हितं राष्ट्रस्य मङ्गलम्।
विकासं च समाजस्य समोत्कर्षं च यत्नतः।।२१।।

समाजोत्थानम्

समाजस्य विकासार्थमतीतमनुशीलयेत्।
हेयं यत्तत् परित्यज्य प्रगतिप्रदमाश्रयेत्।।१।।

सुख, दुःख, सन्ताप, राग, द्वेष, समाजहित में रुचि, उल्लास, क्रोध, हर्ष, क्रूरता, करुणा, क्षमा, एकता, संघर्ष, प्रेम, लोभ, ईर्ष्या, उत्कर्ष और पतन संसार में सदा चलते ही रहते हैं।।१६-१७।। गति और प्रगति संसार के सद्गुण कहे गये हैं। पौरुष से उनका योग समाज के उत्कर्ष का साधन है, अर्थात् गति और प्रगति संसार के सहज गुण हैं, पर समाज के विकास के लिये पुरुषार्थ अपेक्षित है।।१८।। कार्यशील, शूरवीर सन्ताप से पराजित हुए बिना देश और काल को समझ कर समाज के उत्कर्ष को बढ़ाये।।१९।। आनन्द तथा उत्कर्ष की सिद्धि के लिये, समता की स्थापना के निमित्त एवं सबकी स्वतन्त्रता और मानवमात्र के हित के लिये हृदय की दुर्बलता को छोड़कर, संकटों से परेशान हुए बिना संघर्ष और सहकार से विषमता को निश्चित रूप से जीते तथा जनता का आनन्द, स्वतन्त्रता, राष्ट्र का हित-मंगल एवं समाज का विकास और समुचित उत्कर्ष यत्नपूर्वक बढ़ाये।।२०-२१।।

समाज के विकास के लिये अतीत का बार बार चिन्तन किया जाय, जो त्याग करने योग्य है, उसे छोड़कर प्रगतिशील तत्त्वों का आश्रय लिया जाय, अर्थात् उन्हें ग्रहण किया जाय।।१।। राष्ट्र की संस्कृति, ज्ञान और आचार का भी ठीक ठीक

राष्ट्रस्य संस्कृतिं ज्ञानमाचारमनुशीलयेत् ।
प्रगतिप्रदतत्त्वानि समारक्षेत् च वर्धयेत् ।।२।।

विश्वस्य सञ्चितं ज्ञानं विज्ञानमनुशीलयेत् ।
देशकालौ च विज्ञाय प्रगतिप्रदमाश्रयेत् ।।३।।

अतीतं वर्तमानं च भविष्यं ज्ञेयमेव च ।
वर्तमानं भविष्यं वै साधयेत् कार्यतत्परः ।।४।।

शीलं वृत्तं विवेकश्च संघशक्तिर्बलं तथा ।
संघर्षो रचना क्रान्तिर्व्रतं शौर्यं पराक्रमः ।।५।।

लोकसेवा देशभक्तिः सिद्धान्ते च दृढस्थितिः ।
शुभोपकरणैरेतैः समाजोत्थानमावहेत् ।।६।।

अध्ययन किया जाय, उनके प्रगतिशील तत्त्वों की रक्षा और अभिवृद्धि की जाय।।२।। विश्व के संचित ज्ञान-विज्ञान का भी बार बार अध्ययन कर देश तथा काल को समझ कर उनके प्रगतिशील तत्त्वों को धारण किया जाय।।३।।

प्रगतिशील जगत् में सामाजिक विकास की प्रक्रिया में नये नये संस्कार, आचार-विचार का सृजन होता ही रहता है। बहुत सी पुरानी बातें काल के प्रवाह में साधक के बजाय बाधक हो जाती हैं, बाधक तत्त्वों को छोड़ना प्रगति के लिये अनिवार्य हो जाता है। पर अतीत का सर्वथा परित्याग घातक और असम्मत है। संचित ज्ञान और अनुभव के प्रगतिशील समाजोपयोगी तत्त्वों की रक्षा प्रगति के लिये नितान्त आवश्यक है। प्रगति के लिये व्यापक दृष्टिकोण, विश्वभावना भी आवश्यक होते हैं। मानव-मात्र के अनुभव से लाभ उठाना ही श्रेयस्कर है। इन्हीं विचारों की पुष्टि में आचार्य नरेन्द्रदेव का कहना है कि आदिकाल से मानवजाति का जो विकास हुआ है, मनुष्य ने जो ज्ञानोपार्जन और चिन्तन किया है, उससे विभिन्न युगों में जिस संस्कृति की सृष्टि हुई है, उसका यथार्थ ज्ञान रखने से ही और उस संस्कृति के उपयोगी अंशों को सुरक्षित रखते हुए उनको नया रूप प्रदान करके ही नव संस्कृति का निर्माण हो सकता है (देखें—आचार्य नरेन्द्रदेव युग और नेतृत्व, पृ. ४५४)।

अतीत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान प्राप्त कर कार्यशील वर्तमान और भविष्य की साधना करे।।४।। शील, सदाचार, विवेक, संघटन, शक्ति, संघर्ष, रचना, क्रान्ति, संकल्प, शौर्य, पराक्रम, लोकसेवा, देशभक्ति, सिद्धान्तों में दृढ़ निष्ठा इन उपायों से समाज का उत्कर्ष किया जाय।।५-६।। न्याय और कर्तव्य की भावना से, दृढ़ता, ज्ञान

न्यायकर्तव्यभावाभ्यां दृढताज्ञानसाहसैः ।
सत्कृतैः सहयोगेन समाजोत्थानमावहेत् ।।७।।

मानवत्वसमायुक्तो धैर्योत्साहसमन्वितः ।
रचनात्मककार्येण समाजोत्थानमावहेत् ।।८।।

न्यायेन हि बलं प्राप्य न्यायेनैव प्रयोजयेत् ।
विरोधयेत् स्थिरस्वार्थं लोकन्यायं च पोषयेत् ।।९।।

परित्यज्य दुराचारमन्यायं दमनं तथा ।
स्थापयेच्च सदाचारं न्यायं समत्वमेव च ।।१०।।

वृद्ध्यर्थं लोकन्यायस्य लोकमङ्गलहेतवे ।
समाजं सम्पदं चैव साम्ययोगेन साधयेत् ।।११।।

कार्यकाले समुत्पन्ने क्रान्तिं चापि विवर्धयेत् ।
सुयोजिता क्रान्तिरेषा समाजं नवमावहेत् ।।१२।।

सङ्घर्षाः क्रान्तयश्चैव लक्ष्यसाधनहेतवः ।
लोकार्थं न्यायवृद्ध्यर्थं ते मन्तव्या मनीषिभिः ।।१३।।

सङ्घशक्तिर्महाशक्तिर्निर्बलानां परं बलम् ।
ततः सङ्घातयोगेन वर्गाधिप्यं विनाशयेत् ।।१४।।

और साहस से तथा सत्कार्यों और सहयोग से समाज का उत्कर्ष किया जाय।।७।। मानवता से, धैर्य और उत्साह से सम्पन्न हो रचनात्मक कार्यों द्वारा समाज का उत्कर्ष किया जाय।।८।। न्याय से शक्ति प्राप्त कर न्याय से उसका प्रयोग कर स्थिर स्वार्थों का विरोध तथा लोकन्याय को पुष्ट किया जाय।।९।। दुराचार, अन्याय तथा दमन को छोड़ कर सदाचार, न्याय और समता की स्थापना की जाय।।१०।। लोकन्याय की वृद्धि तथा लोककल्याण के निमित्त समाज और सम्पत्ति को समता की योजना से साधा जाय, अर्थात् उसे सम्पन्न तथा उसका संचालन किया जाय।।११।। उपयुक्त समय के उपस्थित होने पर क्रान्ति भी की जाय तथा सुयोजित क्रान्ति द्वारा नये समाज की स्थापना की जाय।।१२।। संघर्ष और क्रान्तियाँ लक्ष्य साधन के उपकरण हैं। लोकहित और न्याय की वृद्धि के निमित्त उन्हें विद्वानों ने मान्यता प्रदान की है।।१३।। संघटन की शक्ति एक महान् शक्ति है, निर्बलों का परम बल है, अतः संघटन की विधि से वर्ग-आधिपत्य का विकास किया जाय। शक्तिशाली वर्ग की शक्ति और आधिपत्य का मुकाबला संघटन के बल पर ही निर्बल जनता द्वारा किया जा सकता है।।१४।। हृदय की दुर्बलता को

त्यक्त्वा हृदयदौर्बल्यं न्यायस्थापनहेतवे ।
शोषितस्य हिते न्यायात् सङ्घर्षं चालयेत् स्थिरः ।।१५।।

दलितान् शोषितांश्चैव रक्षितुं न्यायनिष्ठया ।
दमनं शोषणं सर्वं सर्वोपायाद् विनाशयेत् ।।१६।।

दलितक्षेमसङ्घर्षं समाजोत्कर्षहेतवे ।
न्यायेन चालयेद् वीरः सङ्कष्टेनापराजितः ।।१७।।

न्यायोचितं हि सङ्घर्षं चालयेत् कार्यतत्परः ।
अन्यायं शोषणं जित्वा समाजं स्थापयेत् समम् ।।१८।।

मानवोचितमार्गेण सन्न्यायेन समर्थितम् ।
हिते लोकस्य सङ्घर्षं चालयेत् पूर्णनिष्ठया ।।१९।।

मानवोचितमार्गेण न्यायस्थापनहेतवे ।
रहितं वर्गसङ्घर्षात् समाजं स्थापयेत् समम् ।।२०।।

लोकतान्त्रिकराष्ट्रे वै लोकतन्त्रं समाचरेत् ।
स्थापयेत्तस्य सिद्धान्तान् मूल्यानि च परम्पराम् ।।२१।।

विरोधयेच्चान्यायं वै पोषयेज्जनमङ्गलम् ।
लोकतान्त्रिकमार्गेण समाजं स्थापयेत् समम् ।।२२।।

त्याग कर न्याय की स्थापना के निमित्त शोषित जनता के हित में न्यायपूर्वक दृढ़ संकल्प के साथ संघर्ष चलाये।।१५।। न्यायनिष्ठा से दलितों और शोषितों की रक्षा की जाय तथा सब प्रकार से दमन और शोषण का नाश किया जाय।।१६।। संकष्टों से अपराजित वीर न्यायपूर्वक समाजोत्कर्ष के निमित्त दलितों का कल्याण करने वाले संघर्ष का संचालन करे।।१७।। कार्यशील न्यायोजित संघर्ष का ही संचालन करे। उसके द्वारा अन्याय और शोषण पर विजय प्राप्त कर समसमाज की स्थापना करे।।१८।। वह मानवोचित मार्ग से लोकहित में न्याय से समर्थित संघर्ष को पूरी दृढ़ता से संचालित करे।।१९।। मानवोचित मार्ग से न्याय को प्रतिष्ठित करने के निमित्त वर्गसंघर्ष से रहित समसमाज को प्रतिष्ठित करे।।२०।। लोकतान्त्रिक राष्ट्र में लोकतन्त्र का, अर्थात् उसके सिद्धान्त तथा विधि-विधान का पालन करे, उसके सिद्धान्त, मूल्य और परम्परा की स्थापना करे, अन्याय का विरोध करे, जनकल्याण को पुष्ट करे और लोकतान्त्रिक उपायों से समसमाज की स्थापना करे।।२१-२२।। समाज के विकास तथा श्रमिक जनता के कल्याण के

विकासार्थं समाजस्य श्रमिकक्षेमहेतवे ।
दमनं शोषणं जित्वा समाजं स्थापयेत् समम् ।।२३।।

न्यायं च सहकार्यं च न्यायवृत्तिं समाचरेत् ।
अधिकारं मानवानां स्वातन्त्र्यं रक्षयेत्तथा ।।२४।।

लोकतन्त्रं समारक्षेत् शान्तिं विश्वस्य साधयेत् ।
समाचरेद् राष्ट्रहितं वर्धयच्च सुखं समम् ।।२५।।

समोत्कर्षं च कल्याणं सर्वेषां साधयेत् सदा ।
लोभदम्भौ परित्यज्य हितं लोकस्य साधयेत् ।।२६।।

नारी

नराणां चैव नारीणां समोत्कर्षं विवर्धयेत् ।
तेषां समाऽभिवृद्धिर्हि समाजोत्कर्षकारणम् ।।१।।

आशाप्रेमसमायुक्ता लज्जाशीलगुणान्विता ।
सुसंस्कृता सदाचारा नैतिकत्वविभूषिता ।।२।।

ज्ञानकौशलसंयुक्ता कर्तव्ये दृढतत्परा ।
समाजोत्कर्षसंलग्ना सा नारी सात्त्विकी स्मृता ।।३।।

शीलात् कुलं प्रभवति न्यायात् सत्यं प्रवर्धते ।
शीलन्यायसमायुक्ता लभते श्रेय उत्तमम् ।।४।।

निमित्त दमन और शोषण पर विजय प्राप्त कर समसमाज की स्थापना करे, मनुष्यता, सहकारिता तथा न्याय पर आश्रित व्यवसाय और जीवनचर्या प्रतिष्ठित करे, मनुष्यों के अधिकार और स्वतन्त्रता की रक्षा करे, लोकतन्त्र की भी ठीक प्रकार से रक्षा करे, विश्वशान्ति की साधना करे, राष्ट्रहित का आचरण करे, सबके समान सुख की वृद्धि करे, सदा सब के समोत्कर्ष और कल्याण को साधे तथा लोभ और प्रपंच का परित्याग कर विश्व के हित को पुष्ट करे।।२३-२६।।

नर और नारी दोनों का समोत्कर्ष बढ़ाया जाय, उनकी समान अभिवृद्धि समाज के उत्कर्ष का कारण है।।१।। आशा, प्रेम, लज्जा तथा शील से सम्पन्न एवं नैतिकता, ज्ञान और कौशल से विभूषित कर्तव्यशील तथा समाज के उत्कर्ष में संलग्न सुसंस्कृत सदाचारिणी स्त्री ही सात्त्विकी समझी जाती है।।२-३।। सुशीला सात्त्विकी नारी धैर्य और उत्साह से समन्वित हो बन्धुता की रक्षा करे, कुटुम्ब को पाले, बालक और बालिकाओं

सुशीला सात्त्विकी नारी धृत्युत्साहसमन्विता ।
सौभ्रात्रं च समारक्षेत् कुटुम्बं पालयेत्तथा ।।५।।

बालानां बालिकानां च समोत्कर्षं विवर्धयेत् ।
स्वगुणैः सहयोगेन ह्यभिवृद्धिं विधारयेत् ।।६।।

निर्भीका सात्त्विकी नारी स्वातन्त्र्ये परिनिष्ठिता ।
मानवानामधीकारं कर्तव्यं च समाचरेत् ।।७।।

लोकतान्त्रिकसिद्धान्तान् पोषयेत् परिपालयेत् ।
संवर्धयेच्च लोकार्थं शिवं सत्यं च सुन्दरम् ।।८।।

विवेकशीलसम्पन्ना स्वात्मगौरवसंयुता ।
लोकन्यायसमायुक्ता ह्याधिपत्यं विरोधयेत् ।।९।।

समारक्षेच्च स्वातन्त्र्यमधिकारं च गौरवम् ।
स्थापयेत् साम्यबन्धुत्वे वर्धयेच्च जगद्धितम् ।।१०।।

शान्तिप्रिया सुशीला स्त्री वैषम्यमवरोधयेत् ।
कुटुम्बे स्थापयेच्छान्तिं सौहार्द्रं भद्रतां तथा ।।११।।

नार्यश्च मातरो नूनं गौरवे ह्यधिके स्थिताः ।
[1]यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।।१२।।

के उत्कर्ष को बढ़ाये और अपने गुणों तथा सहयोग से कुटुम्ब की अभिवृद्धि करे।।४-५।। स्वतन्त्रता में निष्ठावती निर्भीक सात्त्विकी नारी मनुष्यों के अधिकार और कर्तव्य का सेवन करे, लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों का पालन करे, उन्हें पुष्ट करे, लोकहित तथा सत्य-शिव-सुन्दर की सम्यक् रूप से वृद्धि करे।।६-७।। विवेक, शील तथा आत्मगौरव से सम्पन्न एवं लोकन्याय से समन्वित स्त्री आधिपत्य का विरोध करे, स्वतन्त्रता, अधिकार तथा गौरव की रक्षा करे, समता और बन्धुत्व की स्थापना करे एवं जगत् के हित को बढ़ाये।।८-९।। शान्तिप्रिय सुशीला नारी विषमता को रोके तथा कुटुम्ब में सौहार्द, शान्ति, प्रीति एवं भद्रता को प्रतिष्ठित करे।।१०।। स्त्री तथा माता गौरव में निःसन्देह अधिक हैं। जिस कुल में इनका आदर नहीं होता, वहाँ सब कर्म निष्फल होते हैं।।११।। माता तो सब वृद्धों में अधिक आदरणीय कही जाती है। माता तो सहस्र पिताओं की अपेक्षा गौरव में अधिक है।।१२।। मुनियों का कहना है कि मातृभक्ति पराभक्ति है,

---

१. मनु. ३.५६

माता तु सर्ववृद्धेषु ह्यादरार्हाऽधिका स्मृता ।
[1]सहस्त्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते ।।१३।।

मातृभक्तिः पराभक्तिरित्येव मुनिनोच्यते ।
नमस्कृता हि माता वै परिव्राजकसूनुभिः ।।१४।।

सुशीला शिक्षिता माता बालं शीले सुशिक्षयेत् ।
विशोधयेच्च चारित्र्यं व्यवहारं कृतानि च ।।१५।।

सर्वथा सर्वकालेषु [2]भार्या पुंसां सहायिका ।
[3]भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत् ।।१६।।

यस्मिन् कुले पतिर्भार्या परस्परवशानुगौ ।
तत्रोद्भवन्ति स्नेहश्च सौख्यं शान्तिश्च मङ्गलम् ।।१७।।

सद्गृहे च पतिर्भार्या स्थितावान्योन्यसंश्रयात् ।
तयोरेव सुसम्बन्धाद् वर्धते गृहमङ्गलम् ।।१८।।

[4]नास्ति भार्या समो बन्धुर्नास्ति भार्या समा गतिः ।
[5]नास्ति भार्यासमं किञ्चिन्नरस्यार्तस्य भेषजम् ।।१९।।

गृहलक्ष्मीः समाख्याता कीर्तिता च गृहेश्वरी ।
तस्याः शीलैश्च कौशल्यैर्वर्धते गृहमङ्गलम् ।।२०।।

निःसन्देह संन्यासी हो गया पुत्र भी माता को प्रणाम करता है।।१३।।

माता को छोड़कर पिता को भी नमस्कार करना संन्यासी को नहीं बताया गया है।

सुशीला, शिक्षिता माता बालक को शील की शिक्षा दे, उसके चरित्र, व्यवहार और कार्य को निर्मल बनाये।।१४।। सब तरह सब अवसरों में भार्या पति की सहायिका है। पत्नी के बिना गृहस्थ का घर सूना ही रहता है।।१५।। जिस कुल में पति-पत्नी एक दूसरे के अनुगामी होते हैं, वहाँ स्नेह, सुख, शान्ति तथा मंगल का उदय होता है।।१६।। अच्छे गृहस्थ पति-पत्नी एक दूसरे पर आश्रित होते हैं और उनके अच्छे सम्बन्ध घर में मंगल को बढ़ाते हैं।।१७।। भार्या के समान कोई बन्धु नहीं, भार्या के समान कोई आश्रय नहीं। पीड़ित पुरुष के लिये भार्या के समान कोई औषधि नहीं।।१८।। भार्या 'गृहलक्ष्मी' तथा 'गृहेश्वरी' के नामों से विख्यात है। उसके शील और कौशल से घर में मंगल बढ़ता है।।१९।। कुल में अधिकारों से सम्पन्न, कर्तव्य में संलग्न,

---

१. मनु. ३.१४५ २. शान्ति. २११.२४४.२३ ३. शान्ति. १४४.५
४. शान्ति. १४४.१६ ५. शान्ति. १४४.२५

प्रेमस्रोता रमा धीरा प्रेमग्रन्थिसुसज्जिता।
पतिप्रेमा च कौशल्या सुहिता मृदुभाषिणी।।२१।।

गृहकार्येषु संलग्ना वत्सला नन्दिका तथा।
पतिप्रिया सुशीला च जीवेत् सज्जनजीवनम्।।२२।।

प्रीणाति या सुचारित्र्यैः प्रीणीते या च सर्वदा।
प्रीयते बान्धवान् बन्धून् सा वै प्रोक्ता गृहेश्वरी।।२३।।

सत्यसौन्दर्यसम्पन्ना शीलशृङ्गारशोभिता।
सेवासौभाग्यसंयुक्ता भावभूषणभूषिता।।२४।।

कुरुते कुलकल्याणं विनयं वितनोति वै।
सेवते सर्वसौहार्द्रं प्रेम्णा प्रीणयते पतिम्।।२५।।

गृहस्थः

यस्माद् [१]गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।
आश्रमेषु तु सर्वेषु [२]तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।१।।

[३]आश्रमाणां गृही मूलं श्रेष्ठः सर्वेषु वै तथा।
कर्तव्यकर्मसंसिद्धौ गृही सर्वत्र सिद्ध्यति।।२।।

लोकन्याय से समायुक्त जो नारी है, वह गृहेश्वरी है।।२०।। वह सत्य के सौन्दर्य से सम्पन्न, भावों के भूषण से विभूषित, सेवा के सौभाग्य से युक्त, शील के शृंगार से सुशोभित कुल का कल्याण करती है, विनय का व्यवहार करती है, सबके सौहार्द का उपभोग करती है तथा सबके साथ सौहार्द का अनुसरण करती है और पति को प्रेम से प्रसन्न करती है।।२१-२५।।

चूँकि गृहस्थ का आश्रय लेकर सभी आश्रम चलते हैं, इसलिये गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों से ज्येष्ठ है।।१।। गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों का मूल और सबमें श्रेष्ठ है। कर्तव्य कर्म में सिद्ध गृहस्थ प्रत्येक स्थान और समय में सिद्ध होता है।।२।। गृहस्थ

---

१. मनु. ३.७७ २. मनु. ३.७८

३. शान्ति. १९१.१०; शान्ति. ५५.१५; मनु. ६.८९

शीलं चानुभवं ज्ञानं मानवो लभते गृहे ।
[1]यत्र पक्वकषायो हि दान्तः सर्वत्र सिद्ध्यति ।।३।।

[2]दान्तस्य किमरण्येन ह्यदान्तस्य कुतः सुखम् ।
शान्तो दान्तो गृहस्थोऽपि श्रेष्ठत्वं लभते ध्रुवम् ।।४।।

धूर्ता यत्र न पूज्यन्ते सत्क्रियन्ते च सद्गुणाः ।
[3]दम्पत्योः कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ।।५।।

दाम्पत्यसहवासं च पारिवारिकजीवनम् ।
धनधान्याभिवृद्धिश्च कुलस्य परिपालनम् ।।६।।

सर्वेषां च समोत्कर्ष आनन्दो लोकमङ्गलम् ।
अतिथीनां च सत्कारो निर्बलेभ्यो ह्यनुग्रहः ।।७।।

परस्परं च सौहार्दं समाजस्य हिते रतिः ।
उत्साह उत्सवः शौर्यं पौरुषं दानसंयमौ ।।८।।

प्रगतिप्रदगुणानां च रक्षणं वर्धनं तथा ।
सम्पर्कसहयोगाश्च बालानां कौतुकं तथा ।।९।।

अभिवृद्धिश्च शीलस्य ज्ञानस्य संस्कृतेस्तथा ।
उल्लासः स्नेहहर्षैश्च गृहीणां जीवनं स्मृतम् ।।१०।।

आश्रम में ही मनुष्य शील, ज्ञान और अनुभव प्राप्त करता है। इसमें रहकर सांसारिक विषयों में आसक्ति के पकने पर जितेन्द्रिय पुरुष सर्वत्र सिद्धि प्राप्त करता है।।३।। संयमी पुरुष को वन में जाने की क्या आवश्यकता है? और जो असंयमी है उसको वन में रहने से भी क्या लाभ है? संयमी गृहस्थ निश्चित ही श्रेष्ठता प्राप्त करता है।।४।। जहाँ धूर्तों का आदर नहीं होता और गुणों का सत्कार होता है तथा दम्पती में कलह नहीं होता, वहाँ समृद्धि और ऐश्वर्य स्वयं आते हैं।।५।। दाम्पत्य सहवास, पारिवारिक जीवन, धनधान्य की अभिवृद्धि, परिवार का पालन, सबका सर्वांग उत्कर्ष तथा आनन्द, लोककल्याण, अतिथियों का सत्कार, निर्बलों पर कृपा, पारस्परिक सौहार्द, समाज के हित में रुचि, उत्साह, उत्सव, शौर्य, पौरुष, दान, संयम, प्रगतिशील तत्त्वों की रक्षा और वृद्धि, सम्पर्क, सहयोग, बच्चों के कौतुक, शील तथा ज्ञान और संस्कृति की वृद्धि, उल्लास, स्नेह, हर्ष—यही गृहस्थ जीवन है।।६-१०।। शील, बन्धुता, कल्याण,

---

१. शान्ति. २३४.६ २. शान्ति १६०.३६ ३. चाणक्य २.२२

जीवनं शीलसम्पन्नं बन्धुत्वेन समन्वितम्।
शिवसौन्दर्यसंयुक्तं परोपकारसंयुतम्।।११।।

नैतिकत्वसमायुक्तं हर्षानन्दविभूषितम्।
सुशोभितं च कौशल्यैर्गृहीणां जीवनं शुभम्।।१२।।

भोगतृष्णासु शृङ्गारे सहवासे च संयमः।
परस्परोपकारश्च वृद्धिश्च जगतो हिते।।१३।।

कार्यकर्मसु लग्नत्वं हिते लोकस्य वै तथा।
व्यवहारेषु संशुद्धिः स्वार्थमोहनियन्त्रणम्।।१४।।

सार्वलौकिककार्येषु न्यायपूर्णानुशासनम्।
केलिक्रीडाप्रमोदेषु शीलस्य परिपालनम्।।१५।।

पारिवारिककार्येषु सत्यानुसरणं तथा।
स्नेहस्याचरणं चैव गृहीणां जीवनं शुभम्।।१६।।

गृहस्थो नैतिकत्वेन ह्यात्मोत्कर्षं समावहेत्।
न्यायेन पौरुषेणापि कुटुम्बं परिपालयेत्।।१७।।

संवर्धयेच्च लोकार्थं लोकतन्त्रं जगद्धितम्।
स्वातन्त्र्यं न्यायकल्याणे बन्धुत्वं सहकारिताम्।।१८।।

सौन्दर्य, परोपकार, नैतिकता, हर्ष, आनन्द तथा कौशल से सम्पन्न जीवन ही गृहस्थों का अच्छा जीवन है।।११-१२।। भोगतृष्णा तथा शृंगार एवं सहवास में संयम, पड़ोसियों में सौजन्य, जगत् के हित में वृद्धि, कर्तव्य कर्म तथा लोकहित में संलग्नता, व्यवहार में शुद्धि, स्वार्थ तथा मोह का नियन्त्रण, सार्वजनिक कार्यों में न्यायपूर्ण अनुशासन, खेल, क्रीड़ा तथा विनोद में शील का पालन, परिवार के कार्यों में सत्य का अनुसरण तथा स्नेह का आचरण — यही गृहस्थियों का अच्छा जीवन है।।१३-१६।। गृहस्थ पुरुष नैतिकता द्वारा अपना उत्कर्ष बढ़ाये, न्याय और पुरुषार्थ से कुटुम्ब का पालन करे एवं लोकहित लोकतन्त्र, विश्वहित, स्वतन्त्रता, न्याय, कल्याण, बन्धुता तथा सहकारिता की अभिवृद्धि करे।।१७-१८।।

कुटुम्बकम्

जीवनस्य च सौविध्यमानन्दः सौख्यमेव च।
स्नेहश्चातिथ्यसत्कारः सौहार्दं सहकारिता ।।१।।

सुकल्याणाभिवृद्धिश्च लोकसेवा च वै तथा।
सर्वोत्थानं समोत्कर्षः कुटुम्बस्य सुलक्षणम् ।।२।।

कौटम्बिकः प्रयत्नेन संरक्षति कुटुम्बकम्।
प्रगतिप्रदमर्यादां सौहार्दं कुलगौरवम् ।।३।।

प्रतिष्ठापयते न्यायं सद्वृत्तिं सद्व्रतं तथा।
दीक्षां दत्ते च सर्वेषां शीलेषु सद्गुणेषु च ।।४।।

अध्यापयति सज्ज्ञानं व्यवहारसमन्वितम्।
संवर्धयति चानन्दं सर्वोत्कर्षं च सर्वदा ।।५।।

उभौ पतिश्च भार्या च जीवितः सुखजीवनम्।
आनन्दं कुरुते नित्यं कलानानासमाश्रितौ ।।६।।

पतिरेव स्वभार्यां च प्रसादयति नित्यशः।
संरक्षते च तन्मानं स्नेहं च कुरुते सदा ।।७।।

दत्ते च प्रीतिमानन्दं सौख्यं नानाविधं तथा।
प्रसीदति स्वयं चैव गुणैस्तस्याश्च सेवया ।।८।।

कुटुम्ब समाज का मूल आधार है। वह प्रेम, सौहार्द, अच्छी वृत्ति, सहकारिता, सामाजिकता की भावना, सुसांस्कृतिक जीवन, सम्बन्धियों में भाईचारा तथा हितकारी व्यवहार को बढ़ाता है।।१।। जीवन की सुविधा, सुख तथा आनन्द, स्नेह, आतिथ्यसत्कार, सौहार्द, सहकारिता, कल्याण की अभिवृद्धि, लोकसेवा, भद्रता, सबका उत्थान, सर्वांगीण विकास कुटुम्ब के शुभ लक्षण हैं।।२।। कौटुम्बिक प्रयत्न से कुटुम्ब प्रगतिशील मर्यादा, सौहार्द, कुल के गौरव की रक्षा करता है; न्याय, शुभ जीवनचर्या, उत्तम नियम प्रतिष्ठित करता है; सबको शील और उत्तम गुणों में दीक्षित करता है; व्यवहार समन्वित ज्ञान की शिक्षा देता है तथा सदा आनन्द एवं सबका उत्कर्ष और संस्कृति बढ़ाता है।।३-५।। पति-पत्नी दोनों सुख का जीवन बितातें हैं और विभिन्न कलाओं के सहारे नित्य आनन्द करते हैं।।६।। पति पत्नी को नित्य प्रसन्न रखता है, उसके मान की रक्षा करता है, सदा स्नेह करता है तथा नाना विधि से प्रीति, सुख और आनन्द देता है एवं उसके गुणों और सेवा से आनन्दित होता है।।७-८।। पत्नी भी पति को अपने व्यवहार

प्रसादयति भर्तारं व्यवहारेण चात्मनः ।
सेवां करोति नित्यं सा पुष्णाति च कुटुम्बकम् ।।९।।

स्नेहादानन्दयत्येषा कौशलैर्विनयेन च ।
प्राप्नोति प्रेमशृङ्गारं दाम्पत्यस्य सुखं तथा ।।१०।।

बालका बालिकाश्चैव जीवन्ति प्रेमपूर्वकम् ।
वृद्धानां कुर्वते मानं सत्यमेव वदन्ति च ।।११।।

प्राप्नुवन्ति च सज्ज्ञानं शिष्टाचारं सुसंस्कृतिम् ।
आरभन्ते च सत्कार्यं सहकार्यं च कुर्वते ।।१२।।

वर्धयन्ते समोत्कर्षं स्नेहं च कुलमङ्गलम् ।
आनन्दं कुर्वते नित्यं जायन्ते च सुशिक्षिताः ।।१३।।

कुटुम्बहितसंवृद्धिगौरवस्य च रक्षणम् ।
परस्परोपकारश्च ह्यन्योन्यस्य समर्थनम् ।।१४।।

पारस्परिकसौहार्दं निर्बलेभ्यो ह्यनुग्रहः ।
कुटुम्बस्य जनानां वै कर्तव्यं समुदाहृतम् ।।१५।।

से सन्तुष्ट करती है, सदा सेवा करती है, कुटुम्ब को पालती है, अपने कौशल और विनय से आनन्दित करती है तथा दाम्पत्य का सुख और प्रेम शृंगार प्राप्त करती है।।९-१०।। बालक और बालिकाएँ प्रेमपूर्वक रहते हैं, बूढ़ों का मान करते हैं, सच बोलते हैं, उत्तम ज्ञान, शिष्टाचार और संस्कृति प्राप्त करते हैं, अच्छे काम तथा सहकार्य करते हैं, सर्वागीण उत्कर्ष, स्नेह, कुल के मंगल को बढ़ाते हैं, नित्य आनन्द करते हैं और सुशिक्षित बनते हैं।।१३।। कुटुम्ब के हित की वृद्धि, उसके गौरव की रक्षा, परस्परोपकार, एक दूसरे का समर्थन, बन्धु-बान्धव में सौहार्द, निर्बलों के प्रति कृपा, यह सब निश्चय ही कुटुम्ब के लोगों का कर्तव्य बताया जाता है।।१४।। उत्कृष्ट समाज में प्रगतिशील कुटुम्ब हो, वह निश्चय ही नागरिकता के गुणों से सम्पन्न; सौहार्द, देशबन्धुत्व से सम्पन्न राष्ट्रियता तथा मानवता, लोकतान्त्रिक सौजन्य और विश्वकल्याण की भावना को पुष्ट करे। प्रगतिशील जीवन, लोककल्याण की वृद्धि, मानवता की अभिवृद्धि, उसकी (कुटुम्ब) परीक्षा है।।१५।।

मानवत्वम्

मानवत्वं परा निष्ठा मानवानां परो गुणः ।
मानवत्वेन सम्पन्नो मानवः परमो मतः ।।१।।

मनुष्यत्वं परं शीलं परं ज्ञानं परं तपः ।
मनुष्यत्वसमोत्कृष्टो महामानव उच्यते ।।२।।

कारुण्यं विश्वबन्धुत्वं समत्वं न्यायनिष्ठता ।
मानवानां हिते प्रीतिर्मानवत्वमुदाहृतम् ।।३।।

मानवानां समस्तानां हितबुद्ध्या विचिन्तयेत् ।
दम्भद्वेषौ परित्यज्य विश्वकल्याणमाचरेत् ।।४।।

सर्वमानवसौभ्रात्रं मानवानां परो गुणः ।
भूषितो विश्वभावेन मानवः परमो मतः ।।५।।

मानवानां हितार्थाय यः करोति प्रयत्नतः ।
सत्कार्यं निरहङ्कारो विश्वबन्धुः स उच्यते ।।६।।

यस्तु साम्यव्रताचारो विश्वकल्याणतत्परः ।
न्यायशीलश्च सत्यार्थी विश्वबन्धुः स उच्यते ।।७।।

मानवता महती भावना है, कल्याण और उत्कर्ष का साधन है, समष्टि के स्नेह तथा सौहार्द से सम्पन्न जीवन का वह अमृत है।।१।। मनुष्यता उत्तमशील, उत्तम ज्ञान, उत्तम तप है। मनुष्यता से सम्पन्न महामानव कहा जाता है।।२।। मनुष्यता में दृढ़ विश्वास, श्रद्धापूर्वक उसका सम्मान, तथा नित्य उसका अनुष्ठान परम कर्तव्य है।।३।। श्रद्धा, शील तथा विवेक से मानवता की सिद्धि के निमित्त मानवमात्र की सेवा महाव्रत है।।४।। सत्यनिष्ठ सज्जन न्याय, समत्व की भावना, मैत्री तथा हितनिष्ठा से नित्य मानवता की आराधना करे, अर्थात् सब मनुष्यों में मानवता के दर्शन कर उनसे न्याय, समता, मैत्री का हितवर्धक व्यवहार करे।।५।। करुणा, विश्वबन्धुत्व, समता, न्यायनिष्ठा, मानव-मात्र के हित में प्रीति मानवता कही जाती है। ये सब मानवता के प्रमुख गुण हैं।।६।। समता-विषमता मिश्रित संसार में सब समता-मूलक है, निःसन्देह समता सब प्रजातियों का मौलिक गुण है।।७।।

यद्यपि विभिन्न प्रजातियों के जीवन-स्तर तथा जीवन-चर्या में काफी भेद पाया जाता है और इसके कारण बहुत से सज्जन विभिन्न प्रजातियों की आन्तरिक नैसर्गिक शक्तियों

यस्तु सर्वमनुष्यांश्च ह्यात्मनैवानुपश्यति ।
भजते सर्वकल्याणं विश्वबन्धुः स उच्यते ।।८।।

मनुष्यो ह्यात्मनो नाथः शत्रुर्मित्रं च बान्धवः ।
स्वकृतैः सहकार्येण ह्युत्कर्षं लभते नरः ।।९।।

मानवः सर्वकार्याणां परीमाणमुदाहृतम् ।
अभिवृद्धिर्मनुष्याणां परीक्षा परिकीर्तिता ।।१०।।

मानुष्यं न्यायनिष्ठा वै स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात् ।
परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वन्द्वो नोपलभ्यते ।।११।।

मानुष्यं साम्यभावेन सज्जनः सत्यनिष्ठितः ।
अर्हयेन्न्यायमानाभ्यां मैत्र्या च हितनिष्ठया ।।१२।।

समाजे हि समारब्धं समाजेन प्रभावितम् ।
मानवं जीवनं नूनं सामाजिकमुदाहृतम् ।।१३।।

सामाजिकप्रवृत्तिस्तु पुंसो नैसर्गिको गुणः ।
समष्टिभावसंसिद्धो मानवः पुरुषोत्तमः ।।१४।।

समाजस्य हि संवृद्ध्यै निहितं व्यक्तिमङ्गलम् ।
नित्यं सेवा समाजस्य खल्वात्मोत्कर्षसाधनम् ।।१५।।

का भिन्न-भिन्न मूल्यांकन करते हैं, पर वास्तव में सब प्रजातियों में मूलतः समता और एकता है, सबमें मनुष्यता तथा उत्कर्ष की शक्ति विराजमान है।

मानवता से भूषित ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य सब मनुष्यों में मनुष्यता की भावना रखते हैं।।८।। मानव सब कामों का परिमाण, अर्थात् माप है। मनुष्यों की अभिवृद्धि ही सब कामों की परीक्षा है, अर्थात् वही काम ठीक है, जो कल्याणकारी है, जिससे मनुष्य का हित साधन होता है।।९।। मनुष्य ही अपना स्वामी, शत्रु, मित्र और बान्धव है, अपने सत्कर्मों और सहयोग से ही मनुष्य उत्कर्ष को प्राप्त करता है।।१०।। मनुष्य शक्तिसम्पन्न है, वह सब प्राणियों में श्रेष्ठ है, अपने पौरुष से आनन्द-मंगल प्राप्त करता है।।११।। कातर अज्ञान के कारण अपने को दीन-हीन मानते हैं। वीर पुरुष तो ज्ञान से यत्नपूर्वक मंगल का सृजन करता है।।१२।। समाज में ही जन्म लेने वाला और समाज से प्रभावित मानव-जीवन वास्तव में सामाजिक जीवन है।।१३।। सामाजिक प्रवृत्ति मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। समष्टिभाव से प्रेरित पुरुष ही पुरुषोत्तम है।।१४।। सामाजिकता मानव की शुभकामना (सहज प्रवृत्ति) है। वह समाज का बहुत हित करने वाली है। उसका

श्रद्धाशीलविवेकेभ्यो मानवत्वस्य सिद्धये।
सेवा मानवमात्रस्य महाव्रतमुदाहृतम् ।।१६।।

मानुष्ये दृढविश्वासः सम्मानं तस्य निष्ठया।
अनुष्ठानं च तन्नित्यं कर्तव्यं परमं स्मृतम् ।।१७।।

भूषितो मानवत्वेन विश्वभावगुणान्वितः।
हितं मानवमात्रस्य सर्वदा समुदाचरेत् ।।१८।।

साम्यवैषम्यसंसारे सर्वं वै साम्यमूलकम्।
नूनं सर्वप्रजातीनां समत्वं मौलिको गुणः ।।१९।।

परित्राणे मनुष्याणां न्यायस्थापनकारणे।
सहकार्ये विश्वहिते रतास्ते विश्वसेवकाः ।।२०।।

उत्कर्ष निःसन्देह समाज तथा व्यक्ति के उत्कर्ष का साधन है।।१५।। सामाजिकता और मानवता मनुष्यों के नैसर्गिक गुण हैं। उनका विकास निःसन्देह जीवन का उत्कर्ष कहा जाता है।।१६।। सामाजिकता और मानवता के समान लक्ष्य हैं। सौहार्द, जीवन का उत्कर्ष तथा लोकहित ये लक्ष्य कहे जाते हैं।।१७।।

मनुष्य सामाजिक जीव है, सहानुभूति, प्रेम आदि सामाजिक प्रेरणाएँ उसके सहज स्वभाव के अंग हैं। वह समाज में ही जन्म लेता और परवरिश पाता है, समाज में ही उसके जीवन का विकास होता है, उसकी शक्तियाँ परिपुष्ट तथा उसके नैतिक गुण विकसित होते हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में—"समग्र की पूर्णता में ही व्यक्ति की पूर्णता है, समाज का अंग होकर ही अपने संकुचित स्वार्थ का परित्याग करके ही, सहयोगयुक्त मानव-कल्याण के प्रयासों के द्वारा ही व्यक्ति अपनी पूर्णता प्राप्त कर सकता है" (आचार्य नरेन्द्रदेव – युग और नेतृत्व, पृ. ३३८)। स्वामी विवेकानन्द भी कहते थे—"व्यक्ति का जीवन समष्टि में है, व्यक्ति का आनन्द समष्टि के आनन्द में है, समष्टि से पृथक् व्यक्ति का अस्तित्व चिन्तनीय है", उनका कहना था—"अनन्त समष्टि की ओर धीरे-धीरे बढ़ना, उसके साथ गाढ़ी सहानुभूति और अभेद की भावना बराबर बनाये रखना, उसके आनन्द में आनन्दित होना और उसके कष्टों में व्यथित होना ही व्यक्ति का एक-मात्र कर्तव्य है"।

समष्टि की अभिवृद्धि ही पुरुष का परम स्वार्थ है। उसके द्वारा ही मनुष्य संसार में उत्तम श्रेय प्राप्त करता है। समाज की समृद्धि में ही व्यक्ति का मंगल अन्तर्हित है। समाज की नित्य सेवा ही आत्मोत्कर्ष का साधन है।।१८-१९।। समता, सत्य एवं समष्टि (समाज) के स्नेह से सम्पन्न तथा मानवता से अलंकृत मनुष्य सम्मानित मानव समझा

उदात्तभावसम्पन्नो लोकज्ञो विश्वसेवकः ।
सर्वाधिकारं संरक्षेत् स्वाधिपत्यं परित्यजेत् ।।२१।।

पोषयेद् विश्वकल्याणं विश्वन्यायं विधारयेत् ।
दुष्कार्यनिग्रहं कृत्वा विश्वोत्कर्षं विवर्धयेत् ।।२२।।

मानवः शक्तिसम्पन्नः श्रेष्ठः सर्वेषु जन्तुषु ।
स्वात्मनः पौरुषेणैव प्राप्नोति पदमुत्तमम् ।।२३।।

आत्मानं कातरोऽज्ञानाद् दीनं हीनं च मन्यते ।
वीरो ज्ञानेन यत्नेन सृजत्यत्यन्तमङ्गलम् ।।२४।।

समष्टेरभिवृद्धिर्हि पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ।
मानवः खलु तेनैव लभते श्रेय उत्तमम् ।।२५।।

मानवाधिकारः

जगद्धितसमायुक्तं कर्तव्येन समन्वितम् ।
समत्वमूलं स्वातन्त्र्यमधिकारो नृणां स्मृतः ।।१।।

अधिकारविहीनस्तु पशुरेव प्रकीर्तितः ।
अधिकारसमायुक्तो मानवः परिलक्ष्यते ।।२।।

कर्तव्यमधिकारश्च स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात् ।
अधिकारविहीनं वै कर्तव्यं दासता स्मृता ।।३।।

जाता है।।२०।। निस्पृह, निरहंकारी, सदा न्याय से नियन्त्रित, सबके लिए समता से सज्जित, मैत्री तथा मनुष्यता से अलंकृत, शौर्य और शील से सुशोभित, विद्या एवं सदाचार और दृढ़ प्रतिज्ञा से सम्पन्न तथा सबकी अभिवृद्धि में संलग्न मनुष्य सम्मानित माना जाता है।।२१-२५।।

जगत् के हित और कर्तव्य से समन्वित समतामूलक स्वतन्त्रता मनुष्य का अधिकार है।।१।।

स्वतन्त्रता के साथ-साथ जगत् का हित (सामान्य हित), कर्तव्य तथा समता मानव-अधिकार के अनिवार्य अंग हैं।

अधिकारविहीन मनुष्य पशु के समान है। अधिकारसम्पन्न व्यक्ति ही मानव है।।२।। कर्तव्य और अधिकार एक दूसरे पर आश्रित हैं। अधिकार से रहित कर्तव्य तो दासता

कर्तव्यरहितं स्वत्वमाधिपत्यमुदाहृतम् ।
तयोरेव समायोगात् स्वातन्त्र्यं लभते नरः ।।४।।

जगद्धितं समत्वं च संरक्षेद् यत्नतोऽनिशम् ।
तयोरेव समायोगादधिकारो विशुद्ध्यति ।।५।।

है। कर्तव्य से विहीन अधिकार आधिपत्य है। कर्तव्य और अधिकार के संयोग से ही पुरुष स्वतन्त्रता प्राप्त करता है।।३-४।।

कर्तव्य और अधिकार के नैसर्गिक सम्बन्ध को करीब करीब सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने तो प्रभुसत्ता, स्वत्व और कर्तव्य उन सब अर्थों में अधिकार शब्द का प्रयोग किया है। प्रभुत्व, सत्ता और कर्तव्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध ही इसका मूल कारण है। प्रभुत्व और उत्तरदायित्व दोनों ही सत्ता के लक्षण हैं। प्रभुत्व उत्तरदायित्वपूर्ण होता है, उत्तरदायित्व का पालन ही प्रभुत्व का मूल कारण है और उद्देश्य है। इस तरह अधिकृत सत्ता प्रभुत्व और उत्तरदायित्व दोनों है। इसी तरह स्वत्व, मिलकियत के अधिकार और कर्तव्य का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकार उत्तरदायित्व, अर्थात् कर्तव्य से बँधे हुए हैं। उनका उत्तरदायित्वपूर्ण उपभोग ही वांछनीय है। यही बात व्यक्ति के दूसरे अधिकारों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने तो कर्तव्य पर ही विशेष जोर दिया है।

आधुनिक भारतीय नेताओं ने भी अधिकार और कर्तव्य दोनों को मान्यता दी है। कर्तव्य और अधिकार का कैसा सम्बन्ध है? इस विषय पर आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों में कुछ मतभेद है। कुछ विद्वानों की राय में अधिकार-व्यवस्था जहाँ एक व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्रदान करती है, वहीं वह उस स्वतन्त्रता पर दूसरे व्यक्तियों की स्वतन्त्रता के आदर तथा संरक्षण पर प्रतिबन्ध या कर्तव्य लगाती है। कुछ विद्वानों के विचार में अधिकार और कर्तव्य का सम्बन्ध इससे कहीं अधिक घनिष्ठ है। उनके विचार में कर्तव्य अधिकार का अविच्छिन्न अंग है। जहाँ स्वतन्त्रता-सम्पन्न व्यक्ति ही समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन कर सकता है, समाज की अभिवृद्धि में पूर्ण रूप से अपना योगदान कर सकता है, वहाँ अधिकार और स्वतन्त्रता का उद्देश्य मानव को अपने विकास तथा आनन्द के निमित्त स्वच्छन्द परिस्थिति और सुविधा प्रदान करना ही नहीं, बल्कि उसमें ऐसी क्षमता भी पैदा करना है कि वह समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सके, समाज सम्बन्धी कर्तव्यों को अपनी स्वेच्छा से पूरा कर सके।

जगत् के हित और समता की निरन्तर रक्षा करे। इन दोनों के संयोग से अधिकार शुद्ध होता है।।५।।

प्रगतिप्रदसंसारे लोकात्मोत्कर्षवर्धकाः ।
नैसर्गिका मनुष्याणामधिकाराः प्रकीर्तिताः ।।६।।

समाजे वै समारब्धः समाजेन प्रतिष्ठितः ।
परिवर्तनशीलोऽयमधिकारः प्रकीर्तितः ।।७।।

जैसा कि पहले श्लोक में कहा गया है, समता और जगत् का हित मानव-अधिकार के अविच्छिन्न अवयव हैं। समता तो मानव-अधिकार का प्राण है। वही अधिकार वास्तव में मानव-अधिकार कहा जा सकता है, जो सब मनुष्यों को समान रूप से प्राप्य हो। जो अधिकार किसी विशिष्ट वर्ग या समुदाय के व्यक्तियों तक सीमित है, उसे वर्ग-अधिकार कहा जा सकता है, उसे मानव-अधिकार की मान्यता नहीं प्रदान की जा सकती। प्रोफेसर हावहाउस, प्रोफेसर लास्की आदि सभी विद्वान् सामान्य हित (कामन गुड), अर्थात् समान हित को मानव-अधिकार का अनिवार्य तत्त्व स्वीकार करते हैं। प्रोफेसर हावहाउस के विचार में सामान्य हित व्यक्तिगत अधिकारों का स्रोत है। अधिकारों की उत्पत्ति समाज में होती है, अधिकार सामाजिक हित का तत्त्व है, सामाजिक हित के विरुद्ध कोई व्यक्तिगत नैतिक अधिकार नहीं है। हावहाउस स्वीकार करते थे कि व्यक्ति के अधिकार व्यक्तित्व पर आधारित हैं, व्यक्ति के उत्कर्ष की शर्त है। पर व्यक्तित्व स्वयं सामान्य हित में एक तत्त्व है और इसी कारण उसके अधिकारों को नैतिक मान्यता प्राप्त है।

मानव अधिकार व्यक्ति और समाज के हितों को बढ़ाने वाले हैं। कुछ राजनीतिज्ञों के विचार में ये अधिकार नैसर्गिक (प्राकृतिक) हैं। ये अधिकार जो समाज में प्रारम्भ होते हैं और समाज से प्रभावित होते हैं, निसन्देह ही परिवर्तनशील हैं।।६-७।।

अधिकारों की उत्पत्ति और मान्यता के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान् लाक और रूसो मानव-अधिकारों को नैसर्गिक, प्राकृतिक मानते थे। उनके विचार में मनुष्य कतिपय अधिकारों को लेकर समाज में प्रवेश करता है। उसके ये अधिकार प्राकृतिक हैं। उनकी रक्षा करना, उसको मान्यता प्रदान करना समाज और राज्य का कर्तव्य है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध विचारक जेन आस्टिन के विचार में मानव-अधिकार राज्य की आज्ञा पर आश्रित हैं। राज्य कानून द्वारा जिन अधिकारों को मान्यता प्रदान करता है, वही मानव-अधिकार है। दूसरे बहुत में विद्वानों ने इतिहास का विश्लेषण करते हुए बताया कि कानून और मानव-अधिकार का आदि स्रोत राज्य के बजाय समाज है। अधिकार की उत्पति समाज में हुई, समाज में ही उसे पहले पहल मान्यता मिली। इस बात को स्वीकार करते हुए जहाँ कुछ

मानवानामधीकारा लोकन्यायगुणान्विताः ।
जनहितसमायुक्ता नराणां सद्गुणाः स्मृताः ।।८।।

गतिशीलोऽधिकारो वै प्रगतिस्तस्य सद्गुणः ।
आत्मलोकहितार्थाय सुविचारैः प्रयोजयेत् ।।९।।

लोकस्यास्याभिवृद्धिर्हि गुणस्तस्य प्रकीर्तितः ।
विभूषितो लोकहितैर्लभते श्रेय उत्तमम् ।।१०।।

स्वातन्त्र्यैरधिकाराणां स्वलक्ष्यं लभते नरः ।
लोकार्थविपरीतं च स्वातन्त्र्यं न विधीयते ।।११।।

विद्वान् मानव-अधिकार के लिये सामाजिक मान्यता ही पर्याप्त समझते हैं, वहाँ कुछ विद्वान् सामाजिक मान्यता के साथ-साथ राज्य की मान्यता भी आवश्यक समझते हैं। प्रोफेसर हेरल्ड लास्की आदि बहुत से विद्वान् जान लाक और जेन आस्टिन दोनों के सिद्धान्तों को अस्वीकार करते हुए प्राकृतिक मानव-अधिकार का एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं। वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि सब अधिकार सामाजिक हैं, उनकी उत्पत्ति समाज में होती है, उनका सामाजिक लक्ष्य है, सामाजिक हित उनका विशिष्ट गुण है, समाज के साथ साथ वे भी बदलते हैं, समाज के अनुरूप ही उनका स्वरूप होता है। अच्छे समाज में समाजहित से समन्वित मानव-अधिकार समाज द्वारा स्वीकृत होते ही हैं। पर उनका नैतिक अस्तित्व समाज की स्वीकृति के बजाय उनके अपने निहित गुणों पर आश्रित है। वे मानव-अधिकार हैं; क्योंकि वे समाजहित की वृद्धि तथा व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं उत्कर्ष के लिये आवश्यक हैं। इस अर्थ में वे प्राकृतिक तथा नैसर्गिक हैं और उनकी मान्यता के लिये समाज में संघर्ष किया जा सकता है। (देखें हेरल्ड लास्की : ग्रामर आफ पालिटिक्स)।

लोकन्याय के गुण से समन्वित तथा लोकहित से सम्पन्न मानव-अधिकार पुरुष का सद्गुण है।।८।। अधिकार गतिशील है, प्रगति उसका सद्गुण है। अपने और लोक के हित के लिये इन्हें विचारपूर्वक प्रयोग करना चाहिये।।९।। लोकहित की वृद्धि ही उसका गुण है, लोकहित से विभूषित यह अधिकार उत्तम श्रेय प्राप्त करता है।।१०।। पुरुष अधिकारों की स्वतन्त्रता से अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। लोकहित के विपरीत अधिकार या स्वतन्त्रता का कोई विधान नहीं है।।११।। स्वतन्त्रता, सबकी समता, सबकी समान रक्षा, विचारों की स्वतन्त्रता, सबका समान गौरव, सहयोग तथा जीवन और संस्कृति की स्वतन्त्रता, अन्याय तथा दमन और आधिपत्य एवं शोषण से रक्षा, लोकयात्रा

[1]स्वातन्त्र्यं सर्वसाम्यं च सर्वेषां समरक्षणम् ।
स्वातन्त्र्यं च विचारस्य सर्वेषां समगौरवम् ।।१२।।

स्वातन्त्र्यं सहयोगस्य जीवनस्य कृतस्य च ।
समरक्षणमन्यायदमनाधिप्यशोषणैः ।।१३।।

सौविध्यं लोकयात्रायै समोत्कर्षाय साधनम् ।
समत्वसहितो न्यायो ह्यधिकारा नृणां स्मृताः ।।१४।।

मानवानामधीकारान् कर्तव्यानि च यत्नतः ।
राष्ट्रिको ज्ञानसम्पन्नः संरक्षेत् परिपालयेत् ।।१५।।

मान्यतां तु समाजस्य राज्यस्वीकृतिमादरम् ।
मानवः स्वाधिकारेभ्यः सुराष्ट्रे लभते ध्रुवम् ।।१६।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने चाधिपत्यसमन्विते ।
सुनियोजितसङ्घर्षैः स्वस्वत्वं पद्यते नरः ।।१७।।

भूत्यर्थं सर्वलोकानां व्यक्तित्वोत्कर्षहेतवे ।
जनसङ्घर्षयोगेन चेतिहासक्रमेण हि ।।१८।।

अधिकारो मानवानां स्वातन्त्र्यं न्यायगौरवे ।
भवे ध्रुवं विवर्धन्ते विकसन्ति च निश्चितम् ।।१९।।

संरक्षणं च विस्तारः स्वत्तानां मानवस्य हि ।
व्यवस्थायाः समाजस्य सद्गुणौ परिकीर्तितौ ।।२०।।

की सुविधा, समोत्कर्ष के साधन, समता सहित न्याय—ये सब मनुष्यों के अधिकार हैं।।१२-१४।। ज्ञानसम्पन्न राष्ट्रशासक मानव-अधिकारों और कर्तव्यों की यत्नपूर्वक रक्षा तथा उनका पालन करे।।१५।। अच्छे राष्ट्र में अपने अधिकारों के लिये समाज की मान्यता और राज्य की स्वीकृति मनुष्य को निश्चित ही प्राप्त हो जाती है।।१६।। विषमता से सम्पन्न आधिपत्य से त्रस्त राष्ट्र में सुनियोजित संघर्षों द्वारा मनुष्य अपने अधिकार को प्राप्त करता है।।१७।। इस संसार में सब लोगों के कल्याण के निमित्त तथा व्यक्तित्व के उत्कर्ष के लिये वर्गसंघर्ष के उपाय से तथा इतिहास के क्रम से मनुष्यों के अधिकार, स्वतन्त्रता, न्याय और गौरव निःसन्देह बढ़ते और विकसित होते हैं।।१८-१९।। मानव के अधिकारों का संरक्षण और विस्तार समाज की व्यवस्था के सद्गुण कहे जाते हैं।।२०।।

---

१. शान्ति.

कर्तव्यम्

कल्याणार्थाय जीवानां समाजोत्कर्षहेतवे ।
स्वातन्त्र्याय समत्वार्थं संवृद्ध्यर्थं च संस्कृतेः ।।१।।

आनन्दात्मोत्कर्षसिद्ध्यै न्यायस्थापनहेतवे ।
योगयुक्तं कार्यमेव कर्तव्यं समुदाहृतम् ।।२।।

स्वस्वकर्तव्यनिष्ठा या सा गुणः परिलक्ष्यते ।
कर्तव्यकर्माभिरतो लभते श्रेय उत्तमम् ।।३।।

जीवनोद्देश्यकर्तव्ये साध्यसाधनसंस्थिते ।
सुसम्बन्धात् तयोरेव मानवत्वं सुसिद्ध्यति ।।४।।

उद्देश्यनिश्चितं कार्यं कर्तव्यं समुदाहृतम् ।
सल्लक्ष्यसिद्धिसामर्थ्यं परीक्षा तस्य वै स्मृतः ।।५।।

सदादर्शसमायुक्तं दृढसङ्कल्पसम्भृतम् ।
कर्तव्यं न्यायसंयुक्तं जीवनोत्कर्षसाधनम् ।।६।।

कर्तव्यं कर्म कुर्वीत यावद्धि पुरुषायुषम् ।
दरिद्राति स्वकर्तव्ये ह्यनाचारः स उच्यते ।।७।।

[1]केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः ।
कारणान्निश्चयं कृत्वा कार्यं कर्म समाचरेत् ।।८।।

कर्तव्य गतिशील है, वह परिस्थितियों से प्रभावित, देशकाल से नियन्त्रित एक व्यावहारिक सत्य है।।१।। देशकाल से प्रेरित कर्तव्य प्रगतिशील है। न्याय और कल्याण की संवृद्धि उसकी परीक्षा है।।२।। हमारे दावे और अधिकार कर्तव्य तथा क्षमता पर आश्रित हैं। कर्तव्य पहला तत्त्व है, क्षमता उसका साधन है।।३।। कर्तव्य और क्षमता से हीन व्यक्तियों के दावे सर्वथा जनता के आनन्द तथा देश के हित के घातक हैं।।४।। जीवन के उद्देश्य और कर्तव्य साध्य-साधन हैं। अच्छे लक्ष्य की सिद्धि की क्षमता ही कर्तव्य का गुण है।।५।। अच्छे आदर्श से युक्त, शुभ यत्न से समन्वित तथा न्याययुक्त कर्तव्य जीवन के उत्कर्ष का साधन है।।६।। जीवों का कल्याण, समाज का उत्कर्ष, स्वतन्त्रता, समता-संस्कृति की वृद्धि, आत्मोत्थान, सेवा एवं सत्य की प्रतिष्ठा जैसे शुभ

---

१. वशिष्ठः

अनाश्रितो दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रितः ।
विद्याचरणसम्पन्नः कर्तव्यं परिपालयेत् ।।९।।

सततं सत्प्रयत्नेन कार्यं कर्म समाचरेत् ।
न्यायवृत्तिं समालम्ब्य जीवेत् सज्जनजीवनम् ।।१०।।

उद्योगेन बलेनैव बुद्ध्या धैर्येण साहसात् ।
व्रतेन सहयोगेन कार्यं कर्म समाचरेत् ।।११।।

कर्तव्यनिष्ठा निर्भीकाः सन्तप्यन्ते न दुःखतः ।
कर्तव्यं कुर्वते नित्यं सङ्कष्टेनापराजिताः ।।१२।।

मानवत्वस्य सिद्ध्यर्थं जनकल्याणहेतवे ।
कर्तव्यं पालयेद् धीरः सततं सत्प्रयत्नतः ।।१३।।

जीवनोत्कर्षपुष्ट्यर्थं समाजोन्नतिसिद्धये ।
कर्तव्यं कुरुते वीरः स्नेहसौहार्दपूर्वकम् ।।१४।।

लक्ष्यों के निमित्त न्याययुक्त कार्य ही मानव का कर्तव्य कहा जाता है।।७-९।। मानवता की सिद्धि तथा श्रमिकों के कल्याण के निमित्त धीर पुरुष निरन्तर सत्प्रयत्नों द्वारा अपने कर्तव्य का पालन करे।।१०।। जीवन के उत्कर्ष की पुष्टि तथा समाज की उन्नति के लिये वीर पुरुष स्नेह और सौहार्द के साथ कर्तव्य का पालन करते हैं।।११।।

पश्चिम के अधिकांश आधुनिक विद्वान् समाज के प्रति उत्तरदायित्व को ही मनुष्य के कर्तव्य में सम्मिलित करते हैं। वे इस उत्तरदायित्व में सामाजिक अभिवृद्धि के साथ-साथ सबके साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार को भी शामिल करते हैं। पर प्रोफेसर एल. टी. हावहाउस आदि पश्चिम के कतिपय अन्य विद्वान् अपने जीवन के उत्कर्ष के प्रति मनुष्य के उत्तरदायित्व को भी मानव का कर्तव्य समझते हैं, अर्थात् उनकी राय में सौहार्दपूर्ण व्यवहार तथा सामाजिक कल्याण और जीवनोत्कर्ष सम्बन्धी नियम सभी कर्तव्य हैं। कर्तव्य की यह व्यापक व्याख्या ही भारतीय विद्वानों को स्वीकार हो सकती है, यही पुरानी परम्परा के अनुकूल है।

निःसन्देह कर्तव्य में सम्यक् निष्ठा एक सद्गुण है। कर्तव्य में संलग्न पुरुष उत्तम श्रेय प्राप्त करता है।।१२।। जब तक जिन्दगी है, तब तक कर्तव्य करना चाहिये। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य में दरिद्रता करता है, वह अनाचारी है।।१३।। केवल शास्त्र का आश्रय लेकर कर्तव्य का निर्णय नहीं करना चाहिये। कारण का निश्चय करके ही कर्तव्य का निर्णय करना चाहिये।।१४।।

कर्तव्यमेव कर्तव्यं कर्मण्येन प्रयत्नतः ।
कार्यकर्मसु संलग्नः साफल्यं पद्यते गुणम् ।।१५।।

कष्टे समाजसङ्कष्टे हृदयेनापराजितः ।
धैर्यसाहससंयुक्तो कर्तव्यं साधयेत् सुधीः ।।१६।।

[1]आशा सर्वोत्तमं ज्यौतिर्निराशा परमं तमः ।
आशाधृतिसमायुक्तः साधु कर्म समाचरेत् ।।१७।।

जीवनं यो विजानाति [2]सर्वलोकहितात्मकम् ।
कर्तव्यभावसंयुक्तो लोकसेवां करोति सः ।।१८।।

गुणसाधनसन्दक्षः कर्तव्येन विभूषितः ।
विद्यया कर्मणा शीलैर्वर्धयेज्जनमङ्गलम् ।।१९।।

यस्तु कर्तव्यसन्तुष्टः कार्यं कर्म करोति वै ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागी परमो मतः ।।२०।।

आर्य ग्रन्थों का अध्ययन कर्तव्य की जानकारी में सहायक हो सकता है। पर शब्द प्रमाण को कर्तव्य का निर्णायिक मान लेना ठीक नहीं है। सामाजिक लक्ष्य और जीवनोद्देश्य की कसौटी पर ठीक तौर पर परख कर ही कर्तव्य का सही निर्णय किया जा सकता है। आधुनिक युग में राजा राममोहन राय, महादेव गोविन्द रानाडे आदि विद्वानों ने इसी बात को पुष्ट किया है।

देश-काल के अनुकूल कर्तव्य का निर्णय करके कर्तव्यनिष्ठ विवेकपूर्वक कर्तव्य कर्म करे।।१५।। विद्याचरणसम्पन्न पुरुष दान-पुण्य तथा वेद में वर्णित पुण्य का आश्रय लिये बिना कर्तव्य पालन करे, अर्थात् पुण्य-प्राप्ति की अभिलाषा को त्याग कर कर्तव्य करना चाहिये।।१६-१७।।

सामाजिक हित और जीवनोत्कर्ष की अभिवृद्धि ही कर्तव्य का लक्ष्य है। निष्काम भावना से ही कर्तव्य का ठीक ठीक पालन हो सकता है।

निरन्तर अच्छे प्रयत्न द्वारा कर्तव्य का पालन किया जाय। न्यायसमन्वित व्यवसाय और जीवनचर्या का अवलम्बन कर सज्जनता का जीवन व्यतीत किया जाय।।१८।। उद्योग, शक्ति, बुद्धि, धैर्य, साहस, दृढ़ निष्ठा और संकल्प तथा सहयोग के साथ कर्तव्य कर्मों को किया जाय।।१९।। निर्भीक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति दुःख से सन्तप्त नहीं होते।

---

१. रश्मिमाला २. शान्ति.

दमनस्य विनाशाय निग्रहाय च दुष्कृताम्।
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म समाचरेत्।।२१।।

हितार्थं सर्वलोकानां समाजोत्कर्षहेतवे।
कार्यनिष्ठो न्यायशीलः कर्तव्यं कुरुतेऽनिशम्।।२२।।

नागरत्वम्

नागरत्वं समाजस्य नराणां च परो गुणः।
नागरत्वविहीनश्च जडत्वमधिगच्छति।।१।।

समोत्कर्षाय सर्वेषां राष्ट्रोत्थानाय वै तथा।
नागरेषु सुसम्बन्धः सर्वथा हितकारकः।।२।।

सर्वनागरसौभ्रात्रं लोकार्थो लोकतन्त्रकम्।
प्रतिवेशिषु सौहार्दं नैतिकत्वं सुसंस्कृतिः।।३।।

नराधिकारकर्तव्ये स्वातन्त्र्यं सहकारिता।
लोकज्ञानं च सौन्दर्यं विवेको विनयो व्रतम्।।४।।

सर्वोत्कर्षस्य सौविध्यमानन्दं जीवनस्य च।
समत्वं न्यायशीले च नागरत्वसुलक्षणम्।।५।।

सौम्यत्वं सत्यबन्धुत्वे समष्ट्यां परिनिष्ठता।
तितिक्षा मतभेदेषु व्यवहारेषु चार्जवम्।।६।।

वे कष्टों से पराजित हुए बिना नित्य कर्तव्य करते रहते हैं।।२०।। गुणों की साधना में संदक्ष, कर्तव्य से विभूषित विद्या, कर्म तथा शील द्वारा जनकल्याण को बढ़ाये।।२१।। जो कर्तव्य से सन्तुष्ट हो फल और आसक्ति को छोड़कर कर्तव्य कर्म करता है, वही बड़ा त्यागी है।।२२।।

नागरिकता समाज तथा मनुष्यों का अच्छा गुण है। नागरिकता से विहीन पुरुष अज्ञान को प्राप्त करता है।।१।। सबके उत्कर्ष तथा राष्ट्र के उत्थान के लिये नागरिकों में परस्पर अच्छा सम्बन्ध हितकारक होता है।।२।। सब नागरिकों में बन्धुता, लोकहित, लोकतन्त्र, पड़ोसियों में सद्भाव, नैतिकता, संस्कृति, मानव-अधिकार और कर्तव्य, स्वतन्त्रता, सहकारिता, लोकज्ञान, सौन्दर्य, विवेक, विनय, व्रत, सबके उत्कर्ष के लिये सुविधा, आनन्दमय जीवन, समता, न्याय, शील—ये सब नागरिकता के अच्छे लक्षण हैं।।३-५।। सौम्य भाव, सत्य, बन्धुता, समाज के प्रति निष्ठा, मतभेद में सहनशीलता,

हिते रतिश्च लोकस्य सर्वकार्येषु मार्दवम् ।
गुणैरेतैः समायुक्तं जीवनं नागरं शुभम् ।।८।।

सत्यङ्कारः सत्यबुद्धिः समारम्भः समागतिः ।
समासक्तिः समाहारः सद्व्रतं सति नागरे ।।१०।।

यो लोकनीतिसम्पन्नो लोकाचारसमन्वितः ।
साम्यन्यायसमायुक्तः स्वातन्त्र्ये परिनिष्ठितः ।।११।।

कर्तव्यकर्मसंलग्नो लोकप्रेमविभूषितः ।
कल्याणवर्धनो धीरः स वै सन्नागरः स्मृतः ।।१२।।

यस्तु सत्यव्रताचारो न्यायशीलः पराक्रमी ।
सचेताः सुहितो वीरः स वै सन्नागरः स्मृतः ।।१३।।

समष्टिभावसम्पन्नः सत्यकामः समाजिकः ।
सद्व्रती समुदाचारी सद्विवेकः सुशिक्षितः ।।१४।।

सत्यनिष्ठः सदानन्दः सदाचारः सुभाषकः ।
समः सर्वेषु सौभ्रात्रः सूरः सन्नागरः स्मृतः ।।१५।।

व्यवहार में निष्कपटता, लोक के हित में रुचि, सब कामों में उदारता—इन गुणों से सम्पन्न नागरिक जीवन शुभ है।।६-७।। वायदे को पूरा करना, सत्य बुद्धि, उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य, मेल, अनुराग संग्रह, शुभ संकल्प अच्छे नागरिक में पाये जाते हैं।।८।। जो सत्यव्रत का पालन करता है, न्यायशील तथा पराक्रमी एवं सचेत, हितचिन्तक और वीर है, वही अच्छा नागरिक है।।९।। जो लोकज्ञान और लोकाचार में सम्पन्न है, समता और न्याय से समायुक्त है, स्वतन्त्रता में निष्ठा रखता है, कर्तव्य कार्यों में संलग्न है, लोकप्रेम से विभूषित है तथा कल्याण की वृद्धि करने वाला और धीर है, वही अच्छा नागरिक है।।१०-११।। समष्टि के स्नेह से सम्पन्न, सत्य का प्रेमी, सामाजिक, प्रतिज्ञा का पालन करने वाला, उचित व्यवहार करने वाला, विवेकवान्, सुशिक्षित, सत्यनिष्ठ, सदा आनन्द में मग्न, सदाचारी, अच्छा वक्ता, समता का व्यवहार करने वाला, सबका बन्धु तथा बुद्धिमान् ही अच्छा नागरिक है।।१२-१३।। जो मनुष्य मानव अधिकार और सम्मान में सब मनुष्यों को अपने समान मानता है, वह अच्छा नागरिक है।।१४।। जो लोकतान्त्रिक भाव तथा लोकनिष्ठा से सम्पन्न एवं सदा लोकहित में संलग्न है, वह अच्छा नागरिक है।।१५।। जो लोक तथा लोकनीति का ज्ञाता, लोक

सन्नागरत्वसम्पन्ना मानवा न्यायनिष्ठिताः ।
कर्तव्यमिति बुद्ध्यैव भूतिकर्माणि कुर्वते ।।१६।।

संवर्धयन्ति यत्नेन हितं च सार्वलौकिकम् ।
रक्षयन्ति नराणां च कल्याणं मानगौरवे ।।१७।।

कर्तव्यनिष्ठनीतिज्ञो नागरः प्रगतिप्रियः ।
पुष्णाति प्रगतिं पुंसां व्यवस्थां लोकतान्त्रिकीम् ।।१८।।

इन्द्रजालेन दम्भेन प्रपञ्चेन च मायया ।
अत्याचारं न कुर्वन्ति नागराश्च सदाशयाः ।।१९।।

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
शोषणं च न कुर्वन्ति नागराश्च शुभाशयाः ।।२०।।

भोगैश्वर्यसमाविष्टो लोभोपहतनागरः ।
ईहते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।२१।।

व्याजेनार्जयते कीर्तिं दम्भं चरति सर्वदा ।
अन्यायं कुरुते नित्यं कल्याणं न तनोति सः ।।२२।।

राष्ट्रियत्वम्

सर्वनागरसौभ्रात्रं देशबन्धुत्वमुच्यते ।
तेषां वै समवायश्च नूनं राष्ट्रमुदाहृतम् ।।१।।

की आराधना में तत्पर तथा समाज और अपने उत्कर्ष में संलग्न है, वह अच्छा नागरिक है।।१६।। अच्छी नागरिकता से सम्पन्न न्यायनिष्ठ मनुष्य कर्तव्यबुद्धि से कल्याण कार्य करता है, यत्नपूर्वक सार्वलौकिक हित की वृद्धि करता है और मनुष्यों के कल्याण, मान तथा गौरव की रक्षा करता है।।१७-१८।। कर्तव्य में श्रद्धा रखने वाला, नीति का ज्ञाता प्रगतिशील नागरिक पुरुषों की प्रगति तथा लोकतान्त्रिक व्यवस्था को पुष्ट करता है।।१९।। दाँव-पेंच, पाखण्ड, जालसाजी तथा धूर्तता से शुभ आशयवाला नागरिक अनाचार नहीं करता।।२०।। अच्छे उद्देश्य से समन्वित नागरिक पराये धन की कामना, मन से अनर्थ का चिन्तन तथा शोषण नहीं करते है।।२१।। भोग, ऐश्यर्य और लोभ में फंसा नागरिक कामनाओं के भोग के लिये अन्याय से धन इकट्ठा करना चाहता है, धोखे से कीर्ति प्राप्त करता है, सदा दाव पेंच और पाखण्ड का आचरण करता है, नित्य अन्याय करता है तथा कल्याण का विस्तार नहीं करता।।२२।।

सब नागरिकों में बन्धुत्व ही देशबन्धुत्व है। देशबन्धुओं में सौहार्द राष्ट्रीयता कहलाती है।।१। लोकतान्त्रिक राष्ट्रों में सब नागरिक समान हैं। धर्म के भेद से अधिकार

स्वातन्त्र्यं देशबन्धुत्वं समत्वसहितं तथा।
देशसेवा देशभक्ती राष्ट्रस्य सद्गुणाः स्मृताः ।।२।।

सुराष्ट्रे सकला लोकाः स्वातन्त्र्यं समतां तथा।
मानं ज्ञानं न्यायवृत्तिं समृद्धिं चाप्नुवन्ति वै ।।३।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने वर्गाधिप्यसमन्विते।
राष्ट्रबन्धुत्वशान्ती च विक्रियामधिगच्छतः ।।४।।

सङ्कीर्णा वै राष्ट्रियता रुध्नाति देशबन्धुताम्।
उपेक्षते मनुष्यत्वं विश्वशान्तिं जगद्धितम् ।।५।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने ह्याधिपत्यसमावृताः।
उपेक्षन्ते च लोकार्थं निर्बलानां हितं तथा ।।६।।

विधारयन्ति वैषम्यमन्यायं चैव शोषणम्।
पोषयन्ते दुराचारं स्थिरस्वार्थस्य वै तथा ।।७।।

आधिपत्येन भावेन प्रेरितो राष्ट्रनिष्ठितः।
उपेक्षते मानवानां कल्याणं बन्धुतां तथा ।।८।।

संवर्धयति सङ्घर्षमशान्तिं विग्रहं तथा।
साम्राज्यं च प्रतिष्ठाप्य वर्धयत्यात्मशोषणम् ।।९।।

श्रमिकक्षेमसंयुक्तं जगद्धितसमन्वितम्।
स्वातन्त्र्यसाम्याधारं वै राष्ट्रियत्वं विधारयेत् ।।१०।।

की विषमता न्याय की घातक है।।२।। धर्मभेद के कारण नागरिकों का विभाजन, लोकतान्त्रिक संस्कृति और शान्ति को निश्चय ही नाश करने वाला है।।३।। समाज में जातियों का वैषम्य (असमानता और अन्याय) शान्ति और संवृद्धि का नाश करने वाला है। सब प्रजातियों का सौहार्द निःसन्देह शान्ति को बढ़ाने वाला है।।४।। जाति और धर्म के भेदों से स्थापित और परिपुष्ट संकीर्ण राष्ट्रीयता पारस्परिक सौहार्द को नष्ट करती है। वह सौजन्य का नाश करती है, देशबन्धुता में बाधा डालती है, मनुष्यता एवं विश्वशान्ति और जगत् के हित की उपेक्षा करती है।।५-६।। सब धर्म और प्रजातियों का सौहार्द राष्ट्र कहलाता है। उस राष्ट्र में सब लोकतान्त्रिक जीवन व्यतीत करते हैं।।७।। स्वतन्त्रता, देशबन्धुत्व, समता, देशसेवा, लोकतन्त्र, सन्न्याय राष्ट्र के सद्गुण हैं।।८।। मनुष्यता तथा देशबन्धुत्व पर व्यवस्थित और समाश्रित राष्ट्र ही प्रगतिशील है एवं शान्ति और प्रगति को बढ़ाने वाला है।।९।। विषमता से सम्पन्न तथा विशिष्ट वर्ग के आधिपत्य से समन्वित राष्ट्र में राष्ट्रबन्धुत्व और शान्ति विकृत हो जाते हैं।।१०।। विषमता से

न्यायशीला राष्ट्रनिष्ठाः कर्तव्ये परिनिष्ठिताः ।
हिते मनुष्यमात्रस्य राष्ट्रमुन्नमयन्ति ते ।।११।।

कर्तव्यशीलः स्वगुणैः सहयोगेन चानिशम् ।
राष्ट्रस्वातन्त्र्यमारक्षेत् यशो मानं च वर्धयेत् ।।१२।।

सर्वमानवकल्याणं विश्वशान्तिं विधारयेत् ।
मानवानामधीकारं मानं च रक्षयेत् तथा ।।१३।।

राष्ट्रिकाणां समस्तानां राष्ट्रनिष्ठः सुहृत्सदा ।
समभ्रातृत्वसंयुक्तो निर्बलानां हिते रतः ।।१४।।

दमनस्य विनाशश्च निर्बलानां हिते रतिः ।
समोत्कर्षस्य वृद्धिश्च कर्तव्या राष्ट्रनिष्ठितैः ।।१५।।

कार्यशीलो राष्ट्रनिष्ठः सङ्कष्टेनापराजितः ।
समाचरेद् राष्ट्रहितं रक्षयेत् वर्धयेत्तथा ।।१६।।

ज्ञानेन शीलशौर्याभ्यां राष्ट्रनिष्ठाः सदाशयाः ।
राष्ट्रं लोकान् रक्षेयुर्वर्धयेयुश्च सम्पदः ।।१७।।

[1]मातृभूमिरयं देशः सेव्यः प्राणैर्धनैरपि ।
कर्तव्यं देशभक्तिश्च शोषितानां च रक्षणम् ।।१८।।

सम्पन्न राष्ट्र में आधिपत्य-भावना से ग्रस्त पुरुष लोकहित तथा निर्बलों के हितों की उपेक्षा करते हैं, विषमता, अन्याय और शोषण को धारण करते हैं तथा दुराचार और स्थिर स्वार्थों को पुष्ट करते हैं।।११-१२।। आधिपत्य की भावना से प्रेरित राष्ट्रनिष्ठा मानवमात्र की बन्धुता और कल्याण की उपेक्षा करती है, संघर्ष, अशान्ति और विघटन को बढ़ाती है तथा साम्राज्य को प्रतिष्ठित कर शोषण को प्रज्वलित करती है।।१३-१४।। श्रमिकों के कल्याण से सम्पन्न, समुदाय के हित से समन्वित, देशबन्धुत्व से संयुक्त राष्ट्रीयता को अच्छी तौर पर पुष्ट करे।।१५।। देशभक्ति से सम्पन्न एवं मानवता से विभूषित पुरुषों द्वारा मानवमात्र के हित में देश की उन्नति की जाय।।१६।। यह मातृभूमि प्राण और धन से सेवा करने योग्य है। देशभक्ति और शोषितों का संरक्षण कर्तव्य है।।१७।। पुरुषों का, विशेषतः अपने राष्ट्र में, मेल श्रेयस्कर है। संघ-शक्ति बड़ी शक्ति है, राष्ट्र की उन्नति करने वाली है।।१८।। कर्तव्यशील अपने गुणों से तथा दूसरों के साथ मिलकर निरन्तर

---

१. मालवीयः

देशभक्तिसमायुक्तैर्वृत्तशीलगुणान्वितैः ।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतैः [1]कार्या देशसमुन्नतिः ।।१९।।

[2]ये च राष्ट्रापराधेषु वृद्धिं कुर्वन्ति केचन ।
[3]ये चाशिष्टाः प्रवर्धन्ते नरास्ते मूढचेतसः ।।२०।।

मनसाऽपि स्वराष्ट्रस्य योऽनिष्टानि प्रचिन्तयेत् ।
दम्भलोभपराभूतः नाप्नोति कीर्तिभद्रताम् ।।२१।।

सङ्गतिः श्रेयसी पुंसां स्वराष्ट्रे च विशेषतः ।
सङ्घशक्तिर्महाशक्ती राष्ट्रस्योन्नतिकारिका ।।२२।।

राष्ट्रं सङ्घातयोगेन रक्षयेदभिवर्धयेत् ।
नागराणां च कल्याणमभिवृद्धिरुदाहृता ।।२३।।

राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा करे और उसके यश और मान को बढ़ाये, मानवमात्र के कल्याण को तथा विश्वशान्ति को पुष्ट करे और सदा मनुष्यों के अधिकार और सम्मान की रक्षा करे।।१९-२०।। राष्ट्रनिष्ठ पुरुष सब राष्ट्रिकों का सदा मित्र है और समान बन्धुत्व की भावना से सम्पन्नं निर्बलों के हित में लगा रहता है।।२१।। दमन का विनाश, राष्ट्रिकों के हित में अभिरुचि और समोत्कर्ष की वृद्धि राष्ट्रनिष्ठ व्यक्ति को करनी चाहिये।।२२।।जो लोग राष्ट्र को हानि पहुँचाकर अपनी उन्नति के लिये प्रयत्न करते हैं और जो शिष्ट पुरुषों को सताते हैं, वे नासमझ हैं। जो मन से भी अपने राष्ट्र के अनिष्ट की बात सोचता है, वह दम्भ और लोभ से ग्रस्त कीर्ति और भद्रता प्राप्त नहीं करता।।२३।।

शान्तिपर्व में उनके लिये कड़े दण्ड और कष्ट की व्यवस्था की गयी है। (शान्ति० १३५.२०-२१)।

राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में इटली के राष्ट्रपिता जोसेफ मेत्सनी, भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरु एवं आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे राष्ट्रनिष्ठ नेताओं के विचारों का अध्ययन लाभप्रद है। इन सबने जाति, नस्ल तथा सम्प्रदायों के भेद से ऊपर उठकर सब देशवासियों को देशबन्धुत्व की भावना से अनुप्राणित हो अपने को एक शक्तिशाली राष्ट्र में संगठित कर राष्ट्र की स्वतन्त्रता की अभिवृद्धि करते हुए विश्वशान्ति और मानवमात्र के कल्याण के लिये प्रयत्न करना आवश्यक बताया है। ये सब राष्ट्र को मानव समाज का अंग स्वीकार करते हैं, विश्वहित की रक्षा और वृद्धि प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र का कर्तव्य समझते हैं, देशबन्धुत्व की भावना के साथ साथ

---

१. मालवीयः २. शान्ति. १३५ ३. शान्ति. १३५

सार्वलौकिकसेवा

राजनीतिविशेषज्ञो लोकनीतिविशारदः ।
जनकल्याणकार्येषु स्थितौ ह्यन्योन्यमाश्रितौ ।।१।।

तयोश्च सहयोगो वै समाजोन्नतिकारकः ।
तयोरेव विरोधस्तु सर्वतो दुःखकारणम् ।।२।।

राजनीतिविशेषज्ञैर्लोकज्ञैर्लोकतन्त्रकैः ।
लोकनीत्यभिवृद्धिश्च कर्तव्या वै प्रयत्नतः ।।३।।

लोकनीतिप्रसारेण वर्धयेल्लोकतन्त्रकम् ।
राजनीतिप्रयोगेण लोकनीतिं विवर्धयेत् ।।४।।

अन्योन्यमाश्रिते नीती समलक्ष्यगुणान्विते ।
सर्वदा सहयोगेन कुरुतां लोकमङ्गलम् ।।५।।

स्वतन्त्रता, समता और लोकतन्त्र को राष्ट्र के मूल सिद्धान्त स्वीकार करते हैं। इस तरह ये सब महापुरुष धार्मिक विश्वासों पर आश्रित संकीर्ण साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता तथा आधिपत्य की भावना से अनुप्राणित आक्रमणशील राष्ट्रीयता के विरोधी हैं। राष्ट्र के गौरव की अभिवृद्धि के नाम पर दूसरे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का अपहरण तथा साम्राज्यशाही की स्थापना ये महानुभाव निन्दनीय समझते हैं। ये सब विश्वभावना से समन्वित उदार राष्ट्रीयता के पोषक हैं और इस प्रकार की राष्ट्रीयता को संसार की प्रगति और मानव-कल्याण के लिये लाभप्रद समझते हैं। (देखें—मेत्सनी द्वारा लिखित 'ड्यूटीज आफ मैन' (मनुष्य के कर्तव्य) तथा 'आचार्य नरेन्द्रदेव–युग और नेतृत्व', पृ० ४६६-४७२)।

राजनीतिक विशेषज्ञ और लोकनीति के पण्डित जन-कल्याण कार्य में एक दूसरे पर आश्रित हैं, उन दोनों का सहयोग निःसन्देह समाज की उन्नति करने वाला है तथा उनका विरोध सर्वथा दुःख का कारण है।।१-२।। लोकज्ञ लोकतान्त्रिक राजनीतिक विशेषज्ञों को यत्नपूर्वक लोकनीति की अभिवृद्धि करनी चाहिये।।३।। लोकनीति के प्रसार से लोकतन्त्र की तथा राजनीति के प्रयोग से लोकनीति की अभिवृद्धि होती है।।४।। इन दोनों नीतियों का एक ही लक्ष्य है। वे सदा आपस में मिलकर लोककल्याण करें। अर्थात् लोकनीति और राजनीति दोनों का लक्ष्य लोककल्याण की अभिवृद्धि है और दोनों का सहयोग लाभप्रद है।।५।। लोक की आराधना, अर्थात् सेवा में संलग्न लोकनीति-परायण व्यक्ति अच्छे प्रयत्नों द्वारा सार्वलौकिक जीवन की सेवा करते हैं।।६।।

लोकाराधनसंलग्नो लोकनीतिपरायणः ।
सेवते सत्प्रयत्नेन जीवनं सार्वलौकिकम् ।।६।।

शिष्टाचारो न्यायशीलं वाक्यं हितसमन्वितम् ।
लोकप्रीतिर्लोकसेवा लोकाराधनमुच्यते ।।७।।

सदुद्देश्यसमायुक्तः सद्भावेन च संयुतः ।
कर्तव्यज्ञानसम्पन्नः सत्कल्याणगुणान्वितः ।।८।।

स्वातन्त्र्येण समत्वेन सहयोगेन संयुतः ।
व्यवहारश्च लोकानां सार्वलौकिक उच्यते ।।९।।

नागराणां हितार्थाय समाजोत्कर्षहेतवे ।
कृतं च भूतिकर्माणि जीवनं सार्वलौकिकम् ।।१०।।

लोकनीतिविशेषज्ञो लोकाराधनतत्परः ।
ऋद्धिं सिद्धिं परित्यज्य सन्तप्तं भजते भवे ।।११।।

दुष्कार्यनिग्रहं कृत्वा सेवते जनमङ्गलम् ।
हीने दृष्ट्वा च देवत्वं तं विशेषेण सेवते ।।१२।।

लोकाराधनसंलग्नो लोकनीतिपरायणः ।
स्वगुणैः सहकार्येण विवेकेन तितिक्षया ।।१३।।

निष्ठा (विश्वास तथा आशा), विवेक एवं संकल्प से लोककल्याण के निमित्त निष्काम लोकसेवा ही लोक-आराधना कही जाती है।।७।। शुभ उद्देश्य और सद्भावना से सम्पन्न, कर्तव्य तथा ज्ञान एवं कल्याणभाव से समन्वित, समता तथा स्वतन्त्रता और सहयोग से संयुत लोकव्यवहार ही सार्वलौकिक कहा जाता है।।८-९।। लोगों के हित तथा समाज के उत्कर्ष के निमित्त किया गया कल्याणकारी कार्य सार्वलौकिक जीवन कहा जाता है।।१०।। लोकनीति का विशेषज्ञ लोक की आराधना, अर्थात् सेवा में तत्पर ऋद्धि और सिद्धि के विचार का परित्याग कर संतप्त हृदय से संसार में दुष्ट कर्मों का नियन्त्रण करते हुए जनकल्याण को बढ़ाता है तथा हीनता से ग्रस्त लोगों में मनुष्यता के दर्शन कर उनकी विशेष रूप से सेवा करता है।।११-१२।। लोकनीति का ज्ञाता सेवाभाव से विभूषित हो निरन्तर मनुष्यता का अनुष्ठान करता है तथा समता का अनुगमन करता है।।१३।। उच्च भावना तथा देशप्रेम से सम्पन्न व्यक्ति केवल अपने उत्कर्ष से सन्तुष्ट न होकर सदा लोकहित का चिन्तन करता है। वह रचनात्मक कार्य तथा स्नेह से शान्तिपूर्वक राष्ट्र का

प्रतिष्ठापयते सत्यमृध्नोति जगतो हितम् ।
वृत्तं रक्षति नित्यं च धैर्यं धारयतेऽनिशम् ।।१४।।

सेवाभावसमायुक्तो लोकनीतिविशारदः ।
अनुराध्नोति मानुष्यं समत्वं भजतेऽनिशम् ।।१५।।

उदात्तभावसम्पन्नो देशप्रेमगुणान्वितः ।
नात्मोत्कर्षैस्तर्पणीयः सदा लोकार्थचिन्तकः ।।१६।।

रचनात्मकमार्गेण स्नेहेन शान्तिपूर्वकम् ।
कुरुते राष्ट्रनिर्माणं सर्वोत्कर्षं च सेवते ।।१७।।

भूषितो मानवत्वेन लोकाराधनतत्परः ।
प्रगतिं विश्वकल्याणं हितं राष्ट्रस्य सेवते ।।१८।।

देशभक्तो दयावीरो दृढग्राही दृढव्रतः ।
दाक्ष्याद् दमयते दर्पं दमनं दैन्यदासते ।।१९।।

साध्यं च साधनं चैव स्थिते ह्यन्योन्यमाश्रिते ।
मानवोचितमार्गेण साध्यं प्राप्नोति साधकः ।।२०।।

सर्वोत्कर्षाभिवृद्धिश्च शोषितानां च रक्षणम् ।
मानवानां हिते प्रीतिः सेवकानां गुणाः स्मृताः ।।२१।।

स्वातन्त्र्यं साम्यबन्धुत्वे त्रय एते वरा गुणाः ।
विभूषितो गुणैरेतैराचरेद् लोकसेवकः ।।२२।।

निर्माण तथा सबके उत्कर्ष का अनुष्ठान करता है।।१४-१५।। मानवता से विभूषित, लोकसेवा में तत्पर सज्जन प्रगति, विश्वकल्याण, तथा राष्ट्रहित का अनुष्ठान करता है।।१६।। देशभक्त, दयावीर, दृढ़ता से कार्य करने वाला, धैर्यवान्, दक्षता से मनुष्यों के दर्प, दीनता और दासता को खत्म करता है।।१७।। साध्य और साधन एक दूसरे पर आश्रित हैं, मानवोचित उपाय से शुभ साध्य ठीक तौर पर सिद्ध होताहै।।१८।। सबके उत्कर्ष की वृद्धि, शोषितों का संरक्षण, मानवमात्र के हित में प्रीति—यह लोकसेवकों के गुण हैं।।१९।। स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता तीन अच्छे गुण हैं। इन गुणों से विभूषित लोकसेवक सदाचरण करता है।।२०।। पराक्रम, बल और बुद्धि बड़े गुण हैं, इन गुणों से सम्पन्न लोकसेवक सदाचरण करे।।२१।। स्वतन्त्रता, समता, बन्धुता, पराक्रम, बल और बुद्धि को ग्रहण कर इनके द्वारा लोकसेवक समाज की सेवा करे।।२२।।

पराक्रमो बलं बुद्धिः शौर्यमेते महागुणाः ।
गुणैरेतैः समायुक्त आचरेत् लोकसेवकः ।।२३।।

लोकतन्त्रम्

रक्षणं सर्वलोकानां स्वातन्त्र्यं समता तथा ।
न्यायो ज्ञानं समोत्कर्षस्तद्राज्यस्य सुलक्षणम् ।।१।।

लोकसेवक सहयोग, सदाचार तथा सत्कर्मों द्वारा सत्य को प्रतिष्ठित करे तथा जगत् के हित को बढ़ाये।।२३।।

कुछ लोकसेवक और राजनीतिज्ञ एक दूसरे के कार्यक्षेत्र के महत्त्व को स्वीकार नहीं करते। पर उनका यह आग्रह अवैज्ञानिक है। दोनों के कार्यक्षेत्रों का अपना महत्त्व है। उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों के कार्य एक दूसरे को पुष्ट करते हैं। लोकतान्त्रिक जीवन लोकसेवा से पुष्ट होता है। स्वतन्त्र सार्वजनिक जीवन लोकतन्त्र का प्राण है। सब सार्वजनिक कामों का संचालन कोई लोकतान्त्रिक शासन नहीं कर सकता। लोकतान्त्रिक सामाजिक जीवन की संवृद्धि से लोकतन्त्र के सामाजिक सिद्धान्तों पर आश्रित स्वतन्त्र सार्वजनिक संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योग होता है। पर राज्य और राजनीति की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। राजनीति का सर्वथा परित्याग कर अकेली लोकनीति से काम नहीं चल सकता। लोकसेवा को पग पग पर राज्य की रक्षा और सहायता की जरूरत पड़ती है। राज्यविहीन समाज की कल्पना कम से कम मौजूदा युग के लिये तो एक अव्यावहारिक आदर्श ही है। एकमात्र स्वतन्त्र सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा समाज का सुचारु रूप से संचालन कम से कम इस युग में तो असम्भव ही है। उसके लिये जितने ऊँचे सामाजिक चरित्र की आवश्यकता है, मानव का उतना चारित्रिक विकास तो अभी नहीं ही हो पाया है। फिर समुचित चारित्रिक विकास हो जाने पर तथा लोकतन्त्र और समता पर आश्रित आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को प्रतिष्ठित कर लेने पर लोकतान्त्रिक राज्य को आसानी से समाजसेवा-संस्था के रूप में बदला भी जा सकता है। उस समय राज्य का मुख्य काम रक्षा और नियन्त्रण के बजाय उन सामाजिक कार्यों की व्यवस्था करना होगा, जिनका सम्बन्ध समान रूप से किसी देश या क्षेत्र की सारी जनता से हो। पिछले सौ सवा सौ वर्ष में राज्य का स्वरूप बदल भी रहा है। सामाजिक नियन्त्रण और रक्षा के साथ साथ सामाजिक कल्याण उसका प्रमुख काम बनता जा रहा है।।

सब लोगों की रक्षा, समता, स्वतन्त्रता, न्याय, ज्ञान तथा समोत्कर्ष—ये राज्य के अच्छे लक्षण हैं।।१।। सब पराधीन कार्य दुःख का और सब स्वाधीन कार्य सुख

[1]सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
लोकतन्त्रे सर्वलोकाः स्वातन्त्र्यं प्राप्नुवन्ति वै ।।२।।

सर्वेषु संविधानेषु श्रेष्ठं वै लोकतन्त्रकम् ।
तस्मिन् सर्वे नागरास्तु सर्वसत्तासमन्विताः ।।३।।

समत्वसहितं न्यायं स्वातन्त्र्यमधिकारकम् ।
मानवं गौरवं ज्ञानमैश्वर्यं चाप्नुवन्ति ते ।।४।।

समत्वं देशबन्धुत्वं स्वातन्त्र्यं सहकारिता ।
न्यायो नराधिकारश्च लोकतन्त्रं प्रशस्यते ।।५।।

तितिक्षुः कर्तव्यनिष्ठः कार्यशीलः पराक्रमी ।
सुवृत्तः शीलसम्पन्नः समो लोकार्थचिन्तकः ।।६।।

देशभक्तो न्यायशीलः स्वातन्त्र्ये परिनिष्ठितः ।
सहकार्ये राष्ट्रहिते रतो वै लोकतान्त्रिकः ।।७।।

[2]न कश्चिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ।
[3]तितिक्षा मतभेदेषु कर्तव्या लोकतान्त्रिकैः ।।८।।

[4]सभ्येष्वपक्षपातस्तु सुहितोक्तिश्च मन्त्रिषु ।
देशभक्तिर्मनुष्येषु सुभूषणमुदाहृतम् ।।९।।

का कारण है। लोकतन्त्र में ही सब लोग स्वतन्त्रता प्राप्त करते हैं।।२।। सब संविधानों में लोकतन्त्र ही श्रेष्ठ है। उसमें सर्वाधिकारों से समन्वित सब नागरिक समता सहित न्याय, स्वतन्त्रता, अधिकार, मानव-गौरव, ज्ञान तथा ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।।३-४।। समता, देशबन्धुता, स्वतन्त्रता, सहकारिता, न्याय तथा मानव-अधिकार लोकतन्त्र कहलाता है, अर्थात् ये सब लोकतान्त्रिक राज्य के मुख्य लक्षण हैं।।५।। सहनशील, लोकनिष्ठ, कार्यकुशल, पराक्रमी, सदाचारी, शीलसम्पन्न, कर्तव्य में तत्पर, देशभक्त, न्यायशील तथा स्वतन्त्रता में दृढ़ विश्वास एवं सह कार्य और राष्ट्र में रुचि रखने वाला पुरुष ही लोकतान्त्रिक है।।६-७।। लोकतान्त्रिक किसी का अपमान न करे, सबका मत सुने तथा मतभेद में सहनशील रहे।।८।। सभासदों में पक्षपात का अभाव, मन्त्रियों में हित के वचन, मनुष्यों में देशभक्ति भूषण है।।९।। लोकतान्त्रिक पुरुष लोगों के कल्याण की

---

१. मनु. ४.१६० २. अर्थशास्त्र १.१५ ३. मालवीयः
४. शुक्र. ३.२२७

लोकानां क्षेममन्विच्छेत् पुरुषो लोकतान्त्रिकः ।
श्रुत्वा ज्ञानं लोकहितं न्यायवृत्तिं हि धारयेत् ।।१०।।

[1]लोकतान्त्रिकलोकज्ञो राज्यपण्यं न कारयेत् ।
[2]यत् कल्याणमभिध्यायेत् तत्रात्मानं नियोजयेत् ।।११।।

[3]भेदमूलो विनाशो हि गणानामुपलक्षये ।
[4]तस्मात् सङ्घातमेवाहुर्गणानां शरणं महत् ।।१२।।

[5]अर्थं चैवाधिगम्येत सङ्घातबलपौरुषैः ।
[6]तस्मात् सङ्घातयोगेन प्रयतेरन् गणाः सदा ।।१३।।

[7]मानयन्तो महोत्साहान् कर्मसु स्थिरपौरुषम् ।
यथावत् प्रतिपश्यन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमाः ।।१४।।

सभ्यो लोकसभां गत्वा समस्यां परिचिन्तयेत् ।
नयं कृत्वा विवेकेन हितं लोकस्य वर्धयेत् ।।१५।।

सभ्यो लोकसभामध्ये लोकसेवाव्रतान्वितः ।
लोकतन्त्रस्य मर्यादां प्रथां च परिपालयेत् ।।१६।।

खोज करे, ज्ञान की बात सुनकर न्यायकार्य को धारण करे।।१०।। लोकतान्त्रिक लोकज्ञ 'राज्य को बाजार का सौदा न बनाये'। जिस कार्य को सबके लिये कल्याणकारी समझे, उसीमें अपने आपको लगाये, अर्थात् राज्य के कार्य में स्वार्थ-सिद्धि के लिये सौदेबाजी न कर जनकल्याण की अभिवृद्धि ही करे।।११।। गणराज्यों के विनाश का मूल कारण आपस की फूट ही दिखाई देती है। अतः संगठन ही गणराज्यों का महान् आश्रय है।।१२।। जो सामूहिक बल और पौरुष से सम्पन्न हैं, वे सब प्रकार के अभीष्ट अर्थ प्राप्त कर लेते हैं। इसलिये गण सदा मेल की रीति से प्रयत्न करें।।१३।। महान् उत्साही तथा सभी कार्यों में पुरुषार्थ का परिचय देने वालों का गणोत्तम संमान करते हैं तथा यथोचित दृष्टि से देखते हुए आगे बढ़ते जाते हैं।।१४।। लोकसेवा के संकल्प से युक्त सभासद लोकसभा में लोकतन्त्र के सिद्धान्त तथा मान्यताओं का पालन करे, लोकतन्त्र के मार्ग से लोकन्याय को स्थापित रखे, साहस तथा विवेक से भ्रष्टाचार का विरोध करे,

---

१. शान्ति. २४.१६ २. शान्ति. ९४.१० ३. शान्ति. १०७.८
४. शान्ति. १०७.३२ ५. शान्ति. १०७.२५ ६. शान्ति. १०७.२४
७. शान्ति. १०७.२०

लोकतन्त्रस्य मार्गेण लोकन्यायं विधारयेत्।
साहसेन विवेकेन भ्रष्टाचारं विरोधयेत्।।१७।।
रचनात्मकसङ्घर्षैरन्यायं प्रतिरोधयेत्।
संवर्धयेच्च स्वातन्त्र्यं कल्याणं साम्यभद्रताम्।।१८।।
दलविश्वाससम्पन्नं जनसम्मानसम्भृतम्।
लोकज्ञानसमायुक्तं लोकसेवाव्रतान्वितम्।।१९।।
कार्यकौशलशक्तिभ्यां भूषितं मन्त्रिमण्डलम्।
सभायाः सहयोगेन राज्यकार्यं विधारयेत्।।२०।।
सभाया बहुसंख्याभिः सुसमर्थितमण्डलम्।
समारक्षेच्च राष्ट्रस्य व्यवस्थां शान्तिगौरवम्।।२१।।
राष्ट्रिकाणामधीकारं सम्मानं परिपोषयेत्।
राष्ट्रोत्थानं वर्धयेच्च सर्वोत्कर्षं च मङ्गलम्।।२२।।
सभायाश्चैव सम्मानः कर्तव्यो मण्डलेन वै।
तयोश्च सहयोगेन लोकतन्त्रं सुसिद्ध्यति।।२३।।
सभा पदान्निराकृत्य दूषितं मन्त्रिमण्डलम्।
अधिकुर्वीत सामर्थ्यं मण्डलं च यथास्थितम्।।२४।।
लोकतन्त्रे सर्वसभ्या मन्त्रिमण्डलमेव च।
प्राप्यन्ते नागरेभ्यस्तेऽधिकारं पदगौरवम्।।२५।।

रचनात्मक संघर्षों से अन्याय को रोके तथा स्वतन्त्रता, कल्याण, समता एवं भद्रता को बढ़ाये।।१५-१७।। लोकतन्त्र के सभ्य लोकसभा में विवेक के साथ सभाध्यक्ष के गौरव को लोकतान्त्रिक आचार, रीति, लोकसंस्कृति को, सब भेदों में (वाद विवाद में) सौजन्य को एवं सब सदस्यों में भद्रता को पुष्ट करें।।१८-१९।। सभासद लोकसभा में जाकर समस्या पर विचार करें, विवेक से न्याय करके लोक की हित की वृद्धि करें।।२०।। दल के विश्वास से सम्पन्न, जनता के सम्मान से समन्वित, लोकज्ञान तथा लोकसेवा के संकल्प से युक्त एवं कार्य-कौशल और शक्ति से विभूषित मन्त्रिमण्डल सभा के सहयोग से राज्य के कार्य को संभाले।।२१-२२।। सभा के बहुसंख्यक सदस्यों से समर्थित मन्त्रिमण्डल राष्ट्र की व्यवस्था, शान्ति तथा गौरव की रक्षा करे, नागरिकों के अधिकार और संमान को पुष्ट करे, एवं राष्ट्र के उत्थान, सबके उत्कर्ष तथा मंगल को बढ़ाये।।२३-२४।। सभा का संमान मन्त्रिमण्डल का कर्तव्य है। दोनों के सहयोगों से ही लोकतन्त्र अच्छी तरह सफल होता है।।२५।। सभा दूषित मन्त्रिमण्डल को अपने पद से हटाकर

कर्तव्यस्य समायोगादधिकारो विशुद्ध्यति।
नागराणां हितार्थाय ह्यधिकारं प्रयोजयेत्।।२६।।

मन्त्रिणां सर्वकार्याणां विवेकन्यायसाहसैः।
समीक्षां नागरः कृत्वा रक्षेद् वै लोकतन्त्रकम्।।२७।।

समीक्षारहितं स्वत्वमाधिपत्यमुदाहृतम्।
स्वत्वं समीक्षया युक्तं लोकतन्त्रस्य लक्षणम्।।२८।।

लोकतन्त्राधिकारैश्च भूषितैः सर्वनागरैः।
समाजमाधिपत्यं च रक्षेयुश्च प्रयत्नतः।।२९।।

वर्धयेयुः समत्वं वै श्रमिकक्षेमशासनम्।
अधिकारं मनुष्याणां लोकतन्त्रपरम्पराम्।।३०।।

लोकनेता

लोकनेता जनाधीनः सेवको मार्गदर्शकः।
जनविश्वाससम्पन्नः सेवते जनमङ्गलम्।।१।।

भूषितो लोकशीलेन विद्यावृत्तव्रतान्वितः।
शोभितो न्यायशौर्याभ्यां नीतिज्ञः कार्यतत्परः।।२।।

स्थिति के अनुकूल दूसरे समर्थ मण्डल को स्थापित करे।।२६।। लोकतन्त्र में सब सभासद और मन्त्रिमण्डल नागरिकों से अधिकार, पद और गौरव प्राप्त करते हैं। कर्तव्य के योग से ही सत्ता का अधिकार शुद्ध होता है। मनुष्यों के हित में ही उसका प्रयोग किया जाना चाहिये।।२७।। विवेक, न्याय तथा साहस से मन्त्रियों के सब कामों की समीक्षा करके नागरिक लोकतन्त्र की रक्षा करे।।२८।। समीक्षा से रहित अधिकार आधिपत्य कहलाता है। समीक्षा से युक्त सत्ता ही लोकतन्त्र का लक्षण है।।२९।। लोकतान्त्रिक अधिकारों से सम्पन्न सब नागरिकों द्वारा यत्नपूर्वक समाज को आधिपत्य से बचाया जाय तथा समता, श्रमिकों के कल्याणकारी शासन, मनुष्यों के अधिकार तथा लोकतान्त्रिक परम्परा की अभिवृद्धि की जाय।।३०।।

जनशक्ति समाज की शक्ति का मूल कारण, अर्थात् स्रोत है। जनशक्ति पर आधृत राज्य ही लोकतान्त्रिक राज्य है।।१।। जनशक्ति की अभिवृद्धि ही सबके उत्कर्ष का साधन है। इसलिये सब प्रयत्नों से जनशक्ति को बढ़ाये।।२।। जनशक्ति और नेतृत्व एक दूसरे की उत्कृष्टि, अर्थात् उन्नति के हेतु हैं। उन दोनों के अच्छे सम्बन्ध से ही लोकमंगल

जनविश्वाससम्पन्नः सर्वोत्कर्षपरायणः ।
प्रेरितो मानवत्वेन लोकनेता प्रकीर्तितः ।।३।।

स्वातन्त्रस्य परो भक्तः सर्वस्वातन्त्र्यरक्षकः ।
जनसम्मानसंयुक्तो देशप्रेमाम्बुसम्भृतः ।।४।।

ज्ञाता भूतभविष्यस्य प्रतिपत्तिविशारदः ।
युक्तः सिद्धान्तलक्ष्याभ्यां लोकनेता प्रकीर्तितः ।।५।।

साहसी सत्यसङ्कल्पः सद्भावेन समन्वितः ।
आशाऽऽदर्शसमायुक्तः सङ्कष्टेनापराजितः ।।६।।

धैर्योत्साहसमायुक्तः शिष्टः सर्वोपकारकः ।
कर्तव्यकर्मसंलग्नो लोकनेता प्रकीर्तितः ।।८।।

राजनीतिविशेषज्ञो रचनाक्रान्तिकोविदः ।
प्रगतिप्रदसंदक्षः समः सौहार्दसंयुतः ।।९।।

कुशलः सहकार्येषु तितिक्षुर्दृढनिश्चयः ।
लोकार्थन्यायलोकज्ञो लोकनेता प्रकीर्तितः ।।१०।।

सन्तप्तो दीनदुःखेन दीनहीनहिते रतः ।
सत्पथे यः स्थितो नित्यं लोकनेता स वै स्मृतः ।।११।।

बढ़ता है।।३।। नेतृत्वविहीन राज्य नेत्रहीन कहलाता है। गुणसम्पन्न नेतृत्व राष्ट्र की उन्नति का अच्छा साधन है।।४।। लोकशील, विद्या, सदाचार तथा व्रत से सम्पन्न, न्याय और शौर्य से सुशोभित, नीतिज्ञ, कार्य में संलग्न, जनता का विश्वासभाजन, सबकी उन्नति में रत, मानवता से प्रेरित महानुभाव ही लोकनेता कहलाता है।।५-६।। स्वतन्त्रता का परम भक्त, सबकी स्वतन्त्रता का रक्षक, जनता द्वारा सम्मानित, देशप्रेम से सम्पन्न, अतीत तथा भविष्य का जानकार, परिस्थिति का ज्ञाता तथा सिद्धान्त और लक्ष्य से युक्त पुरुष लोकनेता कहा जाता है।।७-८।। राजनीति का विशेषज्ञ, रचना और क्रान्ति दोनों में दक्ष, प्रगतिशील विद्वान्, समता का व्यवहार करने वाला, सौहार्द सम्पन्न, सह कार्यों में कुशल, सहनशील, दृढ़ निश्चयी तथा लोकहित, न्याय एवं लोक की परिस्थिति का जानकार ही लोकनेता कहलाता है।।९-११।। साहसी, प्रतिज्ञा का पालन करने वाला, शुभ भावनाओं से सम्पन्न, आशा तथा आदर्श से युक्त, संकष्ट से अपराजित, धैर्य एवं

जनशक्तिः समाजस्य शक्तेश्च मूलकारणम् ।
जनशक्त्याधृतं राज्यं लोकतान्त्रिकमुच्यते ।।१२।।

जनशक्त्यभिवृद्धिर्हि सर्वोत्कर्षप्रसाधनम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जनशक्तिं विवर्धयेत् ।।१३।।

जनशक्तिश्च नेतृत्वमन्योन्योत्कृष्टिहेतुके ।
सुसम्बन्धात् तयोरेव वर्धते लोकमङ्गलम् ।।१४।।

राष्ट्रं नेतृत्वहीनं हि नेत्रहीनमुदाहृतम् ।
गुणसम्पन्ननेतृत्वं राष्ट्रोत्कर्षप्रसाधनम् ।।१५।।

आशानुप्राणितो नेता समत्वादर्शसंयुतः ।
साहसोत्साहसंयुक्तो विरोधेनापराजितः ।।१६।।

रचनाक्रान्तिसङ्घर्षैः समाजोत्कर्षहेतवे ।
स्थापनाय समत्वस्य प्रयत्नं कुरुतेऽनिशम् ।।१७।।

नेतृत्वं गुणहीनं च सर्वथा हानिकारकम् ।
व्याजेन कुरुते सेवां लभते कीर्तिगौरवम् ।।१८।।

उत्साह से सम्पन्न, शिष्ट, सबका उपकार करने वाला, कर्तव्य में संलग्न व्यक्ति ही लोकनेता कहलाता है।।१२-१४।। दीनों के दुःख से सन्तप्त, दीनों तथा साधनहीन पुरुषों के हित में संलग्न सदा सत्पथ में स्थित पुरुष ही लोकनेता है।।१५।।

लोकनेता के लिये बहुगुणसम्पन्न होना आवश्यक है। ऊपर लिखे श्लोकों में इनमें से कुछ गुणों की ओर संकेत किया गया है। गुणी व्यक्ति ही समाज का ठीक ठीक नेतृत्व कर सकता है।

लोकनेता जनता के अधीन तथा उसका सेवक और मार्गदर्शक है। जनता के विश्वास से सम्पन्न वह लोककल्याण करता है।।१६।।

लोकनेता का जनता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह जनता का मार्गदर्शक ही नहीं, उसका सेवक भी है। जनसेवा ही उसके नेतृत्व, अर्थात् मार्गदर्शन का लक्ष्य है। जनता का विश्वास उसके नेतृत्व का आधार है। अपने सब कार्यों के लिये वह जनता का उत्तरदायी है और इस तरह वह जनता के अधीन है।

आशा से अनुप्राणित तथा समता, आदर्श, साहस एवं उत्साह से सम्पन्न, विरोध से अपराजित नेता रचना, क्रान्ति तथा संघर्ष से समाज की अभिवृद्धि तथा समता की स्थापना के निमित्त निरन्तर प्रयत्न करता है।।१७-१८।। गुणहीन नेतृत्व सर्वथा

विवर्धयति पाखण्डं दुराचारं च मत्सरम् ।
आधिपत्यमहङ्कारं भ्रष्टाचारं च शोषणम् ।।१९।।

गुणेभ्यश्च विनिर्मुक्ता भ्रष्टाचारा गणोत्तमाः ।
लोकन्यायं विकुर्वन्ति सार्वलौकिकजीवनम् ।।२०।।

स्वातन्त्र्यं नागराणां च राष्ट्रस्य कीर्तिगौरवम् ।
समाजादर्शकल्याणे व्यवस्थां लोकतान्त्रिकीम् ।।२१।।

राष्ट्रोत्थानं नरोत्कर्षं राष्ट्रिकानां च निष्ठताम् ।
भावनां राष्ट्रमर्यादां नागरत्वं च संस्कृतिम् ।।२२।।

राष्ट्रकल्याणपुष्ट्यर्थं राष्ट्रिका दृढनिश्चयाः ।
नेतॄणां सर्वकार्याणां समीक्षां कुर्वतेऽनिशम् ।।२३।।

नेतृत्वाद्धि निराकृत्य नेतारं गुणवर्जितम् ।
समर्थयन्ते नेतारं गुणवन्तं हि राष्ट्रिकाः ।।२४।।

प्रशासनम्

आभ्यन्तराद् भयाद् रक्ष्यं राष्ट्रं रक्ष्यं बहिर्भयात् ।
कर्तव्यः सततं यत्नः स्वराष्ट्रपरिपालने ।।१।।

परित्राणाय दीनानां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
स्वातन्त्र्यरक्षणार्थं च न्यायाद् दण्डं प्रयोजयेत् ।।२।।

हानिकारक है। वह चालाकी से सेवा करता तथा कीर्ति और गौरव प्राप्त करता है एवं पाखण्ड, दुराचार, ईर्ष्या, आधिपत्य, अहङ्कार, भ्रष्टाचार और शोषण को बढ़ाता है।।१९-२०।। गुणों से हीन भ्रष्टाचारी गणनेता लोकन्याय, सार्वजनिक जीवन, नागरिकों की स्वतन्त्रता, राष्ट्र की कीर्ति और गौरव, समाज के आदर्श और कल्याण तथा लोकतान्त्रिक व्यवस्था, सबको विकृत कर देता है।।२१-२२।। राष्ट्रकल्याण की पुष्टि के लिये दृढ निश्चय सम्पन्न नागरिक नेताओं के सब कामों की निरन्तर समीक्षा करते हैं।।२३।। गुणविहीन नेता को नेतृत्व से अलग कर नागरिक गुणवान् नेता का समर्थन करते हैं।।२४।।

आन्तरिक तथा बाह्य भय से राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए। राष्ट्र के पालन करने में भी निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए।।१।। सब लोगों की रक्षा राज्य का कर्तव्य है। इसके लिए तीक्ष्ण समय में तीक्ष्ण और मृदु काल में कोमल होना चाहिए।।२।।

रक्षणं सर्वलोकानां राज्यकर्तव्यमुच्यते ।
तीक्ष्णकाले भवेत् तीक्ष्णं मृदुकाले मृदुर्भवेत् ।।३।।

राज्यं गतिसमायुक्तं सुराज्यं प्रगतिप्रियम् ।
नित्यं प्रगतिदं राज्यं वर्धयेल्लोकमङ्गलम् ।।४।।

[१]प्रजानन्देन सन्तुष्येत्तद् दुःखैर्दुःखितो भवेत् ।
[२]अवृत्तिव्याधिशोकार्तानिनुवर्तेत शक्तितः ।।५।।

[३]सन्धेयानभिसन्धत्स्व विरोधाँश्च विरोधय ।
[४]अभृतानां भवेद्धर्ता भृतानामन्ववेक्षकः ।।६।।

प्रशासको नीतिनिपुणो दण्डशक्तिसमन्वितः ।
[५]साम्ना दानेन मानेन प्रकृतीरनुञ्जयेत् ।।७।।

[६]यो यत्र कुशलः कार्ये तं तत्र विनियोजयेत् ।
यत्कार्ये यो नियुक्तः स्याद् भूयात्तत्कार्यतत्परः ।।८।।

कुछ शास्त्रकारों ने कोमल उपायों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि कोमल उपाय ही सर्वोत्तम हैं। कोमलता कठिन समय में भी लाभप्रद होती है (देखें शान्ति. १४०.६६)। पर दूसरे विद्वानों के विचार में तेज परिस्थिति में तीक्ष्ण उपायों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। (देखें शान्तिपर्व १४०.६५-६७)।।

प्रजा के आनन्द से सन्तुष्ट तथा उसके दुःख से दुःखी होना चाहिए। बेरोजगारी, रोग और शोक से जो दुःखी हैं, शक्ति भर उनका पालन किया जाय।।३।। जो सन्धि करने योग्य हैं, उनसे सन्धि करना चाहिए और जो विरोध के पात्र हों उनका विरोध करना चाहिए। जिनके भरण पोषण का प्रबन्ध न हो, उनका पोषण और जिनका भरण पोषण चल रहा है, उन सबकी देख-भाल करना चाहिए।।४।। राज्य-शक्ति से सम्पन्न नीतिनिपुण प्रशासक साम, दान तथा मान से जनता को प्रसन्न करे।।५।। अपने अपने कामों में संलग्न न्यायशील प्रशासक जो उसे रुचिकर है, उसे छोड़कर लोक के हित को बढ़ाये।।६।। न्याय में संलग्न शासक लोभ से प्रजा को दण्ड देकर दुःखी न करे। सदा थोड़ा दण्ड देने वाला तथा सुधारक बने।।७।। भेद और अतिदण्ड से प्रजा का पालन करे। प्रजा के अतिदण्ड और भेद से राज्य का विनाश होता है।।८।।

---

१. शुक्र. ४.५२३ २. शुक्र. ३.८ ३. शान्ति. ५७.४
४. शान्ति. ५७. २९ ५. कामन्दक ८.७० ६. शुक्र. २.२२७

दक्षो धीरो न्यायनिष्ठो निर्भीकः स्थिरनिश्चयः ।
सत्पक्षे वै स्थितो नित्यं स्मृतोऽयं वै प्रशासकः ।।९।।

विवेकी नीतिकुशलः समः सर्वोपकारकः ।
कर्तव्यनिष्ठः सत्यार्थी विदुस्तं वै प्रशासकम् ।।१०।।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतो न्यायशीलः प्रशासकः ।
स्वयं प्रियं परित्यज्य हितं लोकस्य वर्धयेत् ।।११।।

रक्षणार्थं दुर्बलानां दण्डार्थं च दुरात्मनाम् ।
प्रयत्नं कुरुते नित्यं न्यायशीलः प्रशासकः ।।१२।।

[१]रक्षार्थं सर्वलोकानां लोककल्याणहेतवे ।
दण्डाधिकारौ धर्त्तव्यौ न्यायशीलैः प्रशासकैः ।।१३।।

शुक्र के साथ साथ परोक्ष रूप से कामन्दक ने भी इस बात की पुष्टि की है। (देखें कामन्दक, ८.७०)।।

सब लोगों की रक्षा तथा लोककल्याण के निमित्त न्यायशील प्रशासक से दण्ड और अधिकार धारण किया जाना चाहिये।।९।। दण्ड रक्षा के लिए निर्मित है, वह आधिपत्य के लिए नियत नहीं किया गया है। लोगों की रक्षा के लिए न्याय से दण्ड प्रयोग किया जाय।।१०।। कभी उग्र दण्ड देने वाला न हो। युक्त दण्ड देने वाले की ही प्रशंसा होती है। इसलिए सुधी सब प्रयत्नों से वध-दण्ड त्याग दे।।११।।

भीष्म तथा कामन्दक द्वारा युक्तदण्ड एवं शुक्र द्वारा सुभागदण्ड का समर्थन उनके अपने युग के लिए ही नहीं, आधुनिक युग के लिए भी काफी प्रगतिशील है। कामन्दक और शुक्र दोनों ने वध-दण्ड का विरोध किया है। पर कामन्दक ने लोकविद्वेषी दुष्ट का वध उचित समझा है। भीष्म ने भी ऐसा कहा है। यद्यपि बहुत से अर्वाचीन विद्वान् वध-दण्ड का विरोध कर रहे हैं, पर करीब करीब सभी देशों में अभी भी वध-दण्ड की व्यवस्था कायम है, यद्यपि उसका क्षेत्र धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। इसी तरह शुक्र का यह विचार कि जनता में भेद पैदा करके उनपर शासन करने की इच्छा निन्दनीय है, क्योंकि उससे तो राष्ट्र की शक्ति ही क्षीण होती है, निःसन्देह महत्त्वपूर्ण है।

निपुणता से साम, दान, दण्ड, भेद इन चार उपायों से नीतिज्ञ राष्ट्र के हित की रक्षा और अभिवृद्धि करे।।१२।। जब तक किसी तरह सन्धि हो सकती है, तब तक युद्ध को स्वीकार न करे। सबसे पहले साम ही श्रेष्ठ है। साम में ही सिद्धि व्यवस्थित

---

१. शुक्र. ४.३८

स्वप्रजानां न भेदेन नातिदण्डेन पालनम्।
[1]स्वप्रजादण्डभेदैश्च भवेद्राज्यविनाशनम्।।१४।।
[2]अर्थानामननुष्ठाता कामचारी विकत्थनः।
प्रशासको दुराचारी हरते लोकमङ्गलम्।।१५।।
प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं शासकमिच्छन्ति समाजहितचिन्तकाः।।१६।।
रक्षार्थं विहितो दण्डः नाधिपत्यार्थमिष्यते।
रक्षणार्थं च लोकानां न्यायाद् दण्डं प्रयोजयेत्।।१७।।
स्वातन्त्र्यं शासकेभ्यस्तु समत्वं चात्मनिग्रहः।
न्यायनिष्ठा विवेको वै न्यायाधीशस्य सद्गुणाः।।१८।।
न्यायशास्त्रविदो धीराः समाः शिष्टा गुणान्विताः।
विवेकशीला निर्भीका न्यायाधीशाः प्रकीर्तिताः।।१९।।
परित्राणाय साधूनां न्यायस्थापनहेतवे।
कुर्वते सततं यत्नं न्यायाधीशा नरोत्तमाः।।२०।।

है।।१३।। नीतिज्ञ पुरुष को पहले साम का उपयोग करना चाहिए। युद्ध को उपस्थित देखकर साम के प्रयोग से उसे शान्त करे।।१४।। साम तथा सहयोग से स्वतन्त्रता की ठीक तौर पर रक्षा करे। युद्ध में प्राण और धन से भी स्वतन्त्रता की रक्षा करनी चाहिए।।१५।। दान और भेद भी नीतिज्ञ द्वारा उचित रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। माया, उपेक्षा, इन्द्रजाल को यथाशक्ति छोड़ दिया जाय।।१६।।

मनु, भीष्म और शुक्र ने माया, उपेक्षा तथा इन्द्रजाल के प्रयोग की कोई चर्चा नहीं की है। कोटिल्य ने काफी विस्तार से इनके प्रयोगों की व्याख्या की है। आधुनिक जगत् में माया और इन्द्रजाल का काफी प्रयोग किया जा रहा है, पर प्रगतिशील विद्वान् इन प्रयोगों की निन्दा करते हैं।।

जो जिस कार्य में कुशल हो, उसे उसी काम में लगाए। जो जिस कार्य में नियुक्त हुआ है, वह उसीमें तत्पर रहे।।१७।। वही प्रशासक है, जो दक्ष, वीर, न्यायनिष्ठ, निर्भीक, दृढ़ संकल्प तथा सच्चे पक्ष में स्थिर रहता है, अर्थात् उसका पालन-पोषण और पुष्टि करता है।।१८।। जो विवेकी नीतिकुशल, सबके साथ एकता का व्यवहार करने वाला, सबका उपकार करने वाला, कर्तव्यनिष्ठ तथा सत्यार्थी है, उसीको प्रशासक जानो।।१९।। प्रशासन के अधिकारियों से स्वतन्त्रता, समता, आत्मनियन्त्रण,

---

१. शुक्र. ४.३९ २. शान्ति. ९२.१०

दमनं शोषणं तापं विनाशयितुमुद्यताः ।
लोकन्यायविधातारो न्यायाधीशाः प्रकीर्तिताः ।।२१।।

न्यायाधीशः सभां गत्वा रागद्वेषविवर्जितः ।
न्यायं कृत्वा विवेकेन हितं लोकस्य वर्धयेत् ।।२२।।

[१]सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
न्यायाधीशेन कर्तव्यो न्यायः शौर्येण निष्ठया ।।२३।।

[२]कदापि नोग्रदण्डः स्याद् युक्तदण्डः प्रशस्यते ।
[३]तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वधदण्डं त्यजेत् सुधीः ।।२४।।
[४]न कर्षयेत् प्रजां लोभात् शासको न्यायतत्परः ।
[५]सदा सुभागदण्डी स्यात् तथा स्याच्च सुधारकः ।।२५ ।।
[६]सन्निपातो न मन्तव्यः शक्ये सति कथञ्चन ।
[७]सामैव प्रथमं श्रेष्ठं सिद्धिः साम्नि व्यवस्थिता ।।२६।।
[८]आदौ साम प्रयोक्तव्यं पुरुषेण विजानता ।
[९]साम्नैव विलयं याति विद्वेषप्रभवं तमः ।।२७।।
[१०]आगतं विग्रहं दृष्ट्वा सुमाम्ना प्रशमं नयेत् ।
साम्ना च सहयोगेन कल्याणं साधयेत् सुधीः ।।२८।।

न्यायनिष्ठा और विवेक निःसन्देह न्यायाधीश के सद्गुण हैं।।२०।। जो न्यायशास्त्र के पण्डित तथा धीर हैं, सबसे एक सा व्यवहार करते हैं, शिष्ट और गुणी हैं एवं विवेकशील और निर्भीक हैं, वे ही न्यायाधीश हैं।।२१।। मनुष्यों में उत्तम न्यायाधीश निरन्तर साधुओं की रक्षा तथा न्याय की प्रतिष्ठा के निमित्त प्रयत्न करते हैं।।२२।। दमन, शोषण तथा सन्ताप को नाश करने में उद्यत तथा लोकन्याय के विधाता न्यायाधीश कहलाते हैं।।२३।। या तो सभा में जाना ही नहीं चाहिये या वहाँ जाकर ठीक बात कहना चाहिए। दृढ़ता और निष्ठा से न्यायाधीश द्वारा न्याय किया जाना चाहिए।।२४।। न्यायाधीश सभा में जाकर रागद्वेष का परित्याग कर विवेकपूर्वक न्याय करके लोक के हित को बढ़ाये।।२५।।

---

१. मनु. ८.१३ २. शुक्र. ३.८१; कामन्दक. २४.२६ ३. शुक्र. ४.८९
४. शुक्र. ४.९० ५. शुक्र. ४.९२ ६. शान्ति. १०२.२२
७. शुक्र. ४.३४; हितो. सन्धि ९९ ८. पंच. १ तन्त्र ४१० ९. पंच. १ तन्त्र ४११
१०. पंच. ३ तन्त्र २१

सामना भेदेन दानेन दण्डेनेति चतुर्विधम्।
हितं राष्ट्रस्य नीतिज्ञो रक्षयेद् वर्धयेत्तथा।।२९।।

साम्ना च सहयोगेन समारक्षेत् स्वतन्त्रताम्।
स्वातन्त्र्यं रक्षितव्यं हि युद्धे प्राणैर्धनैरपि।।३०।।

नीतिज्ञैर्दानभेदौ तु प्रयोज्यौ च यथोचितम्।
मायोपेक्षेन्द्रजालं तु यथाशक्यं परित्यजेत्।।३१।।

विश्वशान्तिः

राष्ट्रस्य गौरवं रक्ष्यं लोकानां च स्वतन्त्रता।
राष्ट्रोत्कर्षौ विश्वशान्तिर्वर्धनीयौ प्रयत्नतः।।१।।

[१]न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः।
[२]कारणेनैव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।।२।।

सर्वं वैरविवादं च न्यायेन परिशोधयेत्।
[३]रिपवो येन जायन्ते कारणं तत्परित्यजेत्।।३।।

विश्वनिष्ठा हि मन्यन्ते [४]वसुधैव कुटुम्बकम्।
विश्वशान्तिहिते न्यायं बन्धुत्वं वर्धयन्ति ते।।४।।

राष्ट्र के गौरव तथा जनता की स्वतन्त्रता की रक्षा करनी चाहिये, प्रयत्नपूर्वक राष्ट्र की उन्नति और विश्व की उन्नति को बढ़ाना चाहिये।।१।। न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का रिपु। किसी कारण से मित्र और शत्रु बनते हैं।।२।।

कौटल्य ने अर्थशास्त्र में 'मण्डल' सिद्धान्त की व्याख्या की है। उसमें उसने स्वाभाविक मित्र और स्वाभाविक शत्रु बताये हैं। पर महाभारत में इसकी कोई चर्चा नहीं है। उसमें कहा गया है कि कारण के बदलने, हितों में भेद होने पर शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन सकते हैं। (देखें शान्तिपर्व १३८.१३; १३८.११०; १४०.५१)।।

सब वैर और विवाद को न्याय से धो डाला जाय। जिस कारण से शत्रु बनते हैं, उसे छोड़ा जाय।।३।। सब उपायों में सहयोग विशिष्ट है। अतः मनुष्यों और राष्ट्रों के सहयोग को अच्छी तौर पर बढ़ाया जाय।।४।।

---

१. शान्ति. १३८.१२ २. कामन्दक ८.१२ ३. कामन्दक ८.५०
४. हितो. मित्र. ७०

सान्ना च सहयोगेन विश्वशान्तिं विधारयेत् ।
समाचरेत् विश्वहितं कल्याणमभिवर्धयेत् ।।५।।

उपक्रमेषु सर्वेषु सहयोगो विशिष्यते ।
ततो नृणां च राष्ट्राणां सहयोगं विवर्धयेत् ।।६।।

[१]अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
सहयोगेन विश्वस्य जनकल्याणमावहेत् ।।७।।

[२]अन्योऽन्यसमुपष्टम्भादन्योन्योपश्रयेण च ।
मनुष्या मङ्गलानन्दमुत्कर्षं प्राप्नुवन्ति वै ।।८।।

सर्वेषां सहयोगेन विश्वभावगुणान्वितः ।
विश्वसङ्घो हि विश्वस्य शान्तिश्च जगतो हितम् ।।९।।

मानवानामधीकारं समोत्कर्षं च संस्कृतिम् ।
स्वातन्त्र्यं चैव राष्ट्राणामभिवृद्धिं प्रसाधयेत् ।।१०।।

आधुनिक जगत् में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का महत्त्व काफी बढ़ गया है। विश्व की शान्ति और कल्याण के लिये विश्वव्यापी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक हो गया है। इसका क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है। इस सहयोग की प्रक्रिया को 'साम' नीति का अंग समझा जा सकता है। पर इसके बढ़ते हुए महत्त्व को देखकर इसे पाँचवाँ उपक्रम भी कहा जा सकता है।।

छोटा सा काम भी अकेले करना दुष्कर, अर्थात् कठिन है। अत: समाज के सहयोग से जनकल्याण का सम्पादन किया जाय।।५।। परस्पर मेल होने से और एक दूसरे का सहारा मिलने से मनुष्य मंगल, आनन्द तथा उत्कर्ष को प्राप्त करते हैं।।६।। विश्वभावना से अनुप्राणित नीतिज्ञ सबके सहयोग से विश्वसंघ, विश्वशान्ति, जगत् का हित, मानव-अधिकार, समोत्कर्ष, संस्कृति, राष्ट्रों की स्वतन्त्रता तथा अभिवृद्धि को प्रतिष्ठित करे।।७-८।। लोकन्याय से सम्पन्न, विश्वज्ञान से समन्वित नीतिज्ञ विश्वभावना से प्रेरित विश्वकल्याण करे।।९।। मनुष्यता तथा विश्व-बन्धुता की भावना से भूषित विश्वनिष्ठ महामना विश्वकल्याण को बढ़ाता है।।१०।।

विश्वकल्याण तथा विश्वशान्ति की सेवा के लिये लोकन्याय, विश्वज्ञान, विश्वभावना, मानवता और विश्वबन्धुत्व की भावना तथा महान् उदार चित्त आवश्यक

---

१. मनु. ७.५५ २. विदुर. ४.६५

लोकन्यायेन सम्पन्नो विश्वज्ञानसमन्वितः ।
प्रेरितो विश्वभावेन विश्वकल्याणमाचरेत् ।।११।।

मानुष्येण समायुक्तो विश्वबन्धुत्वभूषितः ।
विधत्ते विश्वकल्याणं विश्वनिष्ठो महामनः ।।१२।।

यस्तु नो कुरुते नूनं सर्वराष्ट्रेष्वमङ्गलम् ।
विधत्ते विश्वकल्याणं विश्वबन्धुः स उच्यते ।।१३।।

प्रेरितो न्यायसाम्यभ्यां विश्वभावविभूषितः ।
हितार्थं सर्वराष्ट्राणां सर्वस्वातन्त्र्यमिच्छति ।।१४।।

तप्यन्ते विश्वतापेन विश्वभावगुणान्विताः ।
विश्वं विमोच्यन्त्येव ह्याधिपत्याच्च सर्वथा ।।१५।।

विश्वभावेन सम्पन्नो नीतिज्ञो राष्ट्रनिष्ठितः ।
नूनं राष्ट्रसमस्यां च विश्वदृष्ट्या विचिन्तयेत् ।।१६।।

हैं। इन गुणों से समन्वित नीतिज्ञ ही विश्वशान्ति और कल्याण का कार्य सम्पादन कर सकता है।

न्याय और समता की भावनाओं से प्रेरित, विश्वभावना से विभूषित व्यक्ति सब राष्ट्रों के हित के लिये सबकी स्वतन्त्रता चाहता है।।११।। विश्वभावना से सम्पन्न, राष्ट्रनिष्ठ नीतिज्ञ निःसन्देह राष्ट्र की समस्या पर विश्वदृष्टि से विचार करे।।१२।। विश्व की सेवा में तत्पर प्रगतिशील नीतिज्ञ विश्व की प्रगति और सहकारिता, सब राष्ट्रों में सद्भावना, मानवमात्र का मंगल, स्वतन्त्रता, विश्व की अभिवृद्धि तथा लोकतान्त्रिक परम्परा को बढ़ाता है।।१३-१४।। समता तथा स्वतन्त्रता पर स्थित मनुष्यों का विश्वसंघ मानवोचित उपायों द्वारा विश्वशान्ति प्रतिष्ठित करे।।१५।।

इस समय संयुक्त राष्ट्र (यूनाइटेड नेशन्स) राज्यों का संघ है तथा उसकी संरक्षण समिति (सिक्योरिटी कौंसिल) में पाँच बड़े राष्ट्रों को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि विश्वसंघ वास्तव में विश्व की जनता का संगठन होना चाहिए। उसी बात की यहाँ पुष्टि की गयी है।

मानवता तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को दृढ़ करके विश्वसंघ विश्वकल्याण की भावना से, सब संबद्ध (वैभवसम्पन्न) राष्ट्रों के सहयोग से तथा सत्कार्यों द्वारा बुद्धिहीन अर्थात् अविकसित और अल्पविकसित राष्ट्रों के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्न करे।।१६।। जनकल्याण की सिद्धि के निमित्त विश्वसंघ यत्नपूर्वक मानवता से सम्पन्न

प्रगतिप्रदनीतिज्ञो विश्वाराधनतत्परः ।
विवर्धयति विश्वस्य प्रगतिं सहकारिताम् ।।१७।।

सर्वराष्ट्रेषु सौहार्दं सर्वमानवमङ्गलम् ।
स्वातन्त्र्यं विश्वसंवृद्धिं लोकतन्त्रपरम्पराम् ।।१८।।

सत्याग्रहः

अहिंसा सत्यसंयुक्तं सङ्घर्षरचनान्वितम् ।
श्रद्धया परया तप्तं सर्वोत्कर्षगुणान्वितम् ।।१।।

वृत्तशीलसमायुक्तं सदुद्देश्यविभूषितम् ।
प्रेम्णा वै प्रेरितं कर्म तत् सत्याग्रह उच्यते ।।२।।

सत्याग्रहः परा निष्ठा मानवं नैतिकं बलम् ।
तेनैव साहसी धीरः सत्यन्यायौ विवर्धयेत् ।।३।।

यस्तु सत्यव्रताचारः सत्ययोगपरायणः ।
सदुद्देश्यसमायुक्तः संयमी दृढनिश्चयः ।।४।।

प्रगतिशील विज्ञान, लोकन्याय से समन्वित मानवमात्र की अभिवृद्धि सारे संसार का सर्वागीण विकास को प्रसारित करे।।१७।।

विज्ञान के बहुत से अनुसन्धान तथा आविष्कार विद्वेष तथा शोषण की भावना से अनुप्राणित होते हैं। इस प्रकार के प्रयास शान्ति और न्याय के घातक सिद्ध हो रहे हैं। शान्तिप्रिय विद्वानों का मत है कि मानवता की भावना से अनुप्राणित वैज्ञानिक अनुसन्धान ही मानवकल्याण की अभिवृद्धि कर सकते हैं। विद्वानों का यह भी विचार है कि लोकन्याय से नियन्त्रित और संचालित आर्थिक अभिवृद्धि ही मानवमात्र के लिए कल्याणकारी हो सकती है।।

विश्वसंघ मनुष्यता, राष्ट्रों के सहयोग, समता पर आश्रित स्वतन्त्रता, विश्वबन्धुत्व पर आधारित संस्कृति, विश्व की प्रगति और कल्याण, विश्वचेतना और भद्रता एवं सब मनुष्यों के हित और आनन्द को प्रसारित करे।।१८।।

अहिंसा और सत्य से युक्त, संघर्ष तथा रचना से समन्वित, श्रद्धा से तप्त, सबके उत्कर्ष से सम्पन्न, सदाचार तथा शील एवं सदुद्देश्य से विभूषित तथा प्रेम से प्रेरित काम सत्याग्रह कहा जाता है।।१-२।। सत्याग्रह श्रेष्ठ विश्वास है, मानव का नैतिक बल है। उससे ही साहसी धीर पुरुष सत्य तथा न्याय को बढ़ाये।।३।। जो सत्य प्रतिज्ञा का पालन करने वाला, सत्य के प्रयोग में संलग्न, शुभ उद्देश्य से सम्पन्न, संयमी, दृढ़व्रती,

अहिंसा वै परा शक्तिः समाजस्य परो गुणः ।
अहिंसासत्ययोगेन सर्वार्थं लभते सुधीः ।।५।।

अहिंसासत्यमार्गेण न्यायोचितपथेन च ।
सत्याग्रहेण सेवाभ्यः सन्तापेनापराजितः ।।६।।

विरोधयेच्चाधिपत्यं स्वराज्यं स्थापयेत् तथा ।
राष्ट्रोत्थानं वर्धयेच्च पोषयेच्च जगद्धितम् ।।७।।

[1]स्वातन्त्र्यं भिक्षया नैव कदाचिदपि लभ्यते ।
ततो ह्यसहयोगेन सङ्घर्षेण च साधयेत् ।।८।।

लोकतन्त्रेऽपि सत्यार्थी सत्याग्रहसमाश्रयात् ।
अन्यायं च दुराचारं शोषणं प्रतिरोधयेत् ।।९।।

सत्याग्रहेण सत्यार्थी न्यायं धारयते दृढम् ।
सङ्घर्षं च सहर्षेण न्यायस्थापनहेतवे ।।१०।।

सहते सर्वकष्टानि जनकल्याणहेतवे ।
स्वगुणैः सहयोगेन हितं राष्ट्रस्य सेवते ।।११।।

रचना चैव सङ्घर्षः सेवितव्यौ यथोचितौ ।
संयोगतस्तयोरेव वर्धनीयं जगद्धितम् ।।१२।।

अहिंसाव्रत तथा न्यायभावना से गुणान्वित और निष्काम भाव से कर्म में तत्पर है, वह सत्याग्रही है।।४-५।। अहिंसा निःसन्देह उच्चतर शक्ति है, समाज का श्रेष्ठ गुण है। अहिंसा तथा सत्य के प्रयोग से बुद्धिमान् सब अर्थों को प्राप्त करता है।।६।। सत्य-अहिंसा के न्यायोचित पथ से एवं सत्याग्रह तथा सेवा से सन्ताप से परास्त हुए बिना आधिपत्य का विरोध किया जाय, स्वराज्य को स्थापित किया जाय, राष्ट्र के उत्थान को बढ़ाया जाय तथा विश्वकल्याण को पुष्ट किया जाय।।७-८।। भिक्षा से स्वतन्त्रता कभी नहीं मिलती। अतः उसे असहयोग तथा संघर्ष से सिद्ध करे।।९।। लोकतन्त्र में भी सत्यार्थी सत्याग्रह के आश्रय से अन्याय, दुराचार तथा शोषण का विरोध करे।।१०।। सत्यार्थी सत्याग्रह से न्याय को दृढ़ता से धारण करता है, न्याय की स्थापना के निमित्त हर्ष के साथ संघर्ष करता है, जन-कल्याण की सिद्धि के लिये सब कष्टों को सहता है तथा अपने गुणों तथा सहयोग से राष्ट्रहित का अनुष्ठान करता है।११-१२।। रचना और संघर्ष दोनों का यथोचित अनुष्ठान किया जाना चाहिये। इन दोनों के मेल से संसार का कल्याण

१. मालवीयः

रचनाधृतसङ्घर्षः समाजोद्देश्यसाधनः ।
नितरां रचनाहीनः सङ्घर्षो नाशकारणम् ।।१३।।

न्यायप्रेरितसङ्घर्षः सत्यन्यायविभूषितः ।
मानवत्वेन संयुक्तः सङ्कष्टेनापराजितः ।।१४।।

सञ्चालितोऽहिंसया च न्यायस्थापनहेतवे ।
दम्भद्वेषविहीनश्च सङ्घर्षः सात्त्विकः स्मृतः ।।१५।।

रचनात्मककार्येण दीनानां हितमाचरेत् ।
दीनानामभिवृद्धिर्हि परीक्षा तस्य वै स्मृता ।।१६।।

उत्कर्षो रचना चैव ह्युद्यमोद्देश्यमुच्यते ।
तयोरेव विहीनस्य सर्वथा निष्फलाः क्रियाः ।।१७।।

सत्याग्रही लोकतन्त्रं नैतिकं तु समाचरेत् ।
परार्थं पोषयेत् प्रेम्णा पीडितं परिपालयेत् ।।१८।।

सत्याग्रहेन सत्यार्थी सर्वोत्कर्षं समाचरेत् ।
समर्थयेत् सदाचारं सर्वानन्दं सुसंस्कृतिम् ।।१९।।

बढ़ाया जाय।।१३।। न्याय से प्रेरित, निष्ठा, सत्य तथा मानवता से सम्पन्न, कष्टों के भय से अपराजित, दम्भ तथा द्वेष से निर्मुक्त, जनकल्याण के निमित्त अहिंसा से चलाया गया संघर्ष सात्त्विक संघर्ष है।।१४-१५।। रचना पर आधारित संघर्ष समाज के उद्देश्य का साधन है। रचना से हीन संघर्ष नाश का कारण है।।१६।। रचनात्मक कार्य से दीनों के हित का अनुष्ठान करे। दीनों के हित की अभिवृद्धि ही रचनात्मक कार्य की परीक्षा है।।१७।। उत्कर्ष और रचना ही उद्यम का उद्देश्य है। इन दोनों से विहीन कार्य सर्वथा निष्फल है। सत्याग्रही लोकतन्त्र और नैतिकता का आचरण करे, दूसरों के हितों को पुष्ट करे तथा प्रेम से पीड़ितों का पालन करे।।१८।। सत्यार्थी सत्याग्रह से सबके उत्कर्ष का अनुष्ठान करे, सदाचार, सब के आनन्द तथा संस्कृति का समर्थन करे।।१९।।

सत्याग्रह के सिद्धान्त तथा उसकी प्रक्रिया को ठीक तौर पर समझने के लिये महात्मा गांधी के विचारों का अध्ययन आवश्यक है। अतिप्राचीन काल से साधु-सन्त तथा सद्गृहस्थ सत्य और अहिंसा की आराधना करते चले आ रहे हैं। कतिपय व्यक्तियों ने समय समय पर सत्य की प्रतिष्ठा के निमित्त अहिंसात्मक ढंग से अन्याय का प्रतिरोध भी किया था। पर अन्याय के विरुद्ध सत्य और अहिंसा का राष्ट्रव्यापी सामूहिक प्रयत्न गाँधी जी की एक महत्त्वपूर्ण देन है। सत्याग्रह में सत्य, अहिंसा, रचना तथा संघर्ष का

शौर्यम्

शौर्यं समाजभावेन युक्तं मानुष्यनिष्ठया।
न्यायवृत्तिसमायुक्तं लोकतन्त्रस्य भूषणम्।।१।।

रक्षार्थं लोकतन्त्रस्य नराणां गौरवस्य च।
स्वातन्त्र्यस्य च प्राप्त्यर्थं सूरिः शौर्यं प्रयोजयेत्।।२।।

परित्राणं हि साधूनां निग्रहो दुष्कृतां तथा।
संस्थापनं च न्यायस्य शौर्यस्य ध्येयमुत्तमम्।।३।।

संरक्षणं स्वराष्ट्रस्य समरे चापलायनम्।
वारणं चापराधानां दीनानां परिपालनम्।।४।।

असतां प्रतिशोधश्च कर्तव्ये दृढनिष्ठता।
आपत्काले तु धैर्यं च शौर्यं वै परिकीर्त्यते।।५।।

सर्वं पालयते शूरः सर्वं न्याये प्रतिष्ठितम्।
शूरवीरो न्यायशीलः सर्वमानवगौरवम्।।६।।

[1]दुराचारः क्षीणबलः परित्राणं न गच्छति।
सुवृत्तो न्यायशीलश्च शूरवीरो भवेन्नरः।।७।।

समन्वय निहित है। इसके सम्बन्ध में जनतान्त्रिक समाजवादियों के विचारों की जानकारी के लिये देखें—'आचार्य नरेन्द्रदेव – युग और नेतृत्व)।।

मनुष्यों की वीरता का उद्भव भाव से होता है। पर वह नित्य मनुष्यों की भावनाओं को प्रभावित भी करता है।।१।। शौर्य-शक्ति समाज से प्रतिष्ठित और नियन्त्रित है। उसे समाज के उत्कर्ष में यत्नपूर्वक लगाना चाहिये।।२।। संयम तथा मनुष्यता से युक्त लोकन्याय पर आश्रित शौर्य सब मनुष्यों का भूषण है।।३।। मनुष्यता से प्रेरित शौर्य समाज का कल्याण बढ़ाने वाला है, पर मानवता से विहीन बिलकुल हानिकारक है।।४।। लोकन्याय तथा शौर्य साध्य-साधन हैं। न्यायविहीन शौर्य तो निःसन्देह अत्याचार का उपकरण और आधार है। शौर्यविहीन न्याय शक्ति के साधन से विरहित है। उनका अच्छा सम्बन्ध लोक कल्याण का साधन है, अर्थात् लोककल्याण के लिये लोकन्याय और शौर्य का योग आवश्यक है।।५-६।। जिसमें न्याय मौजूद है, वही शौर्य शुभ कहलाता है। जिससे न्याय नष्ट होता है, उसे तो विद्वान् ताड़ना कहते हैं।।७।।

१. हितो. सन्धि. ६

उत्पन्नामापदं यस्तु समाधत्ते स बुद्धिमान् ।
आपत्सु ये न मुह्यन्ति ते वै शूराः प्रकीर्तिताः ।।८।।

उत्साहहीनः पुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ।
आशाशौर्यसमायुक्तो महाध्येयं च विन्दति ।।९।।

बलं शौर्यं च कौशल्यं न्यायश्चैव पराक्रमः ।
समन्वितो गुणैरेतैर्वीरः कर्तव्यमावहेत् ।।१०।।

मनुष्यत्वं च शौर्यं च सौजन्यं वै वरा गुणाः ।
विभूषितो गुणैरेतैः सदा कार्याणि साधयेत् ।।११।।

न सङ्कष्टमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति ।
आगतं तु भयं वीक्ष्य शूरः प्रतिविधारयेत् ।।१२।।

लोकन्यायश्च शौर्यं च स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात् ।
न्यायाद् विहीनं शौर्यं वै ह्यत्याचारं विवर्धयेत् ।।१३।।

न क्लीबो वसुधां भुङ्क्ते न च न्यायं बिभर्ति सः ।
क्षीणशक्तिर्ह्यवमतो दुःखं जीवति जीवनम् ।।१४।।

यो न पृष्टो हितं ब्रूते परिणामे सुखावहम् ।
उपविष्टः समामध्ये यो न वक्ति स्फुटं वचः ।।१५।।

समुत्पन्नेषु कार्येषु बुद्धिर्यस्य च हीयते ।
स नरो मन्दबुद्धिश्च प्रोक्तः कापुरुषस्तथा ।।१६।।

कर्तव्य में दृढ़ विश्वास, विपत्ति में दृढ़ साहस, पराक्रम, बल तथा धैर्य वीर पुरुषों के सद्गुण हैं।।८।। अपने राष्ट्र का संरक्षण, संघर्ष में डटे रहना, अपराधों का रोकना, सत्पुरुषों का पालन, खराब लोगों का विरोध, लोकन्याय का सदा अनुकरण तथा जनकल्याण की पुष्टि वीर पुरुषों का कर्तव्य है।।९-१०।। मनुष्यता से सम्पन्न तथा सदा न्याय से प्रेरित वीर पुरुष निर्बलों की ठीक तौर पर रक्षा करते हैं तथा स्वतन्त्रता को बढ़ाते हैं।।११।। शक्ति-साहस से सम्पन्न, कर्तव्यनिष्ठ, भय और स्वार्थ छोड़कर, संकटों से हार माने बिना राष्ट्र की स्वतन्त्रता तथा जनकल्याण के निमित्त आधिपत्य तथा दुष्कर्मों से हर्षपूर्वक संघर्ष करते हैं एवं शान्ति, लोकन्याय, स्वतन्त्रता, मानवाधिकार तथा लोकतान्त्रिक व्यवस्था को प्रतिष्ठित करते हैं।।१२-१४।। अपने और लोक के उत्कर्ष की सिद्धि के निमित्त वीर पुरुष कर्तव्यपथ में विवेक और साहस से जीवन के आदर्श का अनुगमन करते हैं।।१५।। जो शक्ति के अहंकार को छोड़कर साहस और

शूरवीरो न्यायशीलो विरोधेनापराजितः।
कुर्यात् प्रतिष्ठितं न्यायं पोषयेच्च जगद्धितम्।।१७।।

विरोधयेद् दुराचारमाधिपत्यं च शोषणम्।
विवर्धयेच्च कल्याणं स्वातन्त्र्यं समतां तथा।।१८।।

वीरा विनयसम्पन्ना न्यायेन सुसमन्विताः।
निर्बलाँश्चैव रक्षन्ते वर्धयन्ते स्वतन्त्रताम्।।१९।।

न क्लीबो भजतेऽभीष्टं न क्लीबो धनमश्नुते।
न क्लीबः शान्तिमाप्नोति न प्राप्नोति सुखं यशः।।२०।।

नाभिनन्देच्च मरणं नाभिनन्देच्च जीवितम्।
यावज्जीवेच्च संसारे तावत् कल्याणमाचरेत्।।२१।।

भूतेभ्यश्चाभयं दत्त्वा निर्भयः समुदाचरेत्।
विश्वकल्याणरक्षार्थं सदा कर्तव्यमाचरेत्।।२२।।

समत्वम्

समत्वं वै परं ज्ञानं समत्वं समदर्शनम्।
समत्वं परमानन्दः [1]समत्वं योग उच्यते।।१।।

समत्वं वै परा निष्ठा तस्याः सिद्धिः सुदुष्करा।
कर्मयोगेन संसिद्धिं कर्तव्ये निष्ठितो लभेत्।।२।।

समानहितसंयुक्तः समभावेन नोदितः।
निर्द्वन्द्वो व्यवहारो वै समत्वं परिलक्ष्यते।।३।।

विवेक से यत्नपूर्वक न्याय की रक्षा करता है, वह शूर अथवा वीर है।।१६।। निष्काम भाव से सेवा कार्यों में तत्पर वीर पुरुष सब प्रकार के स्वार्थ तथा अभिमान का परित्याग कर न जीने में न मरने में हर्ष-विषाद प्रकट करे, जब तक संसार में जीवित रहे, तब तक कल्याण करता रहे। सब प्राणियों को अभय देता हुआ स्वयं निर्भीक व्यवहार करे, न लाभ में हर्षित हो, न हानि में चिन्तित।।१७-१९।।

समत्व ही श्रेष्ठ ज्ञान है, समदर्शन ही समत्व है। समत्व परमानन्द और योग है।।१।। समत्व निःसन्देह उच्चतर विश्वास है। उसकी सिद्धि कठिन है। कर्मयोग से कर्तव्यनिष्ठ उसकी सिद्धि प्राप्त करे।।२।। मनुष्यता, सत्य और सौहार्द से सम्पन्न

१. गीता २.४८

समभावसमायुक्तः सर्वेषां हितचिन्तकः ।
निर्द्वन्द्वो यश्च निर्वैरः स समः परिकीर्त्यते ।।४।।

सुधीः कर्तव्यनिष्ठो वै सत्याचारः शमी दमी।
निष्कामकर्मसंसिद्धः समत्वमधिगच्छति ।।५।।

शान्तो दान्तो न्यायशीलो निर्द्वन्द्वः कार्यनिष्ठितः ।
निष्कामभावसंसिद्धः समत्वमधिगच्छति ।।६।।

[१]तेषामात्मसमो लोको येषां साम्ये स्थितं मनः ।
सत्पक्षे ते स्थिता नित्यं सङ्कष्टेनापराजिताः ।।७।।

[२]येषामात्मसमो लोकस्ते वै लोकार्थचिन्तकाः ।
ते न मानित्वमिच्छन्ति मानवानां हिते रताः ।।८।।

समं सर्वेषु लोकेषु यः पश्यति स पण्डितः ।
समभावसमायुक्तो लोके चरति सज्जनः ।।९।।

[३]विद्वान् सर्वेषु लोकेषु स्वात्मना स्वोपमो भवेत् ।
दलिते शोषिते चैव [४]वर्तितव्यं यथात्मनि ।।१०।।

आत्मतुल्य निष्पक्ष व्यवहार ही समत्व कहलाता है।।३।। जो समता की भावना से युक्त, सबका हितचिन्तक, निर्द्वन्द्व और निर्वैर है, वह सम कहलाता है।।४।। कर्तव्यनिष्ठ, सत्याचारी, संयमी, निष्काम कर्म में सिद्ध, बुद्धिमान् समत्व को प्राप्त करता है।।५।। जिनका मन समता में स्थित है, उनके लिये सब लोग अपने समान हैं, वे सदा सत्पक्ष में स्थित रहते हैं और कष्टों से परास्त नहीं होते।।६। जिनको सब आत्मसम हैं, वे लोकहित के चिन्तक हैं, वे मान की इच्छा नहीं करते, मानवमात्र के हित में संलग्न रहते हैं।।७।। जो सब लोगों को समान देखता है, वह पण्डित है। सज्जन समता की भावना से युक्त हो संसार में आचरण करता है।।८।। विद्वान् सब लोगों में समता की भावना रखे, अर्थात् सबको अपना जैसा, अपने समान समझे। दलित और शोषित में भी वैसा ही बर्ताव करे, जैसा वह अपने में चाहता है।।९।। अहंकार, दम्भ और लोभ को छोड़कर समता की भावना से युक्त हो दीनों का हित करे।।१०।। सब लोगों में समभाव रखते हुए मैत्री का आचरण करे। दलितों और शोषितों की रक्षा करे और

---

१. गीता ४.१९ २. शान्ति. ११.१६ ३. शान्ति. २७६.१०
४. शान्ति. १६७.९

अहङ्कारं परित्यज्य दम्भं लोभं विसृज्य च।
समभावसमायुक्तो दीनानां हितमाचरेत्।।११।।

समः सर्वेषु लोकेषु [1]मैत्रायणगतिश्चरेत्।
दलितं शोषितं रक्षेत् समाजं स्थापयेत् समम्।।१२।।

समत्वे दृढविश्वास आस्तिक्यं परिकीर्तितम्।
समत्वाचरणं श्रेयो मानवत्वप्रसाधनम्।।१३।।

देशकालौ च विज्ञाय लोकात्मोत्कर्षहेतवे।
सत्यनिष्ठः समत्वं वै स्थापयेच्च समाचरेत्।।१४।।

मानवानां हि संसारे समाजस्य परिस्थितिः।
प्रभावयति संसिद्धिसामर्थ्यं नात्र संशयः।।१५।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने नरो मानुष्यसम्भृतः।
सत्कृतैर्योगसेवाभ्यां साम्यं कष्टेन पद्यते।।१६।।

साम्यस्वातत्र्यसम्पन्ने राष्ट्रे मानुष्यसम्भृते।
मानवः स्वल्पयत्नेन समत्वमधिगच्छति।।१७।।

सेवासमत्वभावाभ्यां शिष्टाचरणसत्कृतैः।
समत्वं सेवते सूरः साम्यानुकूलसंस्थितौ।।१८।।

समसमाज को स्थापित करे।।११।। समता में दृढ़ विश्वास आस्तिकता कहलाती है। समत्व का आचरण मानवता का सर्वोत्तम तथा अच्छा साधन है।।१२।। देश और काल को समझ कर अपने और लोक के उत्कर्ष के लिए सत्यनिष्ठ समता को स्थापित करे और उसके अनुकूल ठीक तौर पर आचरण करे।।१३।। निःसन्देह समाज की परिस्थिति मानव की सब बातों में सफलता की क्षमता को प्रभावित करती है।।१४।। विषमता से सम्पन्न राष्ट्र में मनुष्यता से सम्पन्न पुरुष सत्कार्य, योग और सेवा द्वारा कष्ट से समत्व प्राप्त करता है।।१५।। मनुष्यता से सम्पन्न तथा स्वतन्त्रता और समता से युक्त राष्ट्र में मनुष्य थोड़े प्रयत्न से ही समत्व प्राप्त करता है।।१६।। समता के अनुकूल स्थिति में विद्वान् सेवा, समत्वभावना, शिष्टाचार, शुभ कार्य से समता का अनुष्ठान करता है।।१७।। समता के समाज में समाज के उत्कर्ष की निष्ठा से शिष्ट पुरुष निष्काम कर्म और शील से शुभ समता प्राप्त करते हैं।।१८।।

---

१. शान्ति. १६०.२७

शिष्टः समे समाजे वै समाजोत्कर्षनिष्ठया।
निष्कामकर्मशीलाभ्यां समत्वं लभते शुभम् ।।१९।।

समाजवादः

योगः समाजवादस्य साम्यस्वातन्त्र्यसम्भृतः।
सम्पन्नः सर्वकल्याणैः सर्वमङ्गलसाधकः ।।१।।

वर्गहीनसमाजो वै व्यवस्था लोकतान्त्रिकी।
स्वातन्त्र्यं सर्वराष्ट्राणां समताधृतसंस्कृतिः ।।२।।

श्रमव्यक्तित्वसम्मानं नराधिकृतिरक्षणम्।
आर्थिकं लोकतन्त्रं च कल्याणमयजीवनम् ।।३।।

सर्वोत्कर्षस्य सौविध्यं सर्वमानन्दसाधनम्।
नूनं समाजवादस्याभिप्रायाः परिकीर्तिताः ।।४।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने शोषणेन समावृते।
वर्गाधिपत्यसंयुक्ते वर्गसङ्घर्षसंयुते ।।५।।

समसमाज में मनुष्य को समता की अनुभूति स्वतः उपलब्ध नहीं होती। उसकी सिद्धि के लिये उसे प्रयत्न करना होता है। निष्काम भावना से समाजोत्कर्ष के लिये समाज की सेवा करनी होती है, समता के भाव से अपने शील, व्यवहार और कृत्यों को अनुप्राणित करना होता है। विषमता से परिपूर्ण समाज में तो इन सब बातों के साथ साथ उसे विषमता, वैमनस्य, दम्भ, द्वेष तथा अन्याय से संघर्ष भी करना पड़ता है, दूषित वातावरण के कुप्रभावों से अपने को बचाना पड़ता है।

अच्छे आशय से सम्पन्न व्यक्ति समत्व की सिद्धि के निमित्त वर्गविहीन समता-मूलक समाज स्थापित करते हैं। न्यायशील समता एवं सत्य पर निष्ठा रखने वाला सज्जन प्रगति, प्रेम, समता पर आश्रित संस्कृति को पुष्ट करता है।।१९।।

समाजवाद की पद्धति समता, स्वतन्त्रता तथा कल्याण से सम्पन्न एवं सबके मंगल की साधक है।।१।। समाजवाद की पद्धति समाज के उत्कर्ष की साधना है, समता और स्वतन्त्रता की सम्यक् वृद्धि तथा श्रमिकों के कल्याण का हेतु, अर्थात् कारण है।।२।। वर्गहीन समाज, लोकतान्त्रिकी व्यवस्था, सब राष्ट्रों की स्वतन्त्रता, समता पर आधृत संस्कृति, मानव-व्यक्तित्व और श्रम का सम्मान, मानव-अधिकारों की रक्षा, आर्थिक लोकतन्त्र, कल्याणमय जीवन, सबकी उन्नति की सुविधा, आनन्द के सब साधन—निःसन्देह ये सब समाजवाद के लक्ष्य हैं।।३-५।। विषमता से सम्पन्न, शोषण

श्रमिकः सङ्घशक्तिभ्यः शोषणं प्रतिरोधयेत् ।
रचनाक्रान्तिसङ्घर्षैराधिपत्यं विरोधयेत् ।।६।।

संस्थापयेत् समत्वं च लोकन्यायं सुसंस्कृतिम् ।
वर्गहीनं समाजं वै सर्वकल्याणसाधनम् ।।७।।

प्रेरितो मानवत्वेन लोकन्यायप्रभावितः ।
तस्मात् समाजवादस्तु मानवीयः प्रकीर्त्यते ।।८।।

लोकतन्त्रस्य भृत्यानां विस्तारस्तस्य सद्गुणः ।
तस्मात् समाजवादस्यान्दोलनं लोकतान्त्रिकम् ।।९।।

आन्दोलनं च तस्यापि नवसंस्कृतिमीक्षते ।
समाजवादिनस्तमात् तद्वै सांस्कृतिकं विदुः ।।१०।।

से परेशान, वर्गाधिपत्य और वर्गसंघर्ष से अधिकृत राष्ट्र में श्रमिक संगठन की शक्ति से शोषण का मुकाबला करें तथा समता, लोकन्याय, शुभ संस्कृति एवं सबके कल्याण के साधक वर्गहीन समाज को स्थापित करे।।६-८।। लोकतान्त्रिक मूल्यों का विस्तार ही उसका सद्गुण है, इसलिये समाजवाद का आन्दोलन लोकतान्त्रिक है।।९।।

पूंजीवादी व्यवस्था में लोकतन्त्र राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित है। समाजवाद के विचार में राजनीतिक लोकतन्त्र अपूर्ण है। वह राजनीतिक लोकतन्त्र को सुरक्षित रखते हुए आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों को भी लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और पद्धति के आधार पर संगठित करना चाहता है। व्यापक लोकतन्त्र की स्थापना ही समाजवाद का लक्ष्य है। उसके लिये लोकतन्त्र एक जीवन-विधि है। स्वतन्त्रता, समता, सहकारिता, सामाजिक न्याय, सौभ्रातृत्व, सर्वोत्कर्ष, सर्वानन्द उसके आदर्श हैं।

समाजवाद का आन्दोलन एक नयी संस्कृति को प्रतिष्ठित करना चाहता है, अतः वह सांस्कृतिक आन्दोलन भी है।।१०।।

रोजा लुकजम्बर्ग तथा आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे विद्वानों ने समाजवाद के सांस्कृतिक लक्ष्य पर काफी जोर दिया है। भौतिक अभ्युदय की अभिवृद्धि के साथ साथ मनुष्यत्व का विकास समाजवाद का लक्ष्य है। उसका एकमात्र उद्देश्य आर्थिक व्यवस्था का नवनिर्माण कर सब लोगों को शोषण-विहीन सुखी जीवन बिताने की सुविधा पहुँचाना ही नहीं है, वह तो एक ऐसी संस्कृति का विकास करना चाहता है जो समता, स्वतन्त्रता, सहकारिता, सौभ्रातृत्व तथा सामाजिक न्याय पर आधृत हो, जिसमें मानव व्यक्तित्व के साथ साथ समाजोपयोगी मानव-श्रम का सम्मान हो, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति

क्रान्तिः समाजवादस्य चार्थिकी राजनैतिकी ।
स्थापयेत् समताराज्यं लोकतान्त्रिकमार्थिकम् ।।११।।

नवजीवननिर्माणं समाजं समताधृतम् ।
यत्नैः समाजवादस्य लभन्ते श्रमिका जनाः ।।१२।।

जातिसङ्घर्षसन्तप्ते राष्ट्रे जातिविभाजिते ।
यत्नैः समाजवादस्य समाजं स्थापयेत् समम् ।।१३।।

नूनं समाजवादस्तु नैतिकत्वविभूषितः ।
समत्वं न्यायमानुष्ये तस्यैते नैतिका गुणाः ।।१४।।

को संचित सांस्कृतिक उपलब्धियों से अपने जीवन को आनन्दमय और सुसंस्कृत बनाने की सुविधा प्राप्त हो, मानव के पारस्परिक सम्बन्ध समतामूलक सौहार्द पर आधृत हो, सबको अपने जीवन के सर्वांगीण विकास, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ उत्कर्ष के लिये समुचित अवसर और सुविधा प्राप्त हो। समाजवाद संस्कृति और श्रम की एकता पर विश्वास करता है। अभ्युदय के भौतिक साधनों के उत्पादन में संलग्न श्रमिकों के सांस्कृतिक विकास पर विशेष ध्यान देना वह समाज का कर्तव्य समझता है।

समाजवाद की क्रान्ति आर्थिक और राजनीतिक दोनों तरह की हैं, वह समता का राज्य और आर्थिक लोकतन्त्र स्थापित करना चाहती है।।११।। जातिसंघर्ष से त्रस्त जातियों में विभाजित राष्ट्र में समाजवाद के प्रयत्नों से समसमाज स्थापित हो।।१३।। मानवता से प्रेरित तथा लोकन्याय से प्रभावित समाजवाद मानवीय है।।१४।।

समाज के विरोधी समाजवाद को अनैतिक तथा मानवताविरोधी बताते हैं, उनका कहना है कि समाजवाद का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं, वह तो सब नैतिक नियमों का उल्लंघन करते हुए वर्गसंघर्ष द्वारा मानवीय भावनाओं को नष्ट करना चाहता है। इस समीक्षा के उत्तर में समाजवादी विचारकों का कहना है कि समाजवादी आन्दोलन के सामाजिक आदर्श नैतिक हैं। वह जिस समाज की स्थापना करना चाहता है, वह शोषण और वर्गाधिपत्य से रहित होगा, उसमें सबको सुख तथा उत्कर्ष की समान सुविधा प्राप्त होगी, अत: उसका नैतिक स्तर प्रचलित सामाजिक व्यवस्था से कहीं ऊँचा होगा। वर्ग-संघर्ष और वर्गाधिपत्य से ग्रस्त समाज में शोषित वर्गों को वर्गसंघर्ष के लिये तैयार करना उतना ही नैतिक और न्यायसंगत है, जितना साम्राज्यशाही के विरुद्ध स्वतन्त्रता-युद्ध की तैयारी करना। वह प्रचलित नैतिक व्यवस्था का इसलिये विरोध करता है कि उसमें नैतिकता की आड़ में वर्गाधिपत्य की रक्षा की गयी है। वह स्वयं प्रगतिशील नैतिक तत्त्वों तथा क्रान्तिकारी नैतिक भावनाओं के आधार पर एक ऐसी नैतिक जीवनप्रणाली की स्थापना करना चाहता है, जो उच्चतम नैतिक और मानवीय होगी। वास्तविक मानवीय

नूनं श्रमिकसङ्घर्षो लोकन्यायप्रभावितः ।
श्रमिकोत्थानमस्यैव सदुद्देश्यमुदाहृतम् ।।१५।।
नैतिकत्वं च सङ्घर्षो द्वयमन्योन्यमाश्रितम् ।
सङ्घर्षो नैतिकत्वेन लभते मानगौरवम् ।।१६।।
नैतिकत्वं च सङ्घर्षैः पद्यते लक्ष्यसाधनम् ।
तयोरेव सुसम्बन्धाद् विकसन्ति गुणा भवे ।।१७।।
गुणाः समाजवादस्य समाजोत्कर्षसाधनम् ।
सत्ता समाजवादस्य सर्वश्रेष्ठा प्रकीर्तिता ।।१८।।

नैतिकता समता पर आश्रित शोषणविहीन समाजवादी समाज में ही सम्भव है। मानवता ही समाजवाद का आधार है।

निःसन्देह समाजवाद नैतिकता से विभूषित है। समता, न्याय और मनुष्यता उसके नैतिक गुण हैं।।१५।। श्रमिकसंघर्ष निःसन्देह लोकन्याय से प्रभावित है। श्रमिकों का उत्थान उसका उद्देश्य है।।१६।। नैतिकता और संघर्ष एक दूसरे पर आश्रित हैं। नैतिकता से ही संघर्ष मान और गौरव प्राप्त करता है। संघर्षो से नैतिकता लक्ष्य का साधन प्राप्त करती है। उनके समुचित सम्बन्ध से ही संसार में गुणों का विकास होता है।।१७।।

संघर्ष नैतिकता का अस्त्र है तथा नैतिकता संघर्ष का प्राण है। नैतिकताविहीन संघर्ष अत्याचार का उपकरण बन सकता है, समाज के लक्ष्य को विकृत कर सकता है, समाज को विघटित कर सकता है। इसी तरह संघर्ष से विहीन नैतिकता साधनविहीन है। उसके लिये समाजव्यापी अन्याय का प्रतिरोध करके न्याय को प्रतिष्ठित करना, स्थिर स्वार्थों के आधिपत्य को विलीन करके सर्वस्वातन्त्र्य समाज की स्थापना करना असम्भव है। नैतिकता से समन्वित संघर्ष ही लक्ष्य को नैतिक बल प्रदान कर सकता है, संघर्ष के लिये आवश्यक नैतिक समर्थन प्राप्त कर सकता है, लक्ष्य के गौरव को बढ़ा सकता है, उसे समाज में प्रतिष्ठित कर सकता है।

समाजवाद के गुण समाज के उत्कर्ष के कारण हैं। समाजवादी व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ है।।१८।।

समाजवाद द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ही समाज के गतिरोध का समाधान करके समाज का विकास कर सकते हैं। इस युग की सामाजिक समस्याओं का समाधान जनतान्त्रिक समाजवाद के बिना नहीं हो सकता। दूसरे सब विकल्पों की तुलना में समाजवाद निःसन्देह श्रेष्ठ है। इसके द्वारा ही सामाजिक संघर्षो और गम्भीर समस्याओं का निराकरण करके ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है, जो समाज

समताराज्यम्

राज्यं गतिसमायुक्तं सुराज्यं प्रगतिप्रियम्।
नित्यं प्रगतिदं राज्यं वर्धयेल्लोकमङ्गलम्।।१।।

सामन्तं नृपतन्त्रं च स्वत्ववैशिष्ट्यसंयुते।
तयोस्तु मानवाः सर्वे नराधिकृतवर्जिताः।।२।।

धनिकानामाधिपत्यं व्यवस्था लोकतान्त्रिकी।
वैषम्यं वर्गसङ्घर्षः श्रमिकाणां च शोषणम्।।३।।

कौशलोद्योगवृद्धी च बहुसम्पत्तिसञ्चयः।
धनिकानां च सत्ताया लक्षणं परिकीर्तितम्।।४।।

वर्गसत्ताधृतं राज्यं साम्यस्वातन्त्र्यघातकम्।
दमनन्यायसम्पन्नं नराधिकृतनाशनम्।।५।।

सत्तायाश्च निराकृत्य वर्गाधिप्यं प्रयत्नतः।
स्थापयेत् समताराज्यं सर्वानन्दसमन्वितम्।।६।।

के सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्तों का संरक्षण और संवर्धन कर सकती है तथा समष्टि के अधिकारों एवं हितों की रक्षा और अभिवृद्धि करते हुए प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र, आनन्दमय जीवन तथा व्यक्तित्व के विकास की समुचित सुविधा प्रदान कर सकती है।।

राज्य गतिसम्पन्न है, अच्छा राज्य प्रगतिशील होता है। प्रगतिशील राज्य सदा लोककल्याण की अभिवृद्धि करता है।।१।। सामन्तशाही तथा राजाशाही सम्पत्ति के विशिष्ट अधिकार से सम्पन्न होते हैं। उन दोनों में सब मनुष्य मानव-अधिकारों से वर्जित होते हैं।।२।। धनिकों का, अर्थात् पूंजीपतियों का आधिपत्य, लोकतान्त्रिक व्यवस्था, विषमता, वर्गसंघर्ष, श्रमिकों का शोषण, उद्योग तथा कला कौशल की वृद्धि, विपुल सम्पत्ति का सचंय—ये सब धनिकों की सत्ता, अर्थात् पूंजीवादी व्यवस्था के लक्षण हैं।।३-४।।

पूंजीवादी व्यवस्था किन्हीं दृष्टियों से सामन्तशाही और राजशाही की तुलना में प्रगतिशील और उन्नत होती है। पर वह भी विषमता, शोषण, वर्गसंघर्ष तथा आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण और वर्गाधिपत्य आदि दोषों से दूषित है।

वर्गसत्ता पर आश्रित राज्य समता और स्वतन्त्रता का घातक है। वह दमन तथा अन्याय से सम्पन्न है तथा मानव अधिकार का नाशक है।।५।। वर्गाधिपत्य को सत्ता, अर्थात् अधिकार से प्रयत्नपूर्वक हटाकर सबके आनन्द से समन्वित समता-राज्य स्थापित

लोकोत्कर्षसुसंलग्नं जनविश्वासमाश्रितम् ।
शासनं जनकल्याणं विद्वद्भिः समुदाहृतम् ।।७।।
राज्ये वर्गाधिपत्येन शोषणेन विवर्जिते ।
शासनं जनकल्याणं पूर्णतः सम्भविष्यति ।।८।।
वर्गाधिप्यविनिर्मुक्तं श्रमिकक्षेमशासनम् ।
सम्पुष्टिः पुरुषार्थस्य समताधृतजीवनम् ।।९।।
सर्वोत्कर्षस्य सौविध्यं प्रगतिप्रदसंस्थितिः ।
रक्षा सर्वाधिकाराणां व्यवस्था लोकतान्त्रिकी ।।१०।।
जीवनानन्दसौगम्यं सर्वेषां समगौरवम् ।
विद्वद्भिः समताराज्यं सद्गुणाः परिकीर्तिताः ।।११।।
स्वराज्यं समताराज्यं बन्धुत्वं लोकतन्त्रकम् ।
मानवत्वं न्यायं च स्थापयेत् कार्यनिष्ठितः ।।१२।।
स्वराज्ये समताराज्ये स्वातन्त्र्यं लभते नरः ।
अधिकारं मानवानां यशो मानं च विन्दति ।।१३।।

किया जाय।।६।। लोक के उत्कर्ष में अच्छे तौर पर संलग्न तथा जनविश्वास-प्राप्त शासन को विद्वानों द्वारा जनकल्याण शासन कहा जाता है।।७।। वर्गाधिपत्य तथा शोषण से रहित राज्य में ही जनकल्याण शासन पूरी तौर पर सम्भव हो सकेगा।।८।।

प्रारम्भ में पूंजीवादी राज्यव्यवस्था के समर्थक कल्याण-राज्य या कल्याण-शासन के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते थे। समाज में शान्ति और व्यवस्था को कायम रखना तथा बाह्य आक्रमण से समाज की रक्षा करना ही वे राज्य के मुख्य कार्य समझते थे। पर श्रमिकों के संगठित संघर्षो से मजबूर हो पूंजीवादी व्यवस्था में कल्याण राज्य के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया है और पूंजीवादी शासन ने किसी हद तक कल्याण राज्य का स्वरूप अपना लिया है। पर यह अब भी विषमता, संघर्ष तथा असमानताओं से ग्रस्त है और इन सब दोषों का निराकरण वर्गाधिपत्य को समाप्त करके ही हो सकता है। वर्गाधिपत्य से रहित समता-राज्य में ही कल्याण-राज्य का पूर्ण विकास सम्भव है।

वर्ग के आधिपत्य से छुटकारा, श्रमिक कल्याण शासन, पुरुषार्थ की पुष्टि, समता पर आधृत जीवन, सबके उत्कर्ष की सुविधा, प्रगतिशील परिस्थिति, सबके अधिकारों की रक्षा, लोकतान्त्रिक व्यवस्था, जीवन के आनन्द की सुगमता, सबका समान गौरव— ये सब विद्वानों द्वारा समताराज्य के सद्‌गुण बताये जाते हैं।।९-११।। कार्यनिष्ठ व्यक्ति स्वराज्य, समताराज्य, बन्धुता, लोकतन्त्र, मानवता तथा लोकन्याय को स्थापित करे।।१२।।

समः समाजः स्वातन्त्र्यं स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात् ।
तयोः संयोगतः सर्वः समोत्कर्षं समश्नुते ।।१४।।

सुराज्यं समताराज्यं स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात् ।
कुराज्ये नास्ति कल्याणं समत्वं न्यायरक्षणम् ।।१५।।

समत्वरहितं राज्यं सर्वस्वातन्त्र्यवर्जितम् ।
विशिष्टस्वत्वसम्पन्नमाधिपत्यप्रहस्तनम् ।।१६।।

वर्गसङ्घर्षसंयुक्तं शौषणैश्च समन्वितम् ।
राज्यं वैषम्यसम्पन्नं वर्गाधिप्यमुदाहृतम् ।।१७।।

आधिपत्यसमायुक्तं लोकतन्त्रविवर्जितम् ।
राज्यं स्वतन्त्रताहीनं समत्वं न विधीयते ।।१८।।

समत्वं लोकतन्त्रं च स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात् ।
संश्रयाल्लोकतन्त्रस्य समाजे समता भवेत् ।।१९।।

समत्वयोगसहितं लोकतन्त्रं च सिद्ध्यति ।
अन्योन्यस्याभिवृद्धिश्च तयोः शुभगुणः स्मृतः ।।२०।।

स्वराज्य और समताराज्य में व्यक्ति स्वतन्त्रता, मानव-अधिकार, यश और मान प्राप्त करता है।।१३।। समसमाज और स्वतन्त्रता एक दूसरे पर आश्रित हैं। उनके संयोग से ही सब लोग समोत्कर्ष को प्राप्त करते हैं।।१४।।

स्वतन्त्रता के बिना पराधीनता की परिस्थिति में समसमाज को स्थापित नहीं किया जा सकता। इसी तरह बाहरी शक्ति के आधिपत्य से मुक्त स्वतन्त्र राष्ट्र में जनता को लोकतन्त्र पर आधारित समताराज्य और समसमाज में ही पूरी और सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। अपनी स्वतन्त्रता के लिये परतन्त्रता के साथ साथ वर्गाधिपत्य और हर प्रकार के अधिनायकत्व से छुटकारा पाना भी जनता के लिये आवश्यक है।

अच्छा राज्य और समताराज्य भी एक दूसरे पर आश्रित हैं। बुरे राज्य में कल्याण, समता, न्याय और रक्षा नहीं होती।।१५।। समता से रहित, सबकी स्वतन्त्रता से वर्जित और सम्पत्ति के विशिष्ट अधिकारों से सम्पन्न राज्य अधिनायकशाही है।।१६।। वर्गसंघर्ष से ग्रस्त, शोषण से त्रस्त, विषमता से सम्पन्न राज्य वर्गाधिपत्य या वर्गविशेष की अधिनायकशाही है।।१७।। अधिनायकशाही से युक्त, लोकतन्त्र से रहित, स्वतन्त्रता से विहीन राज्य समता का विधान नहीं करते।।१८।। समता और लोकतन्त्र एक दूसरे पर आश्रित हैं। लोकतन्त्र के संश्रय से (आश्रय से) समाज में समता आती है, समता के योग से लोकतन्त्र सिद्ध होता है तथा एक दूसरे की समृद्धि दोनों के सद्गुण हैं।।१९-२०।।

समत्वं मानवत्वं च स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात् ।
मानवत्वसमायुक्तः समत्वं साधयेत् सुधीः ।।२१।।

समत्वेन विहीनश्च मानवत्वं न गच्छति ।
ततस्तयोः समायोगात् संसिद्धिं लभते नरः ।।२२।।

स्वातन्त्र्ये समताराज्ये मानवत्वं विधारयेत् ।
आनन्दं लोकतन्त्रं च समत्वं चाभिवर्धयेत् ।।२३।।

स्वातन्त्र्ये समताराज्ये लोकन्यायं समाचरेत् ।
वर्धयेज्जनकल्याणं न्यायवृत्तिं च पोषयेत् ।।२४।।

राष्ट्रस्वातन्त्र्यमारक्षेद् विश्वशान्तिं जगद्धितम् ।
मानवानामधीकारं समृद्धिं च विवर्धयेत् ।।२५।।

समः समाजः

स्वातन्त्र्यं समताराज्यं लोकार्थो लोकतन्त्रकम् ।
मानवं गौरवं न्यायः समाजः सम उच्यते ।।१।।

समः समाजः संस्थाप्यो लोकमङ्गलकाम्यया ।
तथा लोकस्य कल्याणं वर्धयेच्च सुखं समम् ।।२।।

समता लोकतन्त्र का नैसर्गिक गुण है। सब क्षेत्रों में पक्की समता की वृद्धि लोकतन्त्र का ध्येय कहा जाता है।।२१।। समता और मानवता भी एक दूसरे पर आश्रित हैं। मानवता से युक्त बुद्धिमान् समता साधे, समता से विहीन पुरुष मानवता सिद्ध नहीं कर सकता। अत: दोनों के योग, अर्थात् मेल से मनुष्य सफलता प्राप्त करता है। स्वतन्त्र समताराज्य में मानवता को धारण किया जाय तथा आनन्द एवं लोकतन्त्र और समता को बढ़ाया जाय।।२२-२३।। स्वतन्त्र समताराज्य में लोकन्याय के अनुकूल आचरण किया जाय, जनकल्याण बढ़ाया जाय, न्यायवृत्ति पुष्ट की जाय, राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा की जाय तथा विश्‍वशान्ति, विश्वहित, मानव-अधिकार और समृद्धि को बढ़ाया जाय।।२४-२५।।

स्वतन्त्रता, समताराज्य, लोकहित तथा लोकतन्त्र, मानव-गौरव और न्याय सम-समाज कहलाता है, अर्थात् ये सब समाजवाद के लक्षण हैं।।१।। सबकी स्वतन्त्रता तथा समुदाय के स्नेह से सम्पन्न, समता एवं सर्वसौहार्द और सौभ्रात्र से अलंकृत, लोकहित

सहयोगात् समृद्धिश्च वर्धनीयः समञ्जसा ।
संविभज्य हि भोक्तव्या ऐश्वर्यानन्दसम्पदः ।।३।।

समे समाजे सुजनाः सेवन्ते सहजं समम् ।
सर्वोत्थानं समोत्कर्षं सौभ्रात्रं सहकारिताम् ।।४।।

जातिवंशपदानां ते दर्पाहङ्कारनिर्मलाः ।
वर्गसङ्घर्षनिर्मुक्ताः समाः सर्वोपकारकाः ।।५।।

विश्वशान्तिं राष्ट्रहितं स्वातन्त्र्यं लोकतन्त्रकम् ।
मानवं गौरवं न्यायं यत्नतो रक्षयन्ति ते ।।६।।

राष्ट्रोत्कर्षमपि प्रेम्णा यत्नतो वर्धयन्ति ते ।
आत्मोत्कर्षं सुखं श्रेयस्तस्मात् ते प्राप्नुवन्ति वै ।।७।।

समे समाजे समता स्वातन्त्र्यं सहकारिता ।
न्याय्या वृत्तिर्मनुष्यत्वं लोकशीलं प्रशस्यते ।।८।।

लोकतन्त्रेऽचला निष्ठा संयमो विश्वबन्धुता ।
स्वकर्तव्ये राष्ट्रहिते रतिः शीलं प्रशस्यते ।।९।।

एवं लोकतन्त्र और लोकन्याय से अनुप्राणित तथा मानवाधिकार से युक्त समाज समसमाज कहलाता है।।२-३।।

समसमाज के ये विशिष्ट गुण हैं।

लोकमंगल की कामना से समसमाज को स्थापित कर प्रयत्नपूर्वक लोक की अभिवृद्धि को बढ़ाना चाहिये।।२।। सहयोग से ठीक तौर पर समृद्धि बढ़ाना चाहिये तथा ऐश्वर्य, आनन्द तथा सम्पत्ति का समुचित बटवारा करके उसका उपभोग करना चाहिये।।३।। समसमाज में सुजन सहज रूप से समता, सर्वोत्थान, समोत्कर्ष, बन्धुता, सहकारिता की सेवा और उपभोग करते हैं।।४।। वे जाति, वंश तथा पद के गर्व और अहंकार से मुक्त तथा वर्ग-संघर्ष से रहित होते हैं एवं समान रूप से सर्वोपकारक होते हैं।।५।। वे यत्नपूर्वक विश्वशान्ति, राष्ट्रहित, स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, मानव गौरव और न्याय की रक्षा करते हैं।।६।। वे राष्ट्र के उत्कर्ष को भी यत्नपूर्वक बढ़ाते हैं और इस तरह आत्मोत्कर्ष, सुख, श्रेय प्राप्त करते हैं।।७।। समसमाज में सुजन सुन्दर संस्कृति, समता पर आधारित न्यायमार्ग, नैतिकता, जनकल्याण, लोकतन्त्र, सद्वृत्ति, समता पर आधारित आर्थिक जीवन, सबकी समता, तथा मानव-आदर का अनुष्ठान और आचरण करते हैं।।८-९।। समसमाज में सदा सब मनुष्य समान होते हैं। सबका समोत्कर्ष और

समे समाजे सुजना ह्याचरन्ति सुसंस्कृतिम् ।
साम्याधृतं न्यायमार्गं नैतिकत्वं जगद्धितम् ।।१०।।

लोकतन्त्रं च सद्वृत्तिमर्थं साम्याधृतं तथा ।
सर्वसाम्यं च सर्वेषां नराणां चादरस्तथा ।।११।।

समे समाजे शश्वद्वै जनाः सर्वे समाः स्मृताः ।
सर्वेषां च समोत्थानं मानं च ध्येयमुच्यते ।।१२।।

आनन्दं च समोत्कर्षो ह्यधिकारौ प्रकीर्तितौ ।
सहयोगश्च लोकार्थः कर्तव्यौ परिलक्षयेत् ।।१३।।

गुणेन च स्वभावेन कार्यं वै परिनिश्चितम् ।
विद्याचरणसम्पन्नः संस्कृतः परिकीर्त्यते ।।१४।।

कार्यकर्मसु संलग्नः सत्पुरुष उदाहृतः ।
निष्कामभावसंसिद्ध उत्तमः पुरुषः स्मृतः ।।१५।।

व्यक्तित्वं साम्यसंसिद्धं समष्टेर्भावभूषितम् ।
मानवत्वसमायुक्तं लोकात्मोत्कर्षतत्परम् ।।१६।।

लोकज्ञानेन सम्पन्नं वृत्तसाहससंयुतम् ।
समे समाजे सुजनैर्महाव्यक्तित्वमुच्यते ।।१७।।

व्यक्तित्वं शीलसंयुक्तमाशालक्ष्यगुणान्वितम् ।
नीतिन्यायसमायुक्तं सद्भावेन विभूषितम् ।।१८।।

सम्मान उसका उद्देश्य है।।१०।। आनन्द और समोत्थान अधिकार; सहयोग और लोकहित कर्तव्य बताये जाते हैं।।११।। गुण और स्वभाव से कार्यक्षेत्र निश्चित होता है। मानवता से विभूषित व्यक्ति सभ्य तथा सुसंस्कृत कहलाता है।।१२।। कर्तव्य कर्मों में संलग्न सत्पुरुष तथा निष्काम कर्म में सिद्ध व्यक्ति उत्तम पुरुष कहा जाता है।।१३।। समत्वसिद्ध, सामाजिक भावना से भूषित, मानवता से युक्त, समाज तथा अपने उत्कर्ष में संलग्न एवं लोकज्ञान, सदाचार तथा साहस से सम्पन्न व्यक्तित्व समसमाज में श्रेष्ठ व्यक्तित्व कहा जाता है।।१४-१५।। शील, आशा तथा लक्ष्य के गुणों से सम्पन्न, नीति तथा न्याय से युक्त, सद्भावना से विभूषित, कर्तव्य कर्म में संलग्न एवं श्रमिकों के कल्याण में तत्पर व्यक्तित्व समसमाज में श्रेष्ठ व्यक्तित्व कहा जाता है।।१६-१७।। हर्ष, आनन्द और उत्साह से सम्पन्न, कला तथा विज्ञान में चतुर, संगीत तथा काव्य से सज्जित, मानव-अधिकारों से युक्त, लोकतन्त्र में निष्ठावान् व्यक्तित्व समसमाज में

कर्तव्यकर्मसंलग्नं श्रमिकक्षेमतत्परम् ।
समे समाजे सुजनैर्महाव्यक्तित्वमुच्यते ।।१९।।

व्यक्तित्वं शौर्यसंयुक्तं सिद्धान्ते परिनिष्ठितम् ।
भूषितं विश्वभावेन पुरुषार्थपरायणम् ।।२०।।

विवेकोल्लाससम्पन्नं सहकारगुणान्वितम् ।
समे समाजे सुजनैर्महाव्यक्तित्वमुच्यते ।।२१।।

व्यक्तित्वं हर्षसम्पन्नमानन्दोत्साहसंयुतम् ।
कलाविज्ञानसन्दक्षं सङ्गीतकाव्यसम्भृतम् ।।२२।।

युक्तं नराधिकारैश्च निष्ठितं लोकतन्त्रके ।
समे समाजे सुजनैर्महाव्यक्तित्वमुच्यते ।।२३।।

अर्थ:

न्यायेनार्जनमर्थस्य रक्षणं वर्धनं तथा ।
संविभागश्च पात्रेषु न्यायवृत्तं चतुर्विधम् ।।१।।

सम्पदं लोकयात्रार्थं लोकः सर्वः समर्जयेत् ।
अधिकं यदि सामर्थ्यं तल्लोकार्थं समर्पयेत्।।२।।

श्रेष्ठ व्यक्तित्व कहा जाता है।।१८-१९।। लोकतन्त्र से युक्त समता पर आश्रित समसमाज में लोकसेवा, सर्वांगीण उत्कर्ष, स्वतन्त्रता, सहकारिता, लोकन्याय की पुष्टि, सौजन्य, समता, संयम, लोकहित की अभिवृद्धि संस्कृति समझी जाती है।।२०-२१।। सुख तथा समद्धि से सम्पन्न तथा समता पर आश्रित समाज में मानवता से प्रेरित, लोकन्याय से प्रभावित, समता के अमृत से सम्पन्न, कर्तव्य कार्य में निष्ठावान् हो सौहार्द तथा सहयोग से सदा सहज जीवन बिताता है।।२२-२३।।

न्याय से धन को कमाना, उसकी रक्षा और वृद्धि करना, पात्रों में उसका सम्यक् वितरण करना, न्यायपूर्ण जीवनवृत्ति के ये चार रूप हैं।।१।। सभी लोग लोकयात्रा, अर्थात् जीवन के निर्वाह के लिये धन को ठीक तौर पर कमायें। यदि किसी में अधिक सामर्थ्य हो, तो वह उसे लोकहित में लगावें।।२।।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनः दण्डमर्हति ।।

[१]न लोकार्थी नृशंसेन कर्मणा धनमर्जयेत् ।
[२]न्यायागतं धनं चैव देयं भोग्यं च सर्वथा ।।३।।

भ्रष्टाचारं परित्यज्य न्यायेन धनमर्जयेत् ।
[३]सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।।४।।

[४]न त्वेवानर्थसम्पन्नां वृत्तिमीहेत मण्डितः ।
[५]नान्याधिकारमन्विच्छेन् नान्यायेनार्जयेद्धनम् ।।५।।

[६]विना परस्वहरणान्न कश्चित् स्यान्महाधनः ।
[७]मायां विना महाद्रव्यं दाङ् न सम्पाद्यते जनैः ।।६।।

अर्थात् जहाँ तक उदरपूर्ति, जीवननिर्वाह के लिये आवश्यक है, वहाँ तक मनुष्यों का सम्पत्ति पर अधिकार है। जो इससे अधिक चाहता है, वह चोर दण्ड का पात्र है।

श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि सत्पुरुषों की विभूतियाँ लोककल्याण के लिये होती हैं, जिस प्रकार एक सद्गृहस्थ अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण तथा अभ्युदय के लिये प्रयत्न करता है, उसी प्रकार एक सत्पुरुष को सारे समाज के हित में काम करना चाहिये।

स्वामी रामतीर्थ ने भी कहा है कि वेदान्त के अनुसार किसी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अधिकार जमाना, आन्तरिक या निजस्वरूप आत्मा के विरुद्ध घोर पातक है। (देखें रामहृदय, पृ. १२५)

लोकहित-चिन्तक को अन्याय से (क्रूरता से) धन उपार्जित नहीं करना चाहिये। न्याय से प्राप्त किये धन को ही सब तरह से देना और उपभोग करना चाहिये।।३।। भ्रष्टाचार को छोड़ कर न्याय से धन कमाया जाय। धन की शुद्धि अन्य सभी प्रकार की शुद्धियों से उच्चतम कही गयी है।।४।। पण्डित, अर्थात् बुद्धिमान् अनर्थ से सम्पत्ति जुटाने की इच्छा नहीं करता। दूसरे के अधिकार की इच्छा न करे, न ही अन्याय से धन उपार्जित करे।।५।। दूसरों के स्वत्व का अपहरण किये बिना कोई महाधनी नहीं होता। माया, अर्थात् कपट और जालसाजी के बिना अन्य किसी उपाय से जल्दी से धन इकट्ठा नहीं किया जा सकता।।६।। गरीबी मनुष्यों के लिये बड़े दुःख और अपमान

---

१. शान्ति. २९२.५ २. शान्ति. २९२.४ ३. मनु. ५.१०६
४. शुक्र. २.२२७ ५. शुक्र. २.२२८ ६. शुक्र. ४.२७८
७. शुक्र. ४.२७७

लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति दरिद्राणां च वेदनाम् ।
दारिद्र्यं हि मनुष्यस्य जीवतो मरणं भवेत् ।।७।।

[1]दौर्गत्यं देहिनां दुःखमपमानकरं परम् ।
उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो यत्नतो भवेत् ।।८।।

[2]अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ।
[3]तस्माज्जीवनवृत्तिं च सेवयेन्न्यायनिष्ठया ।।९।।

सुखितो दुःखितो वापि नरो लोभं परित्यजेत् ।
यत्नेन सत्ययोगेन न्यायवृत्तिं हि धारयेत् ।।१०।।

लोभाधृता व्यवस्था वै स्वार्थमोहौ तनोति च ।
संवर्धयति वैषम्यमन्यायं शोषणं तथा ।।११।।

सम्पोषयति सङ्घर्षं दम्भविद्रोहमत्सरान् ।
अवरुन्धेच्च सौभ्रात्रं स्वातन्त्र्यं सहकारिताम् ।।१२।।

श्रमिकक्षेमसंयुक्ता समत्वेन समन्विता ।
विभूषिता जनहितैः समाजोत्कर्षसंयुता ।।१३।।

का कारण है। दीन अपने को ऊपर उठाये और यत्न से समर्थ बने।।७।। धनी लोग गरीबों की वेदना को नहीं जानते। गरीबी मनुष्य के जीवन को मृत्यु-तुल्य बना देती है।।८।। जिसके द्वारा ठीक तौर पर जीवन-निर्वाह हो, वही उसका देवता है। इसलिये जीवनवृत्ति का न्यायनिष्ठा से अनुष्ठान करे।।९।।

श्रीमद्भागवत में स्वभावसिद्ध व्यवसाय में देवत्व का दर्शन कर उसकी पूजा, अर्थात् आदर का आदेश दिया गया है।। (भागवत १०.२४)

मनुष्य सुखी हो या दुःखी, लोभ को छोड़ दे। यत्न तथा सत्य की प्रक्रिया से न्याय्य व्यवसाय को ही धारण करे।।१०।। लोभ पर आश्रित व्यवस्था स्वार्थ और मोह को फैलाती है तथा विषमता, अन्याय एवं शोषण को बढ़ाती है। वह संघर्ष, दम्भ, विद्रोह और ईर्ष्या को बढ़ाती है तथा बन्धुता, स्वतन्त्रता और सहकारिता को रोकती है।।११-१२।। श्रमिकों के कल्याण से युक्त, समता से समन्वित, जनहित से प्रेरित तथा समाज

---

१. पंच. २ तन्त्र, श्लो. १०२ २. भागवत १०.२४.१८

३. शान्ति. २९५.२४

प्रेरिता लोकनिष्ठाभिः सहयोगेन पोषिता ।
साम्याधृता व्यवस्था वै वर्धयेज्जनमङ्गलम् ।।१४।।

साम्याधृता व्यवस्था वै सहयोगं विवर्धयेत् ।
संवर्धयेत् समृद्धिं च सौभ्रात्रं च सुखं समम् ।।१५।।

रक्षयेत् शोषणाच्चैव ह्याधिपत्याच्च सर्वथा ।
स्थापयेच्चैव लोकार्थं लोकन्यायं च मङ्गलम् ।।१६।।

अर्थस्य सुव्यवस्थासु श्रमिकश्रमगौरवम् ।
स्वातन्त्र्यं सहयोगस्य जीवनस्य सुरक्षणम् ।।१७।।

सौविध्यं लोकयात्रायै समोत्कर्षाय साधनम् ।
आधिपत्याद् विनिर्मुक्तिः शोषणाच्चैव रक्षणम् ।।१८।।

प्रबन्धे ह्यधिकारं वै सुवृत्तिं मानवोचिताम् ।
साम्याधृतं च न्यायं वै लभन्ते श्रमिका जनाः ।।१९।।

निश्चितं च समाजेन कालैश्च परिवर्तितम् ।
तत्सम्पत्तेर्हि स्वातन्त्र्यं न जातु स्यादखण्डितम् ।।२०।।

समाजेन समारम्भाः समाजेन प्रतिष्ठिताः ।
सम्पत्तेरधिकारा वै समाजेन नियन्त्रिताः ।।२१।।

के उत्कर्ष से सम्पन्न एवं लोकहित की भावनाओं से भूषित और सहयोग से पुष्ट समता पर आश्रित व्यवस्था ही जनमंगल को बढ़ाती है।।१३-१४।। समता पर आधृत व्यवस्था ही सहयोग, संवृद्धि, बन्धुता, समान सुख को बढ़ाती है, शोषण तथा आधिपत्य (अधीनता) से पूरी तौर पर रक्षा करती है एवं लोकहित, लोकन्याय और मंगल को प्रसारित करती है।।१५-१६।। अच्छी आर्थिक व्यवस्था में श्रमिकों के श्रम का गौरव, सहयोग की स्वतन्त्रता, जीवन की समुचित रक्षा, जीवन-निर्वाह की सुविधा, उत्कर्ष के साधन, अधीनता से छुटकारा, शोषण से रक्षा, प्रबन्ध में अधिकार, मनोवांछित रोजगार और जीविका, समता पर आधृत न्याय श्रमिक जन प्राप्त करते हैं।।१७-१९।। समाज से आरम्भ तथा समाज से प्रतिष्ठित सम्पत्ति के अधिकार समाज से नियन्त्रित हैं।।२०।। लोक की अभिवृद्धि ही उनका गुण है, लोकहित से रहित मिल्कियत या सम्पत्ति के अधिकार समाज द्वारा वर्जित हैं।।२१।। समाज से निश्चित तथा परिस्थिति द्वारा परिवर्तित सम्पत्ति की स्वतन्त्रता या अधिकार को अखण्ड नहीं कहा जा सकता, अर्थात्

लोकस्यास्याभिवृद्धिर्हि गुणस्तेषां प्रकीर्तितः ।
लोकार्थरहितं स्वत्वं समाजेन विवर्जितम् ।।२२।।

समाजहितसिद्ध्यर्थं समाजेन नियोजितम् ।
परिवर्तनशीलं वै सम्पत्तेः स्वत्वमुच्यते ।।२३।।

न्यायसौहार्दपुष्ट्यर्थं जनकल्याणहेतवे ।
व्यापारोद्योगलाभाः स्यू राज्यादेशनियन्त्रिताः ।।२४।।

वह शाश्वत और अपरिवर्तनीय न होकर सामयिक और परिवर्तनशील है।।२२।। समाज के हित की सिद्धि के लिये समाज द्वारा नियोजित सम्पत्ति का अधिकार परिवर्तनशील कहा जाता है।।२३।। न्याय तथा सौहार्द की पुष्टि एवं जनकल्याण के निमित्त राज्य के आदेश द्वारा व्यापार, उद्योग तथा लाभ का नियन्त्रण होना चाहिये।।२४।।

आधुनिक प्रगतिशील विद्वानों की तरह मनु, कौटिल्य आदि प्राचीन विद्वानों ने भी मुक्त व्यापार के सिद्धान्त को स्वीकार न करके उद्योग, व्यापार, लाभ आदि व्यक्तिगत आर्थिक कार्यों का राज्य द्वारा नियन्त्रण आवश्यक समझा है। मनु ने बैलों की क्षमता को ध्यान में रखते हुए खेती में उनके श्रम के प्रयोग के सम्बन्ध में कई नियम निर्धारित किये हैं (देखें मनुस्मृति)। इसी तरह कौटिल्य ने व्यापार के नियन्त्रण के सम्बन्ध में कई सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अर्थशास्त्र में राज्य द्वारा पण्याधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था करते हुए व्यापार के सम्बन्ध में उसके कर्तव्यों तथा नियन्त्रण सम्बन्धी अधिकारों की काफी विस्तार से विवेचना की है। इस व्यवस्था में उन्होंने और बहुत सी बातों के साथ-साथ बिक्री की वस्तुओं में मिलावट या तौल आदि में धोखेबाजी को दण्डित करार देते हुए लिखा है कि 'पण्याधिकारी' उपभोग की वस्तुओं के क्रय-विक्रय की ऐसी व्यवस्था करे कि जिससे उपभोक्ता-वर्ग का लाभ हो, तथा वह इस बात से सदा सतर्क रहे कि एक साथ मिलकर बहुत से व्यापारी माल की खरीद बिक्री न कर पायें। कौटिल्य ने लिखा कि यदि व्यापारी पण्याधिकारी की अनुमति के बिना अन्न आदि वस्तुओं का संग्रह करें, तो वह माल जब्त कर लिया जाय। अगर वे निश्चित मुनाफे से अधिक मुनाफा लेकर वस्तुओं को बेचें, तो उनको २०० पण का दण्ड दिया जाय। यदि वे एकता करके माल रोकें और अनुचित मूल्य पर क्रय-विक्रय करें, तो उनमें से प्रत्येक को एक-एक हजार पण का अर्थदण्ड दिया जाय। कौटिल्य का यह भी कहना था कि देशी वस्तुओं के व्यापार में पाँच प्रतिशत का तथा विदेशी माल के व्यापार में दस प्रतिशत का लाभ ही उचित लाभ है। (देखें—अर्थशास्त्र दूसरे अधिकरण का १६ अध्याय तथा चतुर्थ अधिकरण का दूसरा अध्याय)।

समाजहितसिद्ध्यर्थं जनकल्याणहेतवे ।
उद्योगानां नागराणां समाजीकरणं चरेत् ।।२५।।
सुव्यवस्थितराष्ट्रे वै समाजीकृतसम्पदः ।
विनाशयन्ति वैषम्यं हितसङ्घर्षशोषणे ।।२६।।
प्रतिष्ठापयन्ते न्यायं श्रमिकानां च गौरवम् ।
संवर्धयति सौभ्रात्रं राष्ट्रोत्कर्षं च मङ्गलम् ।।२७।।

समाज के हित की सिद्धि तथा जनता के कल्याण के निमित्त नागरिकों के निजी उद्योगों का समाजीकरण किया जाय।।२५।। सुव्यवस्थित राष्ट्र में समाजीकृत सम्पत्ति विषमता, हितसंघर्ष और शोषण को नष्ट करती है, न्याय तथा श्रमिकों के गौरव को प्रतिष्ठित करती है तथा बन्धुता, राष्ट्र के उत्कर्ष और मंगल को बढ़ाती है।।२६-२७।।

स्थिर स्वार्थों के समर्थक निजी सम्पत्ति के समाजीकरण का विरोध करते हैं। वे उसे अन्याय समझते हैं। उनके विचार में सम्पत्ति मानव-व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है, सम्पत्ति का अधिकार मानव-व्यक्तित्व के अधिकार की तरह ही नैसर्गिक है, निजी सम्पत्ति का अपहरण व्यक्तित्व को खण्डित करता है। उनके विचार में सम्पत्ति का संग्रह मानव-स्वभाव का नैसर्गिक गुण है। इसके उत्तर में समाजवादी विचारकों का कहना है कि मानव-अधिकारों की उत्पत्ति समाज में होती है, सामाजिक परिस्थिति और मान्यताओं के साथ साथ उनमें भी परिवर्तन होता है। सम्पत्ति तो एकमात्र सामाजिक संस्था है, वह तो सामाजिक व्यवस्था पर आश्रित है और उसकी व्यवस्था समय समय पर बदलती रही है। सम्पत्ति की मान्यता की तुलना व्यक्तित्व की मान्यता से नहीं की जा सकती। जहाँ व्यक्तित्व मानव जीवन में निहित है, उसका सार है, वहाँ सम्पत्ति एक भौतिक साधन है। सम्पत्ति के बजाय मानवश्रम व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है, श्रम का समुचित संरक्षण मानव व्यक्तित्व के संरक्षण का अंग है। उसका तिरस्कार और अपहरण ही व्यक्तित्व को खण्डित करता है। लोभ पर आश्रित आर्थिक व्यवस्था में मानव श्रम के बजाय सम्पत्ति का आदर होता है, जहाँ सम्पत्ति के अधिकारों का संरक्षण होता है, वहाँ श्रमिकों के श्रम का शोषण होता है। श्रमिकों के श्रम की अभिव्यक्ति का उपभोग श्रमिकों के बजाय सुविधा-सम्पन्न धनवान् करते हैं। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था निजी सम्पत्ति के बजाय मानवश्रम का समुचित संरक्षण कर मानव व्यक्तित्व का संरक्षण करती है, श्रम और ज्ञान की एकता को प्रतिष्ठित कर श्रमिकों को अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की सुविधा प्रदान करती है, शोषण का अन्त कर सामाजिक न्याय की स्थापना करती है। संचय और प्रतिष्ठा मानव का स्वभाव हो सकता है। पर जीवन में इनकी अभिव्यक्ति अनेक

न्यायः

ईक्षया निश्चितं सत्यं समाजहितसंयुतम् ।
निर्द्वन्द्वं वैररहितं लोकन्यायः प्रकीर्तितः ।।१।।

यः स्याद् धारणसंयुक्तः समभावगुणान्वितः ।
विभूषितो जनहितैर्लोकन्यायः स उच्यते ।।२।।

स्वातन्त्र्यं च मनुष्यत्वं समत्वं सहकारिता ।
शान्तिः कल्याणमुत्कर्षस्तस्य ध्येयमुदाहृतम् ।।३।।

प्रकार से होती है। जहाँ बहुत से व्यक्ति धन के संचय में ही अपना अभीष्ट समझ उसमें संलग्न हैं, वहाँ दूसरे लोग समाजसेवा द्वारा कल्याण के संचय में संलग्न रहते हैं और इस कार्य द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठा को पर्याप्त समझते हैं। कतिपय व्यक्ति तो प्रतिष्ठा के लोभ-मोह का भी परित्याग कर निष्काम भाव से विश्वकल्याण की अभिवृद्धि करना ही उचित समझते हैं। सम्पत्ति के संचय की लालसा कृत्रिम है, निजी सम्पत्ति पर आश्रित व्यवस्था का परिणाम है। मानव तो जीवनयात्रा की सुविधा तथा समाज में सम्मान चाहता है। चूँकि निजी सम्पत्ति पर आश्रित व्यवस्था में इनकी उपलब्धि सम्पत्ति के संचय द्वारा होती है, सम्पत्तिवान् ही सर्वसुविधा-सम्पन्न होते हैं, उन्हींका समाज में सम्मान होता है और सम्पत्ति ही सफलता का मापदण्ड है, इसलिये मानव प्रेरणायें इस ओर झुक जाती हैं, यह उनका अभीष्ट और लक्ष्य बन जाती है। पर ऐसी व्यवस्था में जहाँ पर्याप्त श्रम के बाद जीवन की सुविधा प्राप्त हो सकती हो और समाजसेवा ही प्रतिष्ठा का मापदण्ड हो, वहाँ मानव प्रेरणायें उधर झुकेंगी। प्रेरणाओं के इस झुकाव में अवश्य ही मानव-जीवन का विकास निहित है। निजी सम्पत्ति का समाजीकरण सम्पत्ति का विनाश नहीं, बल्कि उसका रूपान्तरण है। सामाजिक सम्पत्ति के रूप में उसकी अभिव्यक्ति है।।

विवेक से निश्चित, समभाव से समन्वित, लोक को धारण करने में समर्थ तथा लोकरक्षा की शक्ति से सम्पन्न, जनकल्याण से भूषित, समाज के हित से युक्त, निर्द्वन्द्व और वैररहित सत्य लोकन्याय कहलाता है।।१-२।।

विवेक, समाज कल्याण, निर्द्वन्द्वता, निर्वैरता, समाज की व्यवस्था ठीक रहने की क्षमता, समता और जनकल्याण का सामर्थ्य लोकन्याय के लक्षण हैं। इन गुणों और लक्षणों से सम्पन्न विधि-विधान लोकन्याय है।

स्वतन्त्रता, सर्व सौहार्द, समता, सहकारिता, शान्ति और कल्याण तथा उत्कर्ष लोककल्याण के ध्येय बताये जाते हैं।।३।। श्रमिकों के कल्याण की वृद्धि, बेकारों का

श्रमिकक्षेमसंवृद्धिरमृतानां च पोषणम् ।
रक्षणं निर्बलानां च लोकन्याय उदाहृतः ।।४।।

न्याये स्थितं राष्ट्रहितं सर्वोत्थानं सुखं समम् ।
अधिकारा मानवानामैश्वर्यं रक्षणं तथा ।।५।।

लोकन्यायः परा शक्तिः समाजस्य परो गुणः ।
न्यायेन सम्प्रवर्धन्ते स्वातन्त्र्यं समता तथा ।।६।।

समोत्कर्षश्च लोकार्थः सत्यं शीलं च मङ्गलम् ।
अभिवृद्धिश्च सर्वेषां सानन्दं जीवनं तथा ।।७।।

लोकन्यायात् परं नास्ति वृत्तं शीलं तपो व्रतम् ।
लोकन्यायो हि कर्तव्य इत्येव मुनिभिः स्मृतम् ।।८।।

लोका न्यायेन विधृता रक्षिताः परिपालिताः ।
ततो विवेकी विक्रान्तो न्यायं धारयते ध्रुवम् ।।९।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने वर्गाधिप्यसमन्विते ।
शोषणैश्च समायुक्ते न्यायो विक्रियतां व्रजेत् ।।१०।।

भरण-पोषण, निर्बलों की रक्षा लोकन्याय है।।४।। न्याय में राष्ट्र का हित, सबका उत्थान तथा समान सुख, मानव-अधिकार, ऐश्वर्य एवं रक्षा स्थित हैं, अर्थात् न्याय द्वारा ही इनकी प्राप्ति और रक्षा होती है।।५।।

लोकन्याय उच्चतर शक्ति है, समाज का उत्तम गुण है। न्याय से स्वतन्त्रता, समता, बल तथा समोत्कर्ष, लोकहित, शील, मंगल, सबकी अभिवृद्धि एवं आनन्दमय जीवन का विकास होता है।।६-७।। लोकन्याय से उत्तम कोई सदाचार, शील, तप और संकल्प नहीं है। लोकन्याय का आचरण करना चाहिये, यही मुनियों ने कहा है।।८।। समाज के मन्तव्य और परिस्थिति से प्रभावित कानून तथा समाजव्यवस्था सामाजिक लक्ष्य तथा गुणों से सम्पन्न होते हैं।।९।। विषमता से सम्पन्न राष्ट्र में कानून विषमता से सम्पन्न होता है । समता पर आश्रित राष्ट्र में कानून भी समता पर आश्रित होता है।।१०।

जैसा कि 'समाजोत्कर्ष' प्रकरण में बताया गया है, न्याय सामाजिक परिस्थितियों तथा आर्थिक व्यवस्था से प्रभावित और नियन्त्रित है । अतः विषमता से ग्रस्त तथा वर्गाधिपत्य से नियन्त्रित परिस्थितियों तथा व्यवस्थाओं में न्याय का सच्चा स्वरूप विकसित नहीं हो पाता, वह मानवमात्र के कल्याण को पुष्ट करने के बजाय वर्गविशेष

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने न्यायस्थापनहेतवे ।
विरोधयेदनाचारमन्यायं शोषणं तथा ।।११।।

लोकन्यायसमायुक्तो नीतिशीलगुणान्वितः ।
मानवोचितमार्गेण लोकन्यायं हि स्थापयेत् ।।१२।।

संवर्धयेद्धि स्वातन्त्र्यं समत्वं सहकारिताम् ।
अधिकारं नराणां च न्यायवृत्तिं च मङ्गलम् ।।१३।।

आधिपत्येन संयुक्तं शोषणेन समन्वितम् ।
न्यायमन्यायमूलं च तत्समर्थितशोषणम् ।।१४।।

कर्तव्यनिष्ठः क्रान्तिभ्यो न्यायोचितपथेन च ।
त्यक्त्वा हृदयदौर्बल्यं यत्नतः प्रतिरोधयेत् ।।१५।।

लोकन्यायं प्रतिष्ठाप्य वर्धयेत् लोकमङ्गलम् ।
न्यायेन रक्षिता लोका आनन्दं प्राप्नुवन्ति वै ।।१६।।

सदाचारसमायुक्तो न्यायवृत्तिं हि धारयेत् ।
शीलन्यायविहीनस्य क्रियास्तु हितघातुकाः ।।१७।।

अन्यायं मनसा वाचा कर्मणाऽपि त्यजेत् सदा ।
लोकन्यायाश्रयेणैव कल्याणं समुदाचरेत् ।।१८।।

के हितों और अधिकारों का समर्थन करता है, वह समता को प्रतिष्ठित करने के बजाय विषमता और असमानता को स्थायी बनाने का उपकरण बन जाता है ।

राष्ट्र की न्यायभावना भी परिस्थिति से प्रभावित होती है । उसका पूर्ण विकास तो समता पर आश्रित समाज में होता है।।११।। समता से युक्त, जनकल्याण से सम्पन्न तथा मानव अधिकार से समन्वित कानून को यत्नपूर्वक पुष्ट किया जाय।।१२।। आधिपत्य और शोषण से सम्पन्न अन्यायमूलक विधि (कानून) तथा उससे समर्थित शोषण को कर्तव्यनिष्ठ क्रान्तियों और लोकतान्त्रिक मार्ग से हृदय की दुर्बलता को छोड़कर यत्नपूर्वक रोके।।१३-१४।। लोकन्याय तथा नीति एवं शील से युक्त पुरुष मानवोचित मार्ग से लोकन्याय को स्थापित करे, सद्वृत्ति एवं समता और सहकारिता तथा सब मनुष्यों के हित, स्वतन्त्रता और जनमंगल को बढ़ाये।।१५-१६।। लोकन्याय को प्रतिष्ठित कर लोकमंगल को बढ़ाये। न्याय से रक्षित लोग आनन्द को प्राप्त करते हैं।।१७।। सदाचार से सम्पन्न न्यायपूर्ण जीवनचर्या और व्यवसाय को ही ग्रहण करे, शील और न्याय से विहीन पुरुष के कार्य तो हित के घातक होते हैं।।१८।। अन्याय को मन, वचन कर्म

परश्रमोपजीवीह लोकन्यायं न पश्यति।
शोषणाचारनिर्मुक्तो न्यायं धारयते ध्रुवम्।।१९।।

न्याये स्थिते राष्ट्रहितं लोकानां च स्वतन्त्रता।
लोकन्यायं राष्ट्रनिष्ठो स्थापयेद् वर्धयेदपि।।२०।।

प्रेरितो न्यायभावेन लोकज्ञानसमन्वितः।
शीलशौर्यसमायुक्तो विश्वकल्याणमाचरेत्।।२१।।

शिक्षा

विद्या प्रतिष्ठा लोकानां विद्या चैवाश्रयः सताम्।
[1]विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।१।।

आत्मोत्कर्षाय लोकार्थं सर्वो वै ज्ञानमावहेत्।
विद्या सर्वाधिकारो वै नराणां भूषणं तथा।।२।।

दीनाय चापि हीनाय तत्सौविध्यं विधारयेत्।
सर्वोत्कर्षः समानन्दः राष्ट्रध्येयमुदाहृतम्।।३।।

या स्याद् विवेकसंयुक्ता व्यवहारगुणान्विता।
हितशीलसमायुक्ता सा सुशिक्षा प्रकीर्तिता।।४।।

जीवनेनेतिहासेन तद्व्यवस्था सुनिश्चिता।
जीवनं चेतिहासं च प्रभावयति सा सदा।।५।।

से सदा त्याग दे। लोकन्याय के आश्रय से ही कल्याण करे।।१९।। न्यायभाव से प्रेरित तथा लोकज्ञान से सम्पन्न एवं शील और शौर्य से युक्त पुरुष विश्वकल्याण करे।।२०।। संसार में पराये श्रम पर आश्रित व्यक्ति लोकन्याय को नहीं देखता। शोषण के आचार से निर्मुक्त हो न्याय को दृढ़ता से धारण करे।।२१।।

विद्या सब लोगों की प्रतिष्ठा और सत्पुरुषों का आश्रय है। विद्या से हीन पुरुष उसी तरह शोभा नहीं पाते, जिस तरह गन्ध के बिना टेसू के फूल।।१।। विद्या तथा आचारविधि से विहीन पुरुष का जीवन बेकार है। विद्या से संसार में प्रशंसा प्राप्त होती है। उत्तम पुरुषों से आदर मिलता है।।२।। विद्या सबका अधिकार तथा मनुष्यों का भूषण है। अतः विद्या की सुविधा मानवमात्र के लिये की जाय।।३।। सबका उत्कर्ष तथा समान आनन्द राष्ट्र का ध्येय है। शिक्षा की व्यवस्था निःसन्देह समाज के इस उद्देश्य को सिद्ध करने वाली है।।४।। शिक्षा की व्यवस्था जीवन तथा इतिहास से निश्चित होती है, वह भी जीवन

१. चाणक्य

समोत्कर्षाय सर्वेषां समाजोत्कर्षहेतवे ।
व्यवस्थिता सुशिक्षा वै समाजोद्देश्यसाधिनी ।।६।।

चारित्र्यस्य सुनिर्माणं ज्ञानकौशलसाधनम् ।
सौविध्यं लोकयात्रायाः सानन्दं जीवनस्य च ।।७।।

संवर्धनं विवेकस्य राष्ट्रोत्थानस्य वै तथा ।
समोत्कर्षश्च सर्वेषां शिक्षाध्येयमुदाहृतम् ।।८।।

एवं इतिहास को प्रभावित करती है।।५।। जो विवेक तथा व्यवहार से युक्त तथा हित एवं शील से सम्पन्न है, वह शिक्षा कहलाती है।।६।।

विवेक, व्यावहारिकता, शील तथा हित साधने की सामर्थ्य अच्छी शिक्षा के गुण हैं। शीलविहीन शिक्षा निरर्थक है, व्यावहारिकता से शून्य ज्ञान कोरा पाण्डित्य है। हित की साधना ही शिक्षा की व्यावहारिकता की परीक्षा तथा प्रमाण है। विद्यार्थियों को संचित ज्ञान और अनुभव की जानकारी करना ही शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य नहीं है, उनकी विवेक शक्ति का विकास शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। वही शिक्षित है, जो शीलवान् है और संचित ज्ञान एवं अनुभव के सहारे विकसित विवेक द्वारा उपस्थित परिस्थिति तथा समस्याओं को ठीक तौर पर समझता है, समस्याओं का समाधान सोचता है और अपने विचारों को कार्यान्वित करता है। बुद्धि, भाव तथा कर्मेन्द्रियों का सुसमन्वित तथा स्वस्थ विकास ही शिक्षा है।

चरित्र का सुन्दर निर्माण, ज्ञान तथा कौशल का साधन, लोकयात्रा की सुविधा, आनन्दमय जीवन, विवेक की सम्यक् वृद्धि, राष्ट्रोत्थान, सबका समोत्कर्ष (सर्वांगीण विकास) शिक्षा के ध्येय हैं।।७-८।।

बहुत से विद्वान् शिक्षा को सामाजिक नियन्त्रण का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण समझते हैं। उनके विचार में समाज द्वारा प्रतिष्ठित शील, व्यवस्था तथा विचारपद्धति में नवयुवकों को अच्छी तौर पर शिक्षित करना, उनके प्रति निष्ठावान् बनाना शिक्षा का सामाजिक लक्ष्य है। इस विश्लेषण में काफी सच्चाई है। पर स्थितलक्षण (स्थिर) समाज में ही यह शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य हो सकता है। प्रगतिशील समाज में तो नवयुवक को प्रतिष्ठित शील और व्यवस्था का वाहक बनाने के बजाय उसे प्रगति का साधक बनाना है। उसमें क्षमता पैदा करना है कि वह संचित ज्ञान तथा पूर्व व्यवस्थित शील और प्रथा के प्रगतिशील तत्त्वों की रक्षा करते हुए देश और काल के अनुकूल नये समाज का निर्माण कर सके, समाज की प्रगति में योगदान कर सके। इस तरह राष्ट्रोत्थान ही शिक्षा का ध्येय है।

सर्वसाम्यविधानेन समाजोत्कर्षहेतवे ।
ज्ञानविज्ञानविद्यासु शिक्ष्यान् सम्यक् सुशिक्षयेत् ।।९।।

लोकतन्त्रस्य सिद्धान्ते नैतिकत्वे नये तथा ।
लोकज्ञाने समुद्योगे सर्वान् वै परिशिक्षयेत् ।।१०।।

प्रौढाय दीनहीनाय स्त्रियै च श्रमिकाय च ।
नूनं विशेषसौविध्यं शिक्षायाः संविधारयेत् ।।११।।

यथाशक्ति स्वभावश्च तथा शिक्षा फलिष्यति ।
ततो गुणैः स्वभावैश्च नृणां शिक्षां विधारयेत् ।।१२।।

सबके लिये समान विधान से समाज के उत्कर्ष के निमित्त विद्यार्थियों को ज्ञान-विज्ञान में अच्छी तौर पर शिक्षित किया जाय।।९।। प्रौढ़ों, दीनहीनों, स्त्रियों तथा श्रमिकों के लिये शिक्षा का विशेष प्रबन्ध राष्ट्र द्वारा ठीक तौर पर किया जाय।।१०।।

प्रौढ़ो के लिये सामाजिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध सामाजिक प्रगति के लिये बहुत आवश्यक है । जो समाज जितना प्रगतिशील होगा, जिसमें नये नये विचारों, आविष्कारों तथा अनुभवों का जितना अधिक समावेश होगा, उसमें प्रौढ़ों की सामाजिक शिक्षा की उतनी ही अधिक आवश्यकता होगी । जिस समाज में पुरानी पीढ़ी के व्यक्ति जितने अधिक अशिक्षित होंगे, उसमें उतनी ही अधिक प्रौढ़ों के लिये सामाजिक शिक्षा की आवश्यकता होगी । इसी तरह अर्धविकसित समाज के पूर्ण विकास के लिये स्त्रियों की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है । स्त्रियों को अशिक्षित रखकर समाज की समुचित सांस्कृतिक उन्नति असम्भव है । इसी तरह दीन-हीन तथा श्रमिकों की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान देना सामाजिक प्रगति तथा समसमाज की स्थापना के लिये आवश्यक है ।

ठीक तौर पर लोकतन्त्र के सिद्धान्त, नैतिकता, नीति तथा लोकज्ञान में सबको शिक्षित किया जाय।।११।।

लोकतन्त्र में लोकतान्त्रिक नागरिकता के उत्तरदायित्व की साधना के निमित्त प्रत्येक नागरिक को इन बातों की जानकारी आवश्यक है। अतः सब बच्चों के लिये समान रूप से इसका प्रबन्ध आवश्यक है।

सहयोगात्मक क्रीड़ा, शील, न्याय, संयम, युक्त आहार विहार से विद्यार्थी अपने स्वास्थ्य को बढ़ायें।।१२।। स्वाध्याय, सहयोग, पुस्तक, गुरुशिक्षा तथा अपने व समाज

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्या सर्वत्र गौरवम् ।
विद्या सतां हिता पुंसां विद्या लाभः परो मतिः ।।१३।।

मौनं विवेकमार्यत्वं ज्ञानं कर्मसु कौशलम् ।
आत्मोत्कर्षं च सम्मानं विद्वान् समधिगच्छन्ति ।।१४।।

सुविद्या शीलमाधत्ते ज्ञानं च न्यायनिष्ठताम् ।
सौम्यत्वं सत्त्वसंशुद्धिं विवेकं विनयं व्रतम् ।।१५।।

ये दम्भालस्यनिर्मुक्ता ये च सत्यार्जवे स्थिताः ।
ये युक्ता लोकभावेन ते ज्ञानं प्राप्नुवन्ति वै ।।१६।।

व्रतश्रद्धासमायुक्तो धृत्युत्साहसमन्वितः ।
विवेकी कार्यकुशलः संयमी दृढ़निश्चयः ।।१७।।

सुवृत्तः शीलसम्पन्नोऽधीतिशीलः पराक्रमी ।
प्राज्ञो जिज्ञासुसत्यार्थी शिक्षार्थी परिकीर्तितः ।।१८।।

सुशिक्षार्थी शुभां विद्यां प्राप्नुयात् सत्प्रयत्नतः ।
वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् कार्यशीलो भवेत्तथा ।।१९।।

विद्याविधिविहीनस्य जीवनं निष्प्रयोजनम् ।
विद्यया शस्यते लोके पूज्यते चोत्तमैः सदा ।।२०।।

विद्या सर्वाधिकारो वै नराणां भूषणं तथा ।
तस्मान्मानवमात्रस्य तत्सौविध्यं विधारयेत् ।।२१।।

के विकास की भावना से एवं समाज की सेवा, प्रयोगात्मक कार्य, उत्पादक श्रम, नवीन खोज और शोध तथा देशयात्रा से अच्छा विद्यार्थी अच्छे ज्ञान को यत्नपूर्वक प्राप्त करे । सदाचार की यत्नपूर्वक रक्षा करे और कार्यशील बने।।१३-१५।। विद्यार्थी अच्छी शिक्षा से सामाजिकता, मनुष्यता, समता में दृढ़ आस्था, नैतिकता, सदाचार, सेवा तथा कर्तव्य की संस्कृति, विवेक, देशबन्धुत्व, कर्मों में कौशल, लोकतान्त्रिक सौहार्द, सत्संकल्प, विश्वभावना, न्यायनिष्ठा, सर्वांगीण उत्कर्ष, मनुष्यों के हित में प्रेम, सौजन्य एवं भावनाओं की शुद्धि प्राप्त करे।।१६-१८।। विद्यार्थी अपने जीवन को मानवता से विभूषित कर बाधक जड़ता को छोड़कर साधक तत्त्व ग्रहण करता है और स्वयं को ज्ञान-विज्ञान और चरित्र से विभूषित कर अच्छे सांस्कृतिक ढंग से विवेक, उत्साह और साहस से सत्य को प्रतिष्ठित करता है, सदा झूठ का विरोध करता है और सारे संसार के हित के लिये निश्चित रूप से सत्कर्म का अनुष्ठान करता है।।१९-२१।। संस्कृति और स्नेह की वृद्धि

सर्वोत्कर्षः समानन्दो राष्ट्रध्येयमुदाहृतम् ।
शिक्षायाः सुव्यवस्था वै समाजोद्देश्यसाधिनी ।।२२।।

जीवनेनेतिहासेन तद्व्यवस्था सुनिश्चिता ।
जीवनं चेतिहासं वै प्रभावयति सा सदा ।।२३।।

या स्याद् विवेकसंयुक्ता व्यवहारगुणान्विता ।
हितशीलसमायुक्ता सा सुशिक्षा प्रकीर्तिता ।।२४।।

यो दक्षो ज्ञानशीलश्च सत्ययोगपरायणः ।
शिष्यार्थचिन्तकः प्राज्ञः स वै शिक्षक उच्यते ।।२५।।

अध्यापनं चाध्ययनं सत्ययोगपरायणम् ।
शिक्षकैः सम्प्रकर्तव्यं सद्गुणैरनुशासनम् ।।२६।।

न्यायनिष्ठोऽनहंवादी कर्तव्ये निष्ठितो यमी ।
समः सर्वेषु शिष्येषु शिक्षकः शिष्टसम्मतः ।।२७।।

के लिये विद्यार्थी सहयोग और विवेक से अच्छी व्यवस्थित संगोष्ठी स्थापित करे, विधान तथा उसकी मर्यादा का नियमानुसार पालन करे तथा रचनात्मक कार्यों से हित और गौरव को बढ़ाये।।२२-२३।। विद्यार्थी विद्यापीठ तथा राष्ट्र की मर्यादा, मान, गौरव एवं सम्पत्ति की रक्षा करे और उन्हें बढ़ाये।।२४।। व्रत तथा श्रद्धा से युक्त, धृति और उत्साह से सम्पन्न, विवेकी, कार्य में चतुर, संयमी, दृढ़ निष्ठावान्, सदाचारी, शीलसम्पन्न, पढ़ाई में संलग्न, पराक्रमी, समझदार, जिज्ञासु तथा सत्य का इच्छुक विद्यार्थी कहा जाता है, अर्थात् विद्यार्थी में इन गुणों का होना आवश्यक है।।२५-२६।। जो दम्भ तथा आलस्य से मुक्त हैं, सत्य और सरलता में स्थिर हैं और लोकभावना से युक्त हैं, वे विद्या को प्राप्त करते हैं। जो दक्ष, ज्ञानशील, सत्य में लीन, विद्यार्थियों के हित के चिन्तक और बुद्धिमान् हैं, वे ही शिक्षक हैं। शिक्षकों में इन गुणों की आवश्यकता है।।२७।। पढ़ना-पढ़ाना, सत्ययोग में संलग्नता, सद्गुणों द्वारा अनुशासन ये सब शिक्षकों द्वारा आचरणीय हैं, अर्थात् ये सब शिक्षकों के कर्तव्य हैं। जो न्यायनिष्ठ, निरहंकारी, कर्तव्यपरायण, संयमी तथा सब शिष्यों के साथ समता का व्यवहार करने वाला है, वही शिक्षक है। जो विवेक तथा शील और हित से सम्पन्न ज्ञान को पढ़ाता है, वह शिक्षक है। जिसका कर्म बुद्धि के अनुकूल है और जिसकी बुद्धि सत्य का अनुगमन करती है और जो व्यवहार सम्पन्न ज्ञान जानता है, वह शिक्षक है। जो समाज के स्नेह से सम्पन्न लोक संस्कृति का विस्तार करता है तथा जनकल्याण को बढ़ाता है, वह शिक्षक है। जो दम्भ, दर्प,

यो विवेकसमायुक्तं ज्ञानं शीलहितान्वितम् ।
अध्यापयति यत्नेन स वै शिक्षक उच्यते ।।२८।।

संस्कृतिः

प्रकृतिर्मानवश्चैव सुविकासगुणान्वितौ ।
प्रभावयति चान्योऽन्यं क्रियागतिसमन्वितौ ।।१।।

सम्पर्केण तयोरेव संस्कृतेरुद्भवो भवेत् ।
स्थितिरेव गतिश्चैव तस्या नैसर्गिकौ गुणौ ।।२।।

प्रभावयति चान्योऽन्यं पौरुषं संस्कृतिस्तथा ।
तयोरेव समायोगाद् राष्ट्रोत्कर्षः समृद्ध्यते ।।३।।

पुरुषार्थेन सम्पुष्टा संस्कृतिः सिद्धिसाधिनी ।
संस्कृतिश्च मनुष्यस्य गौरवं समुदाहृतम् ।।४।।

संस्कृतिः पौरुषेणैव विकसेदिति निश्चयः ।
सुसंस्कृतो मनुष्यो वै यशो ज्ञानं च विन्दति ।।५।।

इतिहासेन भावेन ज्ञानेन च बलेन च ।
व्यवस्थिता संस्कृतिस्तु नराणां दर्पणं स्मृतम् ।।६।।

अभिमान तथा पाखण्ड से रहित है तथा अपने और समाज के उत्कर्ष में संलग्न है, वही शिक्षक है। शीलसम्पन्न शिक्षक अपने शिष्यों के सहयोग से एवं अपने सांस्कृतिक सत्कार्यों से जनहित और संस्कृति को बढ़ाता है।।२८।।

शिक्षा के सम्बन्ध में "आचार्य नरेन्द्रदेव – जीवन और सिद्धान्त" अध्याय का अध्ययन लाभदायक होगा। इस छोटे से अध्याय में आचार्य नरेन्द्रदेव के शिक्षा सम्बन्धी विचारों की उन्हीं के शब्दों में व्याख्या की गयी है।

विकास के गुण तथा क्रिया एवं गति से सम्पन्न प्रकृति और मानव एक दूसरे को प्रभावित करता है।।१।। उन दोनों के सम्पर्क से संस्कृति जन्म लेती है। स्थिति और गति उसके स्वाभाविक गुण हैं।।२।। पौरुष और संस्कृति एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, इन दोनों के मेल से राष्ट्र का उत्कर्ष समृद्ध होता है।।३।। संस्कृति पुरुषार्थ से ही विकास को प्राप्त होती है। पुरुषार्थ से पुष्ट संस्कृति सिद्धि का साधन है।।४।। संस्कृति मनुष्य का गौरव है। सुसंस्कृत मनुष्य निश्चय ही यश और ज्ञान को प्राप्त करता है।।५।। इतिहास, भावना, ज्ञान तथा शक्ति से व्यवस्थित संस्कृति पुरुषों का दर्पण है।।६।।

उत्थापिता जीवनेन समाजेनैव निर्मिता ।
समाजं जीवनं चैव प्रभावयति संस्कृतिः ।।७।।

वृद्धिर्नैतिकमूल्यस्य सानन्दं जीवनं तथा ।
समोत्कर्षश्च सर्वेषां तस्या ध्येयमुदाहृतम् ।।८।।

प्राज्ञो नैतिकमूल्येन संस्कृतिं हि परीक्षते ।
सद्गुणैरेव सम्पन्ना कीर्त्यते हि सुसंस्कृतिः ।।९।।

मृदुता मुदिता मौनं समता सत्यसंयमौ ।
सौम्यत्वं सत्त्वसंसुद्धिः कीर्त्यते हि सुसंस्कृतिः ।।१०।।

सद्भावश्चैव सद्वृत्तिः स्वातन्त्र्यं सहकारिता ।
कर्तव्येऽभिरुचिश्चैव कीर्त्यते हि सुसंस्कृतिः ।।११।।

उदात्तचित्तं सद्बुद्धिरुदारचरितं तथा ।
कलासौन्दर्यवृद्धिश्च कीर्त्यते हि सुसंस्कृतिः ।।१२।।

श्रमिकक्षेमसंवृद्धिर्मानवानां हिते रतिः ।
रक्षणं निर्बलानां च कीर्त्यते हि सुसंस्कृतिः ।।१३।।

मानवं गौरवं न्यायः साहित्यं प्रगतिप्रियम् ।
ज्ञानविज्ञानवृद्धिश्च कीर्त्यते हि सुसंस्कृतिः ।।१४।।

उल्लासः प्रीतिहर्षौ च कारुण्यमथ मङ्गलम् ।
सहानुभूतिबन्धुत्वे कीर्त्यते हि सुसंस्कृतिः ।।१५।।

जीवन से प्रबुद्ध तथा समाज से निर्मित संस्कृति समाज तथा जीवन को प्रभावित करती है।।७।। नैतिक मूल्य की वृद्धि, आनन्दमय जीवन तथा सबका समोत्कर्ष उसका ध्येय है।।८।। लोकतन्त्र पर आश्रित राज्य, समता पर आश्रित व्यवस्था, लोककल्याण से सम्पन्न सार्वलौकिक जीवन, समतामूलक स्वतन्त्रता, अच्छे कार्यों में सहयोग, श्रमिकों के कल्याण की वृद्धि, मनुष्यों के हित में लगन, मनुष्यता, विश्वभावना से सम्पन्न देशबन्धुत्व, लोकन्याय पर आश्रित शौर्य निःसन्देह अच्छी संस्कृति कहलाती है।।९-११।। सामाजिकता, जनकल्याण सम्पन्न उदारता, सत्य पर आश्रित लोकसेवा से समन्वित सदाचार, नैतिकता से विभूषित उत्कृष्ट नागरिकता, सिद्धान्त पर आश्रित अच्छे कार्य, लोकहित-सम्पन्न सत्सङ्कल्प, विद्याचरण सम्पन्न प्रगतिशील जीवन, हितकारी पौरुष निःसन्देह अच्छी संस्कृति है।।१२-१४।। सौन्दर्य सम्पन्न कला, शील से विभूषित सौन्दर्य, सद्भावों से प्रेरित काव्य, प्रगतिशील संगीत, विवेक, विश्वकल्याण से सम्पन्न

स्वराज्यं समताराज्यं लोकार्थो लोकतन्त्रकम् ।
लोकनिष्ठा लोकशीलं कीर्त्यते हि सुसंस्कृतिः ।।१६।।

आर्जवं व्यवहारेषु विचारः प्रगतिप्रियः ।
तितिक्षा मतभेदेषु कीर्त्यते हि सुसंस्कृतिः ।।१७।।

लोभाधृतव्यवस्थातः संस्कृतिस्तु विनश्यति ।
[१]एको लोभो महाग्राहो लोभात् पापं प्रवर्तते।।१८।।

[२]लोभप्रभवमज्ञानं वृद्धं भूयः प्रवर्धते ।
[३]उभावेते समफलौ समदोषौ च निश्चितम् ।।१९।।

[४]लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परासुता ।
[५]कुलविद्यामदश्चैव रूपैश्वर्यमदस्तथा ।।२०।।

[६]सर्वभूतेष्वभिद्रोहः सर्वभूतेष्वसत्कृतिः ।
[७]हरणं परवित्तानां मिथ्यावेगश्च दुर्जयः ।।२१।।

[८]कुत्था विकत्था मात्सर्यं पापं दुष्करकारिता ।
[९]दम्भश्च मनसो वेगः सर्वभूतेष्वनार्जवम् ।।२२।।

ज्ञान एवं विज्ञान, विश्वास से सम्पन्न धैर्य, जनकल्याण से सम्पन्न सत्य, सौहार्द से सम्पन्न सौजन्य, कर्तव्य में दृढ़ निष्ठा, शील से सम्पन्न आमोद निःसन्देह अच्छी संस्कृति है।।१५-१७।। लोभ पर आश्रित संस्कृति समाज की उन्नति की घातक है। वह मानवता की भावना, नैतिकता तथा जगत् के हित को नष्ट करती है।।१८।। लोभ से अज्ञान प्रकट होता है तथा लोभ के बढ़ने से अज्ञान भी बढ़ता है। निश्चित ही लोभ और अज्ञान दोनों का एक फल और दोष हैं।।१९।। लोभ से क्रोध, अभिमान, उद्दण्डता, पराधीनता, कुल तथा विद्या का घमण्ड, रूप तथा ऐश्वर्य का मद, सबसे द्रोह, सबका तिरस्कार, दूसरों के धन का अपहरण, मिथ्यात्व का दुर्जय वेग, घृणा, बढ़-बढ़कर बात करना, ईर्ष्या, न करने योग्य कार्यों का करना तथा दम्भ, मन का वेग और सबके साथ कुटिलता का व्यवहार होता है।।२०-२२।। समता पर आश्रित, लोकहितकारी, मानवता के गुण

---

१. शान्ति. १५५.२२ २. शान्ति. १५९.१० ३. शान्ति. १५९.९
४. शान्ति. १५८.४ ५. शान्ति. १५८.६ ६. शान्ति. १५८.७
७. शान्ति. १५८.८, शान्ति. १५८.९ ८. शान्ति. १५८.१०
९. शान्ति. १५८.२५, शान्ति. १५८.८, शान्ति. १५८.९

साम्याधृता लोकहिता मानवत्वगुणान्विता ।
स्वातन्त्र्यभावसंयुक्ता लोकन्यायसमन्विता ।।२३।।

ज्ञानविज्ञानसम्पन्ना प्रगतिक्रान्तिदीपिता ।
संस्कृतिश्चैव सर्वेषां समोत्कर्षविवर्धनी ।।२४।।

साम्याधृता संस्कृतिर्हि जीवनोद्देश्यसाधिनी ।
राष्ट्रोत्थानं समोत्कर्षमानन्दं च समर्धयेत् ।।२५।।

साम्याधृता संस्कृतिर्हि लोकन्यायं समर्थयेत् ।
प्रतिष्ठापयते साम्यं स्वातन्त्र्यं बन्धुतां तथा ।।२६।।

साम्याधृता संस्कृतिर्हि हितं लोकस्य वर्धयेत् ।
विकासयति मानुष्यमानन्दं च विवर्धयेत् ।।२७।।

साम्याधृतां संस्कृतिं च पौरुषं लोकमङ्गलम् ।
न्यायाधृतं चरित्रं च सम्भावयति संस्कृतः ।।२८।।

परित्यज्य जडत्वं चान्यायं वैषम्यमेव च ।
प्रतिष्ठापयते साम्यं प्रगतिं च सुसंस्कृतः ।।३०।।

संस्कृतिः प्रगतिस्त्रोतो नैतिकत्वं समाधृतम् ।
प्रतिष्ठाप्य मनुष्यत्वं जगद्धितविवर्धनम् ।।३१।।

से युक्त, स्वतन्त्रता की भावना से युक्त, लोकन्याय से समन्वित, ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, प्रगतिशील, क्रान्ति की भावना से देदीप्यमान संस्कृति ही समोत्कर्ष को बढ़ाने वाली है।।२३-२४।। समता पर आधारित संस्कृति ही जीवन के उद्देश्य को सिद्ध करने वाली है, राष्ट्र के उत्कर्ष, समोत्थान तथा आनन्द को बढ़ाती है।।२५।। समता पर आधारित संस्कृति ही लोकन्याय को समृद्ध करने वाली है। वही समता, स्वतन्त्रता और बन्धुता को प्रतिष्ठित करती है।।२६।। संस्कृति के अच्छे गुणों से युक्त समता पर आधारित संस्कृति मनुष्यता को विकसित करती तथा आनन्द बढ़ाती है।।२७।। सुसंस्कृत पुरुष समता पर आधारित संस्कृति, पुरुषार्थ, लोकमंगल, न्याय पर आधारित चरित्र को सम्भव बनाता है।।२८।। सुसंस्कृत जन जड़ता (आलस्य और अज्ञान), अन्याय तथा विषमता को छोड़ कर समता और प्रगति को प्रतिष्ठापित करता है।।२९।। प्रगतिशील संस्कृति तथा समता पर आधारित नैतिकता मनुष्यता को प्रतिष्ठापित कर जगत् के हित को बढ़ाने वाली है।।३०।।

नैतिकत्वम्

नैतिकत्वं संस्कृतिश्च समलक्ष्यगुणान्विते ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।१।।
समाजेन समारब्धं प्रतिष्ठितसमर्थितम् ।
नैतिकत्वं समाजं वै प्रभावयति नित्यशः ।।२।।
बुद्धिभावसमायुक्तं सहकार्येण निर्मितम् ।
अनुरूपं स्वभावस्य देशकालप्रभावितम् ।।३।।
आदर्शेन सुसम्पन्नं जीवनोद्देश्यसाधनम् ।
नैतिकत्वं समाजस्य नृणां च दर्पणं स्मृतम् ।।४।।
स्वार्थाधृत्तात्तु सिद्धान्तान्नूनं स्वार्थः समर्थ्यते ।
विवर्धते च वैषम्यमन्यायः शोषणं तथा ।।५।।
गतिशीला नैतिकता क्रान्तिप्रियसमाधृता ।
विनाशयति वैषम्यं दमनं शोषणं तथा ।।६।।
प्रतिष्ठापयते न्यायं स्वातन्त्र्यं समतां तथा ।
राष्ट्रोत्थानं मनुष्यत्वं बन्धुत्वं सहकारिताम् ।।७।।

नैतिकता और संस्कृति दोनों ही समान लक्ष्य से युक्त हैं। इनमें से एक को भी सम्यक् रूप से (ठीक तौर पर) कार्यान्वित करने वाला दोनों के फल को प्राप्त कर लेता है।।१।। समाज से समारब्ध, प्रतिष्ठित तथा समर्थित नैतिकता समाज को निश्चय ही नित्य प्रभावित करती है।।२।।

नैतिक जीवन का जन्म और विकास समाज में होता है और वह सामाजिक परिस्थिति तथा आदर्शों से प्रभावित होता है। समाज की नैतिक व्यवस्था से सामाजिक विकास के स्तर को पहचाना जा सकता है।

नैतिकता की व्यवस्था भाव, काल, एवं विचारों पर स्थित है। निःसन्देह उनके अच्छे सम्बन्धों से मूल्यों का विकास होता है।।३।। बुद्धि और भाव मनुष्यों के प्राकृतिक गुण हैं। वे दोनों आदर्शों का सृजन करते हैं और स्थिति को प्रभावित करते हैं। वे दोनों नित्य काल और परिस्थिति से प्रभावित होते हैं और उनकी सृजनशक्ति काल और स्थिति से नियन्त्रित है।।४-५।। विवेक से समर्थित नैतिकता के सिद्धान्त अपनी शक्ति से विकसित होते और जीवन को प्रकाशित करते हैं, पर इन सिद्धान्तों का विकास व्यवस्था और काल से नियन्त्रित है और वे समता पर आश्रित व्यवस्था में ही पूरी तौर से विकसित होते हैं।।६-७।।

नैतिकव्यवहारेण भावशुद्धिं च भद्रताम् ।
उत्तरोत्तरमुत्कर्षं श्रेयश्च लभते नरः ।।८।।

प्राज्ञो नैतिकमूल्येन न्यायवृत्तिं विधारयेत् ।
संवर्धयेच्च लोकार्थं संस्कृतिं च सुखं समम् ।।९।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने सर्वोत्कर्षस्य हेतवे ।
शोषणस्य विनाशाय न्यायसङ्घर्षमावहेत् ।।१०।।

मानवो न्यायसङ्घर्षादात्मोत्कर्षं समश्नुते ।
विनाशयति वैषम्यं वर्धयेच्च जगद्धितम् ।।११।।

क्रान्त्या मत्या प्रगत्या च सम्पन्नं लक्ष्यमेव हि ।
मनुष्याणां समाजस्य समोत्कर्षं विवर्धयेत् ।।१२।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने न्यायभावगुणान्वितः ।
क्रान्त्या गत्या प्रगत्या च सिद्धान्तैः सुसमन्वितः ।।१३।।

नैतिकता के विकास में स्थिति, विवेक और भावना सबका महत्त्वपूर्ण योगदान है। नैतिकता भावना पर आधारित है। भावनाविहीन नैतिकता कोरा पाण्डित्य है, पर नैतिक नियमों की व्यवस्था और परिशुद्धि के लिये विवेक का योग आवश्यक है। प्रत्येक समाज की नैतिक व्यवस्था पर देश की सामाजिक परिस्थिति की छाप होती है। जीवन के आदर्शों से नैतिकता का गहरा सम्बन्ध है, वह आदर्शों का भण्डार है, जीवन को उनसे अनुप्राणित करती है और स्वयं उस पर आधारित है। नैतिक सिद्धान्त अपनी आन्तरिक शक्तियों से किसी हद तक विकसित होते हैं, पर उनके विकास में काल और व्यवस्था का गहरा हाथ है। काल के अनुकूल व्यवस्था के बदलने पर नैतिक विधान में भी काल और व्यवस्था के अनुकूल परिवर्तन होता है।

बुद्धि और भावों से युक्त सहयोग से निर्मित, स्वभाव के अनुरूप, देश-काल से प्रभावित, आदर्श से सम्पन्न, जीवन के उद्देश्य को साधने वाली नैतिकता समाज और पुरुषों का दर्पण है, अर्थात् नैतिकता से आदर्शों और उद्देश्यों का तथा विकास की स्थिति का पता चल सकता है।।८-९।। स्वार्थ पर आश्रित सिद्धान्तों से स्वार्थ ही समर्थित होता है और विषमता, अन्याय, शोषण और भय बढ़ता है।।१०।। क्रान्ति, मति और प्रगति से सम्पन्न लक्ष्य ही मनुष्यों और समाज के सर्वांगीण विकास को बढ़ाता है।।११।। मनुष्यता और श्रम पर आधारित क्रान्ति अनैतिकता, विषमता, दमन, शोषण और भय को नष्ट करती है तथा न्याय, स्वतन्त्रता, समता, राष्ट्रोत्थान, मनुष्यता, बन्धुता और सहकारिता को प्रतिष्ठित करती है।।१२-१३।। स्वार्थ और विषमता से सम्पन्न समाज

संवर्धयेच्च स्वातन्त्र्यं राष्ट्रोत्थानं जगद्धितम् ।
नैतिकोत्कर्षणं न्यायं समत्वमथ बन्धुताम् ।।१४।।

क्रान्त्या गत्या प्रगत्या च सिद्धान्तैः सुकृतेन च ।
कार्यनिष्ठः पोषयते चरित्रं जीवनं स्वयम् ।।१५।।

नैतिके कर्मणि रतो लोकन्यायं समर्थयेत् ।
स्थापयेल्लोकशीलं च सद्गुणान् विश्वबन्धुताम् ।।१६।।

नैतिके कर्मणि रतो वर्धयेच्च जगद्धितम् ।
समत्वं न्यायबन्धुत्वे कारुण्यमथ मङ्गलम् ।।१७।।

नैतिके कर्मणि रताः सत्कार्यं कुर्वतेऽनिशम् ।
आचरन्ति सदाचारं ते वै सत्पुरुषाः स्मृताः ।।१८।।

नैतिके कर्मणि रतो लोकन्यायं समर्थयेत् ।
स्थापयेल्लोकशीलं च सद्गुणान् विश्वबन्धुताम् ।।१९।।

नैतिके कर्मणि रतो वर्धयेच्च जगद्धितम् ।
समत्वं न्यायबन्धुत्वे कारुण्यमथ मङ्गलम् ।।२०।।

नैतिके कर्मणि रताः सत्कार्यं कुर्वतेऽनिशम् ।
आचरन्ति सदाचारं ते वै सत्पुरुषाः स्मृताः ।।२१।।

में न्यायशील व्यक्ति शोषण के विनाश के लिये न्याय्य संघर्ष करे तथा स्वार्थ, विषमता से रहित व्यवस्था स्थापित करे एवं मनुष्यता और समता पर आश्रित सिद्धान्तों को परिपुष्ट करे।।१४-१५।। मनुष्य न्याय्य संघर्ष से आत्मोत्कर्ष प्राप्त करता है। अपने चरित्र तथा जनकल्याण-भावना को उच्च करता है।।१६।। नैतिक व्यवहार से मनुष्य भावों की शुद्धि, भद्रता, उत्तरोत्तर उत्कर्ष और श्रेय को प्राप्त करता है।।१७।। नैतिक कार्यों में संलग्न व्यक्ति जनता के मंगल का विस्तार करता है, राष्ट्र की स्वतन्त्रता और सम्यक् उन्नति को बढ़ाता है एवं सत्य, सद्गुण, विश्वबन्धुता, समता, शील, लोकहित तथा मनुष्यता पर आधृत संस्कृति को प्रतिष्ठित करता है।।१८-१९।। जो व्यक्ति नैतिकता से उत्कृष्ट, मनुष्यता तथा न्याय से सम्पन्न एवं विश्वकल्याण में संलग्न है, वह पुरुषों में उत्तम है।।२०।। बुद्धिमान् नैतिक मूल्य से न्याय्य वृत्ति को पुष्ट करे एवं लोकहित तथा समता पर आधारित संस्कृति की उन्नति करे।।२१।।

ज्ञानम्

जगच्च जीवनं चैव परिणामगुणान्विते।
सम्पर्केन तयोरेव विचारस्योद्भवो भवेत्।।१।।
विचारा गतिशीला वै क्रियाशक्तिसमन्विताः।
प्रभावयन्ति सर्वेषां विकसन्ति च नित्यशः।।२।।
साम्यप्रगतिसंयुक्तं व्यवहारगुणान्वितम्।
समन्वितं जनहितैः सज्ज्ञानं परिकीर्तितम्।।३।।
शब्दशास्त्रं महारण्यं सज्ज्ञानं परमं स्मृतम्।
आत्मोद्देश्यसमायुक्तं सज्ज्ञानं साधयेत् सुधीः।।४।।
जीवनोत्थापितं ज्ञानं समाजेन प्रभावितम्।
समाजं जीवनं चैव प्रभावयति नित्यशः।।५।।
सामर्थ्येन प्रवृत्तेश्च सुधीर्ज्ञानं परीक्षते।
मन्तव्यस्य च संसिद्धिस्तस्य सद्गुण उच्यते।।६।।

संसार और जीवन दोनों विकास के गुण से युक्त हैं। इन दोनों के सम्पर्क से विचार पैदा होते हैं।।१।।

कुछ विद्वानों की सम्मति है कि जीवनशक्ति ही विचारों का आधार है, बाह्य जगत् तो विचार की कल्पना है। कुछ विद्वानों की राय में विचार एकमात्र संसार की छाया है। इन दोनों विचारों के विपरीत कुछ विद्वानों की राय में जीवनशक्ति और बाह्य जगत् दोनों के सक्रिय योग से विचार पैदा होते हैं। इसी मत को यहाँ प्रतिपादित किया गया है।

विचार गतिशील हैं, वे क्रियाशक्ति से समन्वित हैं, सबको विकसित, प्रभावित करते हैं और नित्य विकसित होते हैं।।२।। समता, प्रगति तथा व्यावहारिकता एवं जगत् के हित से युक्त ज्ञान सज्ज्ञान कहा जाता है।।३।। शब्दशास्त्र एक बड़ा जंगल है, सज्ज्ञान श्रेष्ठ है। अतः बुद्धिमान् जीवन के उद्देश्य से सम्बन्धित सज्ज्ञान को साधे, अर्थात् उसे प्राप्त करे तथा कार्यान्वित करे।।४।। जीवन से प्रबुद्ध तथा समाज से प्रभावित ज्ञान समाज और जीवन दोनों को नित्य प्रभावित करता है।।५।। बुद्धिमान् सामर्थ्य, अर्थात् क्षमता तथा रुझान से ज्ञान की परीक्षा करे। मन्तव्य की सिद्धि ही उसका सद्गुण है, अर्थात् वही ज्ञान ठीक है, जिसमें जीवन के मन्तव्य की सिद्धि की क्षमता है और जिसका झुकाव मन्तव्य के अनुकूल है।।६।। ज्ञान और जीवन एक दूसरे पर आश्रित हैं, क्रिया

ज्ञानं च जीवनं चैव स्थितमन्योन्यसंश्रयात्।
प्रभावयति चान्योन्यं क्रियाशक्तिगुणान्वितम्।।७।।

तयोरेव समायोगाद् राष्ट्रोत्थानं विवर्धते।
आत्मोत्कर्षश्च सानन्दं जीवनं श्रेय उत्तमम्।।८।।

कर्मणा रहितं ज्ञानं पङ्गुना सदृशं भवेत्।
एवं ज्ञानेन हीनं यत् कर्मान्धेन समं कृतम्।।९।।

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः।
न भावेन विना सिद्धिर्नास्त्यन्यायेन मङ्गलम्।।१०।।

ततः सम्यक् प्रयत्नेन सद्भावेन समन्वितः।
न्यायनिष्ठः कार्यशीलो ज्ञानवाँश्च भवेन्नरः।।११।।

[1]नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिं न्यायनिष्ठोऽधिगच्छति।।१२।।

ज्ञानेन पूयते शीलं वृत्तं ज्ञानेन वर्धते।
ततो ज्ञानं हि प्राप्तव्यमित्येव मुनिनोच्यते।।१३।।

आत्मोत्कर्षश्च कल्याणं शक्तिर्ज्ञानेन वर्धते।
ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानं वै साधयेत् सुधीः।।१४।।

और शक्ति के गुणों से युक्त दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। उन्हींके मेल से राष्ट्र का उत्थान, व्यक्तित्व का विकास, आनन्दमय जीवन और उत्तम श्रेय बढ़ता है।।७-८।। क्रियाहीन ज्ञान निरर्थक है, अज्ञान से पुरुष बद्ध है, भाव के बिना सिद्धि नहीं और अन्याय से मंगल नहीं। अतः मनुष्य समुचित प्रयत्न और सद्भावना से समन्वित कार्यशील न्यायनिष्ठ ज्ञानवान् बने।।९-१०।। इस संसार में ज्ञान के सदृश कोई पवित्र चीज नहीं है। न्यायनिष्ठ व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त कर उच्चतर शान्ति प्राप्त करता है।।११।। ज्ञान से आत्मोत्कर्ष, कल्याण और शक्ति बढ़ती है। अतः सब प्रयत्नों से बुद्धिमान् ज्ञान को साधे, अर्थात् उसे प्राप्त करे तथा कार्यान्वित करे।।१२।। शोषण से समन्वित तथा विषमता से सम्पन्न राष्ट्र में वर्गाधिपत्य द्वारा सच्चा ज्ञान विकृत हो जाता है, विचार वर्गसंघर्ष से युक्त होकर विग्रह को प्राप्त होते हैं, स्थिर स्वार्थों से विकृत सिद्धान्त स्थितिलक्षण होता है, अर्थात् स्थिरता का समर्थन करता है। वह विषमता, पाखण्ड और शोषण को

---

१. गीता ४.३८

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने शोषणैश्च समन्विते ।
वर्गाधिप्येन सज्ज्ञानं विक्रियामधिगच्छति ।।१५।।

वर्गसङ्घर्षसंयुक्ता विचारा विग्रहं गताः ।
स्थितिलक्षणज्ञानं वै स्थिरस्वार्थं समर्थयेत् ।।१६।।

साम्यप्रगतिसम्पन्नं ज्ञानं क्रान्तिं समर्थयेत् ।
पोषयेद् दलितस्वार्थं जनकल्याणमावहेत् ।।१७।।

ज्ञानिनो निरहङ्कारा: समा: कार्येषु निष्ठिता: ।
न्यायशीला जनहिता: सिद्धा निष्कामकर्मसु ।।१८।।

जीविकामानपूजार्थं यो ज्ञानं प्रतिपद्यते ।
यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते ।।१९।।

पुष्ट करता है। सभ्यता तथा प्रगति से समन्वित ज्ञान से क्रान्ति का समर्थन होता है। वह दलितों के स्वार्थ को और जनकल्याण को बढ़ाता है।।१३-१५।।

यूं तो विचारों में विभिन्नता जीवन का लक्षण है, विचारों के संघर्ष और समन्वय द्वारा ही ज्ञान का विकास होता है। पर विषमता से सम्पन्न समाज में विचारों की विभिन्नता वर्गसंघर्ष का रूप धारण कर लेती है। स्थिर स्वार्थों के समर्थक विचारक पुरानी व्यवस्था का समर्थन करते हैं, दलित वर्गों की प्रेरणाओं तथा माँगों को विवेकहीन बताते हैं, सत्ताधारी वर्ग के अधिकारों को न्यायसंगत बताते हैं। उसके समर्थन में प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं की दुहाई देते हैं। इनके विरोध में दूसरे विचारक प्रचलित व्यवस्था की कड़ी आलोचना करते हैं, उसे गतिहीन, विवेकशून्य तथा न्यायविरोधी बताते हैं और क्रान्तिकारी परिवर्तन का समर्थन करते हैं। नये विचारों, अनुभवों तथा भावनाओं द्वारा संचित ज्ञान का परिशोध प्रगति की प्रक्रिया है, उनके क्रियात्मक योग में ही सामाजिक ज्ञान का विकास निहित है।

ज्ञानी लोग निरहंकारी, कार्यनिष्ठ, समता का आचरण करने वाले, न्यायशील, विश्व का हित करने वाले तथा निष्काम कर्म का आचरण करते हैं।।१६।। जीविका तथा मान और पूजा प्राप्त करने के निमित्त जो पुरुष ज्ञान को प्रतिपादित करता है और उसके अनुष्ठान में यत्न नहीं करता, वह ज्ञानबन्धु कहलाता है।।१७।। विविध शास्त्रों का ज्ञाता बुद्धिमान् आचार्य कहलाता है, पर समत्व की भावना से रहित विद्वान् ज्ञानी नहीं कहलाते।।१८।। जो शास्त्रज्ञ लोक के ज्ञान को कम जानता है, वह मूर्ख के समान ही कहा जाता है। हितैषी पुरुष को लोकज्ञान प्राप्त करना ही चाहिये।।१९।। दम्भ और

प्राज्ञा विभिन्नशास्त्रज्ञा आचार्याः परिकीर्तिताः।
रहिताः साम्यभावेन ज्ञानिनस्ते न सम्मताः।।२०।।

शास्त्रज्ञो ह्यप्यलोकज्ञो मूर्खतुल्यः प्रकीर्तितः।
लोकज्ञानं तु प्राप्तव्यं पुरुषेण हितैषिणा।।२१।।

सत्यम्

सत्यं वै शाश्वतं लोके तस्य ज्ञानं तु दुष्करम्।
स्वानुभवेन तर्केण स्वल्पकं लभते सुधीः।।१।।

अहंकार से सम्पन्न तथा शील, चरित्र, लोककल्याण एवं क्रिया से शून्य पाण्डित्य हानिकारक है।।२०-२१।।

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने शास्त्रज्ञ ज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लोक-ज्ञान को प्राप्त करना भी आवश्यक बताया है। देश और काल का समुचित ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य सामाजिक कार्यों में सही योगदान कर सकता है। क्रियाहीन व्यक्ति तो गतिविहीन है। इसलिये कहा गया है—

पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः।।

(सूक्तिसुधाकर, पृ. २३७)

अर्थात् पढ़ने-पढ़ाने वाले तथा शास्त्रचिन्तन में लीन अन्य दूसरे व्यक्ति सब मूर्ख हैं। जो क्रियावान् है, वही वास्तव में पण्डित है।

प्राचीन ग्रन्थकारों ने ब्रह्मज्ञान की बड़े विस्तार से व्याख्या की है और बहुधा ज्ञान शब्द का प्रयोग ब्रह्मज्ञान के अर्थ में किया है। पर समाजशास्त्र की इस पुस्तक में ब्रह्मज्ञान की चर्चा या समीक्षा अप्रासंगिक होती, इसलिये उसकी कोई चर्चा यहाँ नहीं की गयी है, केवल मतिज्ञान तथा लोकज्ञान की व्याख्या ही की गयी है।

संसार में शाश्वत सत्य का ज्ञान दुष्कर है। बुद्धिमान् मनुष्य अनुभव और तर्क से थोड़ा ज्ञान ही प्राप्त कर पाता है।।१।।

शाश्वत ज्ञान है अथवा नहीं, इसके सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वान् शाश्वत सत्य के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, कुछ दूसरे विचारक शाश्वत सत्य को अस्वीकार करते हुए, सापेक्ष सत्य को मानते हैं। शाश्वत सत्य को मानने वाले विद्वान् भी यह स्वीकार करते हैं कि उसका पूर्ण ज्ञान दुष्कर या असम्भव है।

इतिहासेन सम्पन्नं विभिन्नभावसंयुतम्।
अल्पज्ञानेन संयुक्तमाग्रहेण प्रभावितम्।।२।।

यत्सत्यं तन्निर्विकारं नित्यत्वं नाधिगच्छति।
अन्तर्विरोधसम्पन्नं सापेक्ष्यमधिगच्छति।।३।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने सत्यं विक्रियतां व्रजेत्।
सिद्धान्तो वै समाजस्य सापेक्ष्यमधिगच्छति।।४।।

सत्यं चैवानृतमुभे लोकानावृत्य निष्ठतः।
अनृतं तु परित्यज्य सत्यमेव समाचरेत्।।५।।

अज्ञानं लोममोहौ च प्रमादो मत्सरस्तथा।
आलस्यं स्तब्धता भीतिर्दम्भद्वेषमदादयः।।६।।

अत्याचारो दुराचारो दमनं शोषणं तथा।
एकाधिप्यं तथाऽन्यायमनृतं परिकीर्तितम्।।७।।

समत्वं न्यायबन्धुत्वे स्वातन्त्र्यं सहकारिता।
मनुष्यत्वं च कर्तव्यं नैतिकत्वं सुसंस्कृतिः।।८।।

सौम्यत्वं सत्त्वसंशुद्धिः सदाचारो जगद्धितम्।
विवेको विनयो ज्ञानं सत्याकाराः प्रकीर्तिताः।।९।।

सत्यं सतां हितं पुंसां सत्यमेवाश्रयः सताम्।
सत्यं च सर्वथा श्रेष्ठं सत्यं सर्वत्र गौरवम्।।१०।।

इतिहास तथा विभिन्न भावों से युक्त, आग्रह से प्रभावित तथा अल्प ज्ञान से सम्पन्न जो सत्य है, वह निर्विकार और नित्य नहीं है। वह अन्तर्विरोध से सम्पन्न है तथा सापेक्ष है।।२-३।। विषमता से सम्पन्न राष्ट्र में सत्य विकृत हो जाता है, समाज के सिद्धान्त भी सापेक्ष हो जाते हैं।।४।। सत्य और असत्य दोनों ही लोक पर छाये हुए हैं। झूठ को छोड़कर सत्य का आचरण करे।।५।। अज्ञान, लोभ, मोह, असावधानी, ईर्ष्या, आलस्य, जड़ता, भय, दम्भ, द्वेष, मद, तृष्णा, अत्याचार, दुराचार, दमन, शोषण तथा तानाशाही और अन्याय झूठ हैं।।६-७।। समता, न्याय, बन्धुता, स्वतन्त्रता, सहकारिता, लोकसेवा, मनुष्यता, नैतिकता, शुभ संस्कृति, कर्तव्य, स्वभाव की शुद्धि, सदाचार, विश्वहित, विवेक, विनय तथा ज्ञान सत्य के आकार कहे जाते हैं।।८-९।। सत्य सत्पुरुषों का हित है, सत्य ही उनका आश्रय है, सत्य सर्वथा श्रेष्ठ है, सत्य प्रत्येक स्थान और हर समय में गौरव प्रदान करता है।।१०।। सत्य के समान ज्ञान नहीं, सत्य

नास्ति सत्यसमं ज्ञानं नास्ति सत्यसमं बलम्।
नास्ति सत्यसमं वृत्तं नास्ति सत्यसमं व्रतम्।।११।।

सत्यं वै लोकन्यायश्च समलक्ष्यगुणान्वितौ।
संस्थापनं च न्यायस्य सत्यस्य परमं कृतम्।।१२।।

[१]सत्ययोगः परा निष्ठा सत्यं हि परमा गतिः।
लोकात्मोत्कर्षकल्याणे सत्यस्य ध्येयमुच्यते।।१३।।

सत्यस्याचरणं श्रेष्ठं मानवानां परं तपः।
सत्यज्ञानसमायुक्त उत्कर्षं लभते ध्रुवम्।।१४।।

सत्यस्य पौरुषं साधु न सत्याद् विद्यते परम्।
तस्मात् सत्यं समाश्रित्य सर्वकर्माणि साधयेत्।।१५।।

[२]सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यस्याराधनं शुभम्।
यल्लोकहितमत्यन्तं तत्सत्यं मुनिनोच्यते।।१६।।

[३]अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक्सुभाषितम्।
तस्माद् मधुरवाक्येन तथ्यं पथ्यं वदेत् सदा।।१७।।

[४]अप्रियस्यापि पथ्यस्य परिणामः सुखावहः।
पथ्यमेव हि वक्तव्यं कर्तव्यं यत्नतोऽनिशम्।।१८।।

के समान कोई शक्ति नहीं, तथा सत्य के समान आचार नहीं, सत्य के समान कोई संकल्प नहीं।।११।। निश्चय ही लोकन्याय और सत्य समान लक्ष्य के गुण से युक्त हैं, न्याय की स्थापना सत्य का श्रेष्ठतम कार्य है।।१२।। सत्य-योग बड़ी निष्ठा है, सत्य ही सर्वोत्तम गति है। अपना तथा लोक का उत्कर्ष ही सत्य का ध्येय कहा जाता है।।१३।। सत्य का आचरण श्रेष्ठ है, मनुष्यों का श्रेष्ठ तप है। सत्य-योग से सम्पन्न निश्चित ही उत्कर्ष प्राप्त करता है।।१४।। सत्य का पुरुषार्थ उत्तम है, सत्य से श्रेष्ठ कोई चीज विद्यमान नहीं है, अतः सत्य का आश्रय लेकर सब कर्मों को साधे।।१५।। सत्य-वचन आनन्दप्रद हैं, सत्य की आराधना शुभ है। जिससे अत्यन्त लोकहित हो वही सत्य है, ऐसा मुनियों ने कहा है।।१६।। मधुर शब्दों में कही बात अनेक प्रकार से कल्याण करती है, अतः मधुर वाक्य से सदा तथ्य और पथ्य बोले।।१७।। अप्रिय पथ्य का परिणाम भी सुख देने वाला होता है, अतः यत्नपूर्वक निरन्तर पथ्य बोलना ही कर्तव्य है।।१८।। बात

---

१. शान्ति. १६१.५ २. शान्ति. २८७.२० ३. विदुर. २.७७

४. हितो. सुहृदु. १३५

[1]वचस्तत्र प्रयोक्तव्यं यत्रोक्तं लभते फलम्।
[2]उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने।।१९।।
[3]नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।
[4]न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।।२०।।
[5]नहि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः।
निराशां तु समुत्सार्य प्रतिज्ञां साधयेत् सुधीः।।२१।।
[6]न श्रेष्ठा वै महागाथा याऽनर्थपदसंहिता।
एकं वै वचनं श्रेष्ठं यत् श्रुत्वा हितमावहेत्।।२२।।
[7]युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
त्याज्यं युक्तविहीनं तु पण्डितैरपि पोषितम्।।२३।।

वहाँ कहनी चाहिये, जहाँ कहना फलदायक हो। जैसे तैसे लोगों को उपदेश नहीं देना चाहिये।।१९।। बिना पूछे किसी से कुछ न कहे, अन्याय से पूछने पर भी कुछ न कहे। जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, वह दूसरे के प्रति भी न करे।।२०।। सत्यवादी लोग झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते। निराशा को छोड़कर सुधी प्रतिज्ञा साधे, अर्थात् उसके अनुकूल आचरण करता हुआ उसे पूरा करे।।२१।। वह बड़ी गाथा श्रेष्ठ नहीं है, जो व्यर्थ श्लोकों का संग्रह है। वह एक वाक्य भी श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर हित प्राप्त हो।।२२।। बालक से भी युक्तियुक्त वचन ले लेना चाहिये, युक्ति से विहीन वाक्यों को पण्डितों द्वारा पुष्ट किये जाने पर भी छोड़ देना चाहिये।।२३।।

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने आध्यात्मिक सत्य तथा नैतिक सत्य दोनों की बड़ी प्रशंसा की है। आध्यात्मिक सत्य को ब्रह्मज्ञान के नाम से सम्बोधित किया गया है और उसके द्वारा परमानन्द की प्राप्ति बतायी गयी है। नैतिक सत्य से चित्त की शुद्धि, शील की अभिवृद्धि, जीवन का उत्कर्ष तथा सामाजिक शान्ति और अभ्युदय की सिद्धि होती है। मनुस्मृति, शान्तिपर्व आदि सामाजिक व्यवस्था से सम्बद्ध ग्रन्थों तथा प्रकरणों में नैतिक सत्य को ध्यान में रखते हुए सत्य की व्याख्या तथा प्रशंसा की गयी है। जहाँ आध्यात्मिक सत्य की व्याख्या अभिप्रेत थी, वहाँ ब्रह्मज्ञान या ज्ञान शब्द का प्रयोग किया गया है। समाजशास्त्र, विशेषतः राजनीति से सम्बद्ध इस पुस्तक में आध्यात्मिक सत्य

---

१. पंच. २ तन्त्र. ३४ २. पंच. २ तन्त्र. ४२१ ३. मनु. २.११०
४. विदुर. ७.७१ ५. वा. रा. ६.१०१.५३ ६. धम्मपद सहस्सवग्गो १-२
७. यो. वा.२.८.३

साहित्यम्

हितं लोकस्य माधुर्यं लालित्यं मञ्जुता कला ।
स्वातन्त्र्यं ज्ञानमानन्दः साहित्यस्य सुलक्षणम् ।।१।।

स्वान्तःसुखाय लोकार्थं दलितक्षेमहेतवे ।
प्रगतिप्रदसाहित्यं सर्जयन्ति विशारदाः ।।२।।

हितं यत्सर्वलोकानामात्मनश्च सुखावहम् ।
तादृक् सृजन्ति साहित्यं ये साहित्यकलाविदः ।।३।।

प्रकृतिं संस्कृतिं सत्यं सौन्दर्यमथ मङ्गलम् ।
उपाख्यानं च चारित्र्यं सर्जयन्ति विशारदाः ।।४।।

की व्याख्या अप्रासंगिक ही होती। इस पुस्तक के लेखक के लिये तो ब्रह्मज्ञान-सम्बन्धी विभिन्न विचारधाराओं की व्याख्या और समीक्षा अनधिकार चेष्टा भी होती। अतः इस पुस्तक में विशेषतः इस प्रकरण में नैतिक सत्य की ही व्याख्या की गयी है। जिन नैतिक मूल्यों को इस प्रकरण में सत्य के नाम से सम्बोधित किया गया है, उनमें से अधिकांश को प्राचीन विद्वानों और ग्रन्थकारों ने सत्य बताया है। अर्वाचीन नैतिक विज्ञान के आधार पर जिन नये सामाजिक मूल्यों को इस प्रकरण में सत्य कहा गया है, वे भी पुराने नैतिक मूल्यों के समरस हैं। यही बात अनृत या असत्य के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। सत्य की प्रशंसा में इस प्रकरण में जो कुछ कहा गया है, वह तो करीब करीब अक्षरशः प्राचीन ग्रन्थों से ही लिया गया है। सत्य के सन्दर्भ में जिस शील की चर्चा की गयी है, वह भी प्राचीन उपदेशों पर ही आधारित है। परिवर्तनशील संसार में सामाजिक परिस्थितियों के बदलने के साथ साथ सामाजिक व्यवस्था का भी रूप बदलता है तथा सत्य की नयी अभिव्यक्ति होती है और वह नया रूप धारण करता है। प्रगतिशील समाज में देश-काल के अनुरूप नये मूल्यों तथा विधि-विधानों का सृजन होता है। इसीलिये प्राचीन शास्त्रकारों ने युगधर्म के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की है।

लोकहित, माधुर्य, लालित्य, मंजुता, कला, स्वतन्त्रता, ज्ञान तथा आनन्द साहित्य के लक्षण हैं।।१।। जो अलंकार का विशेषज्ञ, सत्ययोग में लीन, रसों के साधने में प्रवीण, प्रगतिशील विद्वान्, विवेकी, काव्यशास्त्र का ज्ञाता, स्वतन्त्र, न्यायनिष्ठ, तथ्य का जानकार, देशकाल का जानकार, सदुद्देश्य से युक्त, लालित्य कला में सिद्ध, सब भावनाओं को व्यक्त करने में दक्ष, प्रतिभाशील कल्पना में प्रौढ़, सजग, प्रकृति का प्रेमी, बुद्धिमान्, मननशील, उदार, समझदार, तथा अध्ययनशील है, वही साहित्य-कला का

गुणसाधनसन्दक्षः कलासाहित्यकोविदः ।
प्रतिष्ठापयते यत्नात् शिवं सत्यं च सुन्दरम् ।।५।।

कलासाहित्ययोगेन हितं राष्ट्रस्य वर्धयेत् ।
अधिकारं मानवानां प्रतिष्ठां गमयेत् सुधीः ।।६।।

साहित्यशास्त्रनिपुणः कलाकौशलकोविदः ।
वृत्तं न्यायं प्रतिष्ठाप्य वर्धयेद् लोकमङ्गलम् ।।७।।

राष्ट्रोत्कर्षो विश्वशान्तिर्वर्धनीयौ प्रयत्नतः ।
हितं मानं च दीनानां रक्षितव्ये विशारदैः ।।८।।

लोकन्यायो मनुष्यत्वं स्वातन्त्र्यं लोकतन्त्रकम् ।
गुणैरेतैः समायुक्तं साहित्यं प्रगतिप्रियम् ।।९।।

साहित्यशास्त्रनिपुणो देशकालविशारदः ।
मानवानां मानवत्वप्रतिष्ठापनमाचरेत् ।।१०।।

योऽलङ्कारविशेषज्ञः सत्ययोगपरायणः ।
रससाधनसन्दक्षः काम्यकाव्यकलान्वितः ।।११।।

विवेकी काव्यकुशलः स्वतन्त्रो न्यायनिष्ठितः ।
तत्त्वज्ञो देशकालज्ञः सदुद्देश्यसमन्वितः ।।१२।।

लालित्ययोगसंसिद्धः सर्वभावप्रकाशकः ।
प्रतिभाकल्पनाप्रौढः सचेताः प्रकृतिप्रियः ।।१३।।

पण्डित है।।२-५।। जिसमें सब लोगों का हित हो तथा अपने को सुख मिले, उस साहित्य की रचना साहित्य-कला के पण्डित करते हैं।।६।। विद्वान् प्रकृति, संस्कृति, सत्य, सौन्दर्य, आनन्द, कथा तथा चरित्र की रचना करते हैं।।७।। गुणों के साधने में प्रवीण, कला तथा साहित्य के पण्डित, यत्नपूर्वक सत्य, शिव और सुन्दर को प्रतिष्ठित करते हैं।।८।। विद्वान् अपने सुख, लोकहित तथा दलितों के क्षेम के निमित्त प्रगतिशील साहित्य की रचना करते हैं।।९।। लोकन्याय, मानवता, स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र इन गुणों से युक्त साहित्य प्रगतिशील साहित्य है।।१०।। प्रगतिशील साहित्य न्यायनिष्ठा, प्रतिभा, उदारता, मनुष्यता, कोमलता तथा समता की भावना को पुष्ट करता है, दम्भ, अज्ञान और प्रतिक्रियावादिता को रोकता है एवं सत्य, आनन्द और सहकारिता को प्रतिष्ठित करता है।।११-१२।। तथ्य के ज्ञाता, देश-काल के जानकार प्रगतिशील विद्वान् प्राचीन तथा अर्वाचीन राष्ट्र-साहित्य का ठीक तौर पर अध्ययन करे, तथ्यहीन

सुधीर्मननशीलश्च सूदारचरितस्तथा।
प्राज्ञोऽध्ययनशीलश्च स साहित्यविशारदः।।१४।।

प्रगतिप्रदसाहित्यं पुष्णाति न्यायनिष्ठताम्।
प्रीतिमौदार्यमानुष्ये मार्दवं साम्यभावनाम्।।१५।।

प्रतिरोधयते दम्भमज्ञानं प्रतिगामिताम्।
प्रतिष्ठापयते सत्यमानन्दं सहकारिताम्।।१६।।

तत्त्वज्ञो देशकालज्ञः प्रगतिप्रदपण्डितः।
अतीतं राष्ट्रसाहित्यं वर्तमानमनुशीलयेत्।।१७।।

तत्त्वहीनं परित्यज्य प्रगतिदं समारक्षेत्।
कलासाहित्ययोगेन भविष्यं साधयेच्छुभम्।।१८।।

राष्ट्रोत्कर्षो विश्वशान्तिर्वर्धनीयौ प्रयत्नतः।
हितं मानं च दीनानां रक्षितव्ये विशारदैः।।१९।।

प्रगतिप्रदकाव्येन हितं राष्ट्रस्य वर्धयेत्।
अधिकारं मानवानां प्रतिष्ठां गमयेत् सुधीः।।२०।।

कलासाहित्यसंदक्षः स्वातन्त्र्यं लोकतन्त्रकम्।
सदाचारं प्रतिष्ठाप्य वर्धयेद् लोकमङ्गलम्।।२१।।

प्राज्ञः प्रगतिशीलो वै सेवयेत् पूर्णनिष्ठया।
कलासाहित्यसौन्दर्यं शिवं मानवपुष्टिदम्।।२२।।

को छोड़कर प्रगतिशील अंशो की समुचित रक्षा करे तथा कला और साहित्य के प्रयोग से शुभ भविष्य को सम्पन्न करे।।१३-१४।। समीक्षाशास्त्र में निपुण, कला तथा साहित्य का पण्डित, संसार के साहित्यों की ठीक तौर पर यत्नपूर्वक समीक्षा कर, राष्ट्रकल्याण के निमित्त राष्ट के साहित्य एवं संस्कृति में सब प्रगतिशील तथ्यों का समावेश करे।।१५-१६।। विद्वानों से राष्ट्र का उत्थान तथा विश्व की शान्ति यत्नपूर्वक बढ़ायी जानी चाहिये तथा दीनों के हित एवं मान की रक्षा की जानी चाहिये।।१७।। बुद्धिमान् प्रगतिशील काव्य से राष्ट्र का हित बढ़ाये तथा मनुष्यों के अधिकारों को प्रतिष्ठित करे।।१८।। कला और साहित्य में प्रवीण स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, सदाचार को प्रतिष्ठित कर लोकमंगल को बढ़ाये।।१९।। प्रगतिशील विद्वान् पूर्ण विश्वास एवं आस्था के साथ कला, साहित्य, सौन्दर्य तथा मानवमात्र के कल्याण का अनुष्ठान करते हैं।।२०।। अच्छे समाज की पुष्टि के लिये, संस्कृति की समुन्नति के लिये, पुरुषार्थ की वृद्धि के लिये, सबमें सौहार्द

समीक्षाशास्त्रसंदक्षः कलासाहित्यकोविदः ।
साहित्यानि च विश्वस्य कामं संवीक्ष्य यत्नतः ।।२३।।

सर्वं प्रगतिदं तत्त्वं राष्ट्रकल्याणहेतवे ।
समावेशयते राष्ट्रसाहित्ये संस्कृतौ तथा ।।२४।।

पुष्ट्यर्थं मानवत्वस्य समोत्कर्षाय संस्कृतेः ।
पुरुषार्थस्य वृद्ध्यर्थं सर्वमङ्गलसिद्धये ।।२५।।

प्रगतिप्रदसाहित्यं सुसंस्कृतिसमन्वितम् ।
प्रीतिहर्षाम्बुसम्पन्नं सत्यसौन्दर्यसंयुतम् ।।२६।।

प्रकृत्यानन्दसंयुक्तं सच्चारित्र्यसुशोभितम् ।
प्रेरितं शुभलक्ष्येण सर्जयेद्धि सुसंस्कृतः ।।२७।।

सद्गुणाः

त्यागः कर्मफलन्यासः कार्यं कर्म तपः स्मृतम् ।
लोकार्थः परमार्थो वै [१]कृपणाः फलहेतवः ।।१।।

नास्ति साम्यसमं ज्ञानं नास्ति ज्ञानसमं बलम् ।
नास्ति सत्यसमं शीलं नास्ति न्यायसमं तपः ।।२।।

नास्ति विद्यासमो बन्धुर्नास्ति सेवासमं कृतम् ।
नास्ति प्रज्ञासमा शक्तिर्नास्ति शीलसमो गुणः ।।३।।

दाक्ष्यं कर्मसु कौशल्यमुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
प्रज्ञा निःश्रेयसी लोके सौख्यमूलं पराक्रमः ।।४।।

की सिद्धि के लिये अच्छी संस्कृति से समन्वित, प्रेम और हर्ष के जल से सिंचित, सत्य और सुन्दरता से युक्त, प्रकृति के आनन्द से संयुक्त, अच्छे चरित्र से सुशोभित, शुभ उद्देश्य से प्रेरित प्रगतिशील साहित्य की सुसंस्कृत रचना करे।।२१-२५।।

कर्मफल का उत्सर्ग ही त्याग है, कर्तव्य कर्म तप है । लोकहित श्रेष्ठ लक्ष्य है, फल के इच्छुक कृपण हैं।।१।। समता के समान ज्ञान नहीं, ज्ञान के समान बल नहीं, सत्य के समान शील नहीं, न्याय के समान तप नहीं।।२।। विद्या के समान बन्धु नहीं, सेवा के समान काम नहीं, प्रज्ञा के समान शक्ति नहीं, शील के समान गुण नहीं।।३।। कर्म में कुशलता ही दक्षता है, उद्यम ही पौरुष है, प्रज्ञा संसार में कल्याणकारी है, पराक्रम

---

१. गीता. २.४९

ज्ञानं विवेको वै दत्ते शीलं दत्ते च भद्रताम् ।
सेवा ददाति विनयं हितं लोकस्य मङ्गलम् ।।५।।

शान्तिं ददाति करुणा समता सिद्धिसाधिनी ।
पौरुषं शक्तिदं नित्यं सत्ये च न्यायनिष्ठता ।।६।।

कर्म शुद्ध्यति न्यायेन [1]मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
ईक्षया शीलसंशुद्धि[2]र्बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ।।७।।

शीलं प्रधानं पुरुषे [3]न्यायेन विधृतं जगत् ।
अनुद्वेगः श्रियो मूलं वृणुयात् सज्जनः सदा ।।८।।

प्रज्ञा प्रतिष्ठा लोकानां सत्ये कल्याणमश्नुते ।
प्रज्ञा सत्यानुगा यस्य यशो मानं स विन्दति ।।९।।

सर्वेषां भूषणं ज्ञानं शीलं शौर्यं पराक्रमः ।
स्वातन्त्र्यं साम्यबन्धुत्वे लोकार्थो न्यायनिष्ठता ।।१०।।

समत्वं प्रीतिकारुण्ये मानवत्वमनुग्रहम् ।
लोकज्ञानं समोत्कर्षो मनुष्याणां परा गुणाः ।।११।।

[4]गुणैर्गौरवमायाति न महत्यापि सम्पदा ।
गुणैर्गुरुत्वमायाति[5] गुणैर्ज्येष्ठत्वमुच्यते ।।१२।।

सुख का मूल है।।४।। विवेक ज्ञान देता है, शील भद्रता देता है, सेवा सौजन्य, लोकहित और मंगल देती है।।५।। शान्ति करुणा देती है, समता सिद्धि का साधन करने वाली है। पौरुष नित्य शक्ति देने वाला है, सत्य में न्याय स्थित है।।६।। कर्म न्याय से शुद्ध होता है, मन सत्य से शुद्ध होता है, विवेक से शील की शुद्धि होती है, बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।।७।। पुरुष में शील प्रधान है, न्याय से जगत् संधारित है, क्षोभ तथा उत्तेजना का अभाव ऐश्वर्य का मूल है—ये बातें सज्जन सदा कहते हैं।।८।। प्रज्ञा में लोगों की प्रतिष्ठा है, सत्य में कल्याण है। जिसकी बुद्धि सत्य का अनुसरण करती है, वह यश और मान प्राप्त करता है।।९।। ज्ञान, शील, शौर्य, पराक्रम, स्वतन्त्रता, समता, बन्धुता, लोकहित तथा न्यायनिष्ठा सबका भूषण है।।१०।। समता, प्रीति, करुणा, मानवता, उपकार, लोकज्ञान, समोत्कर्ष मनुष्य के श्रेष्ठ सद्गुण हैं।।११।। सौम्यता, स्वभाव की शुद्धि, सहनशीलता, मृदुता, बल, सद्भावना, सद्वृत्ति

---

१. मनु. ५.२०९ २. मनु. ५.२०९ ३. विदुर. २.४८
४. शार्ङ्गधर. ५. शार्ङ्गधर.

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः ।
मानवः सर्वसंसारे सद्गुणैः पद्यते यशः ।।१३।।
गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
प्राप्नोति गुणसम्पन्नः शान्तिं सिद्धिं यशो बलम् ।।१४।।
गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः ।
यदि सन्ति गुणाः पुंसां विकसन्त्येव वै स्वयम् ।।१५।।
परैः प्रोक्ता गुणा यस्य निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ।
न सुखं न च सौभाग्यं स्वयं स्वगुणवर्णने ।।१६।।
वैदुष्यं श्रमिकत्वं च स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रिते ।
सच्चारत्र्यसमायोगस्तयोर्भूयः समुत्तमम् ।।१७।।
सौम्यत्वं सत्त्वसंशुद्धिस्तितिक्षा मार्दवं बलम् ।
सद्भावश्चैव सद्वृत्तिः सौजन्यं सद्गुणाः स्मृताः ।।१८।।
स्वातन्त्र्यं न्यायनिष्ठत्वं विद्या शीलं पराक्रमः ।
सहकार्यं समोत्कर्षः पौरुषं प्रतिपद्यते ।।१९।।

प्रेमन्

नरः प्रेमविहीनो वै नैराश्येन समावृतः ।
आनन्दरहितो नित्यं दुःखं जीवति जीवनम् ।।१।।

तथा सौजन्य सद्गुण कहे जाते हैं।।१२।। शिष्टाचार, सदाचार, न्यायशील दृढ़ संकल्प, उदारता, विवेक संयम कहलाता है।।१३।। चिन्तन तथा मनन मौन के लक्षण हैं। सब शक्तियों का साथ साथ उत्थान समोत्कर्ष कहा जाता है।।१४।। जो निराशा और व्यग्रता से मुक्त हो, शान्त हो तथा विवेक से युक्त हो, मन की उस स्थिति को सौम्य परिस्थिति कहते हैं।।१५।। समान लक्ष्य के गुण से युक्त, परस्पर हित के लिये एक दूसरे पर आश्रित काम सहकार्य कहाता है।।१६।। गुणों में यत्न करना चाहिये, आटोप (हेकड़ी तथा घमण्ड) से क्या लाभ। गुणसम्पन्न मनुष्य शान्ति, शील, यश तथा बल प्राप्त करता है।।१७।। गुणों से, न कि बड़ी सम्पत्ति से, गौरव प्राप्त होता है, गुणों से गुरुत्व प्राप्त होता है, गुणों से ज्येष्ठता प्राप्त होती है।।१८।। गुणों का सब जगह आदर होता है, पितृवंश बेकार है। यदि पुरुषों में गुण होते हैं, तो वे निश्चय ही विकसित होते हैं।।१९।।

प्रेम से रहित, निराशा से घिरा हुआ तथा आनन्द से रहित व्यक्ति नित्य दुःखमय जीवन बिताता है।।१।। आनन्द तथा प्रेम से सम्पन्न, धृति और उल्लास से युक्त

आनन्दप्रेमसम्पन्नो धृत्युल्लाससमन्वितः।
कर्तव्यकर्मसंलग्नः सुखं जीवति जीवनम्।।२।।

देशप्रेम परा निष्ठा देशभक्तिः परं व्रतम्।
देशसेवां च कुर्वन्ति निष्कामा देशवत्सलाः।।३।।

प्रेमा च मानवत्वं च स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात्।
तयोरेव सुसम्बन्धो विकासयति जीवनम्।।४।।

प्रेमा चैव समत्वं च स्थिते ह्यन्योन्यसंश्रयात्।
सुविकासस्तयोरेव सम्पर्कात् सम्भविष्यति।।५।।

राष्ट्रे वैषम्यसम्पन्ने दम्भद्वेषसमावृते।
अधिपतित्वभावेन प्रेमा विक्रियतां व्रजेत्।।६।।

प्रेमानन्दस्य संस्रोत आनन्दो जीवनं स्मृतम्।
आनन्दाय च सर्वेषां प्रयत्नं कुरुते सुधीः।।७।।

स्वगुणैः सहयोगेन ह्यानन्दं सम्प्रवर्धयेत्।
स्थापयेत् प्रेमबन्धुत्वे सानन्दं जीवनं तथा।।८।।

तथा कर्तव्य कर्म में लीन व्यक्ति शुभ जीवन बिताता है।।२।। देशप्रेम उत्तम निष्ठा है, देशभक्ति श्रेष्ठ व्रत है। देशभक्त स्वार्थ की कामना से रहित हो देशसेवा करते हैं।।३।। प्रेम और मानवता एक दूसरे पर आश्रित हैं। उनके अच्छे सम्बन्ध ही जीवन को विकसित करते हैं।।४।। प्रेम और समता भी एक दूसरे पर आश्रित हैं। उन दोनों के सम्पर्क से अच्छा विकास सम्भव होता है।।५।।

समता और मानवता का सच्चे प्रेम से गहरा सम्बन्ध है। प्रेम तो समता और मानवता का गुण है। समता और मानवता से अनुप्राणित व्यक्ति सबमें मनुष्यता के दर्शन कर सबसे समता का व्यवहार करता है तथा प्रेम में उसकी सद्भावना की अभिव्यक्ति होती है। यही सच्चा प्रेम है। समता और मानवता के बिना मानवमात्र से गाढ़ प्रेम असम्भव है।

विषमता से सम्पन्न, दम्भ और द्वेष से आच्छादित राष्ट्र में आधिपत्य की भावना से प्रेम विकृत हो जाता है।।६।। प्रेम आनन्द का स्रोत है। आनन्द ही जीवन कहलाता है। बुद्धिमान् सबके आनन्द के निमित्त प्रयत्न करता है।।७।। अपने गुणों और सहयोग से आनन्द को बढ़ाया जाय, प्रेम तथा बन्धुता एवं आनन्दमय जीवन की स्थापना की

श्रद्धाप्रेमसमायुक्त आशालक्ष्यसमन्वितः ।
श्रद्धया साधयेल्लक्ष्यं वर्धयेत् प्रेममङ्गलम् ।।९।।
प्रेमा चैव परो भावो मानवानां च भूषणम् ।
प्रेम्णा वै सम्प्रवर्धन्ते शिवं सौख्यं च सुन्दरम् ।।१०।।
प्रवीणः प्रीणनः प्राज्ञः प्रियङ्करप्रियंवदः ।
प्रतिष्ठापयते प्रेमप्रवृद्धिं प्रीतिपूर्वकम् ।।११।।

जाय।।८।। श्रद्धा, प्रेम, आशा और उद्देश्य से सम्पन्न व्यक्ति श्रद्धा से उद्देश्य का साधन करे तथा प्रेम और मंगल को बढ़ाये।।९।। प्रेम ही उत्तम भाव है, मनुष्यों का भूषण है। प्रेम से कल्याण सुख और भद्रता बढ़ती है।।१०।। कुशल, सन्तुष्ट, समझदार, स्नेही, प्रिय बोलने वाला व्यक्ति प्रेम तथा समृद्धि को प्रेमपूर्वक बढ़ाता है।।११।।

आज के शृंगारिक कलाकार, अध्यात्मज्ञानी, समाजवैज्ञानिक आदि सभी विद्वानों ने जीवन में प्रेम के महत्त्व को स्वीकार करते हुए अपनी रचनाओं में अपने अपने ढंग पर उसकी अभिव्यक्ति की है। ये सब कृतियां विनोद और आनन्द का स्रोत हैं। इनमें से बहुत सी कृतियाँ तो जीवनोत्कर्ष की अभिवृद्धि की साधक हैं। भारतीय विद्वानों ने प्रेम को परमानन्द का आधार स्वीकार करते हुए विशुद्ध प्रेम से अनुप्राणित जीवन को ही उत्कृष्ट जीवन बताया है। स्वामी रामतीर्थ जी ने कहा है कि विधानों का एकमात्र विधान प्रेम है। प्रेम में निवास करना ही अपने प्रति सच्चा रहना है... विषयवासना-हीन प्रेम ही आध्यात्मिक विकास है। वह एक ऐसी अनिर्वचनीय समता दिलाने वाली अवस्था है, जहाँ माधुर्य, मौज और लापरवाही अपने आप फूट निकलती है। (देखें—रामहृदय) स्वामी विवेकानन्द का भी उपदेश था कि प्रेम की सर्वशक्तिमत्ता पर विश्वास करो। उनका कहना था कि विकास ही जीवन और संकोच ही मृत्यु है। प्रेम ही विकास और स्वार्थता संकोच है। इसलिये प्रेम ही जीवन का मूल मन्त्र है, निःस्वार्थ प्रेम ही जीवन का रहस्य है (विवेकानन्द)। समता तथा प्रेम के पारस्परिक सम्बन्ध पर ध्यान आकृष्ट करते हुए स्वामी रामतीर्थ कहते हैं कि प्रेम में न छुटाई है, न बड़ाई, न ऊँचाई है, न निचाई। प्रेम का अर्थ है व्यवहार में अपने पड़ोसियों के साथ, उन लोगों के साथ जिनसे आप मिलते-जुलते हैं, एकता और अभेदता का अनुभव करना। (रामहृदय)। महात्मा गाँधी जी के विचार में प्रेमतत्त्व ही संसार पर शासन करता है, वह कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर होता है। उनका उपदेश था हमें प्रेम का क्षेत्र घर से गाँव भर में, गाँव

करुणा

मैत्रीभावसमायुक्ता निष्कामत्वगुणान्विता ।
करुणा साम्यसम्पन्ना मानवानां महानिधिः ।।१।।

दीनदुःखद्रवीभूतः सन्तप्तः परपीडया ।
दीनानां सेवको नित्यं करुणानिधिरुच्यते ।।२।।

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
करुणानां स्वभावोऽयं गुणैरेतैः सुशोभितम् ।।३।।

करुणः साम्यसंयुक्तः सन्तप्तो हीनपीडया ।
सेवाकार्येषु संलग्नो मानवः परमो मतः ।।४।।

करुणान्यायसम्पन्नो जनकल्याणतत्परः ।
सन्तप्तो दीनदुःखेन पीडितं सेवतेऽनिशम् ।।५।।

नरो न्यायसमायुक्तः करुणामृतसम्भृतः ।
न्यायात् सत्यं समारक्षेत् कारुण्याद् हितमाचरेत् ।।६।।

करुणश्चरति स्नेहं मित्रभावेन वर्तते ।
कल्याणं भजते नित्यं हितं सर्वस्य सेवते ।।७।।

से जिले भर में, जिले से प्रान्त और प्रान्त से देश भर में फैला कर उसे सारे विश्व के लिये विस्तृत बना देना चाहिये।

मैत्रीभाव तथा निष्कामता के गुणों से युक्त एवं समता से सम्पन्न करुणा मनुष्यों की बड़ी निधि है।।१।। दीनों के दुःख से द्रवीभूत, दूसरों की पीड़ा से सन्तप्त, सदा दीन व्यक्तियों का सेवक करुणानिधि कहलाता है।।२।। उपकार करना, प्रिय बोलना तथा अकृत्रिम स्नेह करना, यह करुण मनुष्यों का स्वभाव है, वह इन गुणों से सुशोभित है।।३।। समता से युक्त, दीनों की पीड़ा से सन्तप्त एवं सेवाकार्यों में संलग्न करुण व्यक्ति उत्तम मनुष्य है।।४।। करुणा तथा न्याय से सम्पन्न, जनकल्याण में तत्पर तथा दीनों के दुःख से सन्तप्त पुरुष पीड़ित की निरन्तर सेवा करता है।।५।। न्याय से युक्त, करुणा के अमृत से सम्पन्न व्यक्ति न्याय से सत्य की रक्षा करे तथा करुणा से सबका हित करे।।६।। करुण व्यक्ति स्नेह करता है, मित्रभाव से बर्ताव करता है, नित्य कल्याण की आराधना करता है तथा सबके हित का अनुष्ठान करता है।।७।। बन्धुता तथा समता

युक्तो बन्धुत्वसाम्येन मानवः करुणान्वितः।
सततं सेवते सर्वं सङ्कष्टेनापराजितः ।।८।।
नराः कारुण्यसम्पन्नाः क्षेममिच्छन्ति सर्वदा।
सेवाकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते ।।९।।
सन्तापो विकलाङ्गेन बन्धुबान्धवपीडया।
क्षतिः साधनशक्तीनां दीनत्वं समुदाहृतम् ।।१०।।
दीनत्वेन विनिर्मुक्तिः सामर्थ्यं सर्वकर्मसु।
मनुष्यत्वानुभूतिश्च दीनसेवार्थमुच्यते ।।११।।
क्षतिसन्तापसंयुक्तो दीनः प्राप्नोति सेवया।
सौविध्यं लोकयात्रायै समोत्कर्षाय साधनम् ।।१२।।
दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तिं कारुण्यं शान्तिभद्रताम्।
प्राप्नोति मानवत्वं च दीनानां सेवया नरः ।।१३।।

से युक्त, करुणा में लीन मनुष्य संकटों से परास्त हुए बिना सबकी निरन्तर सेवा करता है।। ८।। करुणा से सम्पन्न व्यक्ति सदा क्षेम की इच्छा करते हैं, सेवा के कामों में सन्तुष्ट रहते हैं तथा कल्याणकारी काम करते हैं।।९।। विकलांग से या बन्धु-बान्धव की पीड़ा से सन्ताप, साधन और शक्ति की न्यूनता (कमी) दीनता होती है।।१०।। दीनता से छुटकारा, सब कामों में समर्थता (क्षमता), मानवता की अनुभूति दीनसेवा का अर्थ है, अर्थात् दीनों की सेवा का तात्पर्य यही है कि दीनपुरुषों की दीनता दूर हो, उन्हें अपने मानव-जीवन के महत्त्व का अनुभव हो और उनमें काम करने की क्षमता आये।।११।। न्यूनता और सन्ताप से युक्त दीन पुरुष सेवा से जीवन निर्वाह की सुविधा तथा उन्नति के लिये साधन प्राप्त करता है।।१२।। दीनों की सेवा से व्यक्ति दम्भ और अहंकार से छुटकारा तथा करुणा, शान्ति, भद्रता एवं मानवता प्राप्त करता है।।१३।।

प्रेम की तरह करुणा भी मानव की सहज प्रवृत्ति है। दीन-दुःखियों के प्रति प्रेम भरी सद्भावना तथा उनकी निःस्वार्थ सेवा ही करुणा का मूल मन्त्र है। समता और मैत्री उसके प्राण है। वही करुणा सच्ची है, वही सेवक में मनुष्यत्व को विकसित कर सकती है, जो सेवापात्रों से उसकी आत्मीयता प्रतिष्ठित करे और सहज भाव से उनकी सेवा के लिये इसे प्रेरित करे। सच्ची करुणा में सेवक तथा सेवापात्र का भेद मिट जाता है, स्वार्थ और ऊँच-नीच की क्षुद्र भावनाएँ विलीन हो जाती हैं, सारा जीवन प्रेम से अनुप्राणित तथा सेवा में लीन हो जाता है। ऐसी करुणा अवश्य ही जगद्वन्द्य है, सम-समाज में भी उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पर समता, मैत्री तथा निःस्वार्थ भावना से रहित दया भावना का सम-समाज में कोई स्थान नहीं।

दानम्

दलितानां च दीनानां हिते लोकहिते तथा ।
दीयते यत्फलं त्यक्त्वा तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।।१।।

सत्कारमानपूजार्थं प्रतिलाभार्थमेव च ।
दीयते द्वेषरागाभ्यां तद्दानं राजसं स्मृतम् ।।२।।

दानमश्रद्धया दत्तमपात्रेऽदेशकालयोः ।
लोकस्योत्सादनार्थं वा तद्दानं तामसं स्मृतम् ।।३।।

[१]उचितं तु व्ययं काले नरः कुर्यान्न चान्यथा ।
[२]अतिदानेन दारिद्र्यं तिरस्कारोऽतिलोभतः ।।४।।

देशकालौ सम्परीक्ष्य सुपात्रे दानमर्हति ।
कुपात्रेभ्यो धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत् ।।५।।

दीनहीनहितार्थाय समाजोत्कर्षहेतवे ।
दानं दत्ते निराकारो दानपुण्यमनाश्रितः ।।६।।

सङ्कटानां निरोधाय जनकल्याणहेतवे ।
सहकारे कृतं दानं सात्त्विकं स्मृतमुत्तमम् ।।७।।

दलितों और दीनों के हित में तथा लोकहित में स्वहित को छोड़ कर जो दिया जाता है, वह सात्त्विक दान है।।१।। सत्कार, मान तथा पूजा कराने के उद्देश्य से तथा बदले में लाभ उठाने के लिये द्वेष तथा राग से जो दिया जाता है, वह राजसिक दान है।।२।। बिना श्रद्धा के अथवा कुपात्र को अयोग्य देश या अयोग्य काल में या लोगों को नाश करने के लिये जो दिया जाता है, वह तामसिक दान है।।३।।

सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक दान की व्याख्या के निमित्त देखें श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १७, श्लोक २०-२२

मनुष्य समय पर उचित व्यय करे, अन्यथा न करे । अधिक दान से दरिद्रता तथा अधिक लोभ से तिरस्कार होता है।।४।। देश और काल को ठीक तौर पर देखकर सुपात्र को दान देना चाहिये। कुपात्रों के लिये दिया धन दाता को भी पीड़ा देता है।।५।। दीन तथा हीन के हितों के लिये तथा समाज के उत्कर्ष के निमित्त किसी आडम्बर के बगैर तथा कीर्ति की अभिलाषा के बिना सज्जन दान देता है।।६।। संकट के निरोध तथा

---

१. शुक्र. ३.१७८ २. शुक्र. ३.२२३

सुराष्ट्रे सौख्यसम्पन्ने कल्याणसमताधृते।
सौविध्यैर्लोकयात्रायाः सम्भृताः सर्वनागराः।।८।।

सुखार्थं विकलाङ्गस्य समोत्कर्षाय तस्य च।
सर्वसाधनसौविध्यं राज्येनैव व्यवस्थितम्।।९।।

तद्राष्ट्रे दीनहीनाभ्यां व्यक्तिदानं तु सर्वथा।
राष्ट्रस्यादर्शलक्ष्याभ्यां विधानेन विवर्जितम्।।१०।।

व्यक्तेः क्लेशनिवृत्त्यर्थं तस्याः कल्याणहेतवे।
व्यक्त्या यद्दीयते दानं व्यक्तिदानं च तत्स्मृतम्।।११।।

जनकल्याण के निमित्त सहकार में किया गया दान सात्त्विक कहलाता है।।७।। सुख से सम्पन्न तथा कल्याण एवं समता पर आधारित अच्छे राष्ट्र में सब नागरिक जीवन निर्वाह की सुविधा से सम्पन्न होते हैं तथा विकलांग हीनों के सुख तथा उन्नति के लिये सब साधनों की सुविधा की व्यवस्था राज्य की ओर से ही होती है। अच्छे राष्ट्र में राष्ट्र के आदर्श, लक्ष्य और विधान से दीनों तथा हीनों के लिये भिक्षावृत्ति बिलकुल वर्जित है।।८-१०।। संसार में सब धर्मों में लोकन्याय विशिष्ट है। शक्ति भर समाज के कल्याण को बढ़ाने वाला श्रम, सबके लिये श्रम की सुगमता, मानवोचित वेतन एवं आनन्द और उत्कर्ष की सुविधाएँ लोकन्याय कहलाता है।।११।।

वर्गाधिपत्य पर आश्रित समाज में दानप्रथा के दुरुपयोग के कारण बहुत से आधुनिक प्रगतिशील विद्वानों ने दानप्रथा की कड़ी आलोचना करते हुए सामाजिक न्याय द्वारा समाज की विषमताओं को दूर करने की आवश्यकता पर जोर दिया है। निःसन्देह दान द्वारा कुछ तात्कालिक कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं, किन्तु सामाजिक न्याय पर आश्रित समाज की स्थापना नहीं हो सकती, जनसाधारण की परेशानियाँ तथा समाज की विषमतायें भी ठीक तौर पर दूर नहीं की जा सकती। दानप्रथा के दुरुपयोग ने समाज को काफी हानि पहुँचायी है। जहाँ इसके सहारे बहुत से लोग निठल्ले और एकमात्र पराश्रयोपजीवी बन गये हैं, वहाँ दूसरी ओर धनिकों ने इसे अपने मान और महत्त्व को प्रतिष्ठित करने का साधन बना लिया है। समाज की प्रगति के लिये इन सबका विरोध निःसन्देह आवश्यक है। प्रगतिशील स्वस्थ समाज की स्थापना के लिये जरूरी है कि सामाजिक न्याय तथा दान के मौलिक भेद को ध्यान में रखते हुए सामाजिक न्याय के आधार पर सबके लिये सुविधा-सम्पन्न जीवन बिताने की व्यवस्था की जाय, स्वस्थ व्यक्तियों को समाजोपयोगी कार्यों के द्वारा जीवननिर्वाह करने को बाध्य किया जाय, भिक्षावृत्ति की प्रथा खत्म की जाय, विकलांगों तथा वृद्धों के जीवननिर्वाह की व्यवस्था सामूहिक रूप से समाज द्वारा

सामान्यनीतिः

[1]परेभ्यो यदसूयेत न तत् कुर्यात् स्वयं नरः।
[2]विद्याचरणसम्पन्नः सद्गुणैर्हितमाचरेत्।।१।।

न तत्कार्यं प्रशंसन्ति यत्कृत्वा ह्यनुतप्यते।
[3]तत्कार्यमेव श्रेष्ठं वै यत्कृत्वा हितमावहेत्।।२।।

[4]परदुःखोपदानेन यो नरः सुखमिच्छति।
स वैरेण समायुक्तो दुःखान्न परिमुच्यते।।३।।

[5]न कर्म दुष्कृतं सेव्यं पश्चात् तप्यति दुष्कृतः।
कर्म वै सुकृतं सेव्यं यत्कृत्वा नानुतप्यति।।४।।

अयशः प्राप्यते येन चापकर्षो भवेद् यतः।
कर्तव्याद् भ्रश्यते येन तत्कर्म न समाचरेत्।।५।।

पुरुषार्थेन शीलेन विवेकेन नयेन च।
स्वकार्यमुद्धरेत् प्राज्ञः कार्यध्वंसो हि मूर्खता।।६।।

सुशीलो ज्ञानसम्पन्नो जीवेत् सज्जनजीवनम्।
विद्याशीलविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम्।।७।।

की जाय तथा विशिष्ट राष्ट्रीय संकटों के निवारण के लिये सुनियोजित दान-व्यवस्था का प्रयोग किया जाय।

क्रोध अनर्थों का मूल है, क्रोध संसार का बन्धन है, क्रोध को जीतने से निश्चय ही यह जगत् जीता जाता है।।१।। क्षण क्षण में क्रोध, हर्ष, सन्ताप और क्लेश कार्यशील छोड़ दे।।२।। किसी से बिना मतलब विवाद, अर्थात् झगड़ा न करे, निष्फल कार्य को न करे, राष्ट्र का हित करे।।३।। अपने तथा लोक की उन्नति में तत्पर पुरुष कुटिल बुद्धि का सेवन न करे, अगर आ गयी हो तो उसे रोके। सरल बुद्धि का ही सेवन करे।।४।। सदा कृतज्ञ होना चाहिये, कृतघ्न का निस्तार नहीं है। मित्र से द्रोह नहीं करना चाहिये, हित करने वाला ही श्रेय पाता है।।५।। पुरुषार्थ, शील, विवेक तथा नीति से अपने कार्य का उद्धार करे (संभाले)। काम को बिगाड़ना मूर्खता है।।६।। क्लेश में भी बुद्धिमान् अपना जीवन शुद्ध रखे, चतुर बुद्धिमान् अभिमान को छोड़े।।७।। उत्साह से आलस्य

---

१. शान्ति. २९०.२४ २. धम्मपद ३. धम्मपद, बालवग्गो
४. धम्मपद, पकिण्णकवग्गो ५. धम्मपद, निरयवग्गो

[१]क्लिश्यन्नपि हि मेधावी शुद्धं जीवनमाचरेत्।
[२]प्रवीणोऽपि हि मेधावी वर्जयेदाभिमानिताम्।।८।।

[३]कृतज्ञेन सदा भाव्यं कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।
[४]मित्रद्रोहो न कर्तव्यो हितो हि श्रियमश्नुते।।९।।

ये सत्ये निष्ठिता धीराः सततं सत्पथे स्थिताः।
न मात्सर्यं न चान्यायो न भयं तेषु विद्यते।।१०।।

[५]क्रोधो मूलमनर्थानां क्रोधः संसारबन्धनम्।
[६]जितक्रोधेन सर्वं हि जगदेतद् विजीयते।।११।।

उत्साहेन जयेत् तन्द्रां सङ्कटं साहसेन च।
मानवत्वेन चान्यायं शौर्येण भयमेव च।।१२।।

को जीते, संकट को साहस से जीते, मानवता से अन्याय को जीते, वीरता से भय को जीते।।८।। प्रारम्भ किये काम में विपत्ति उपस्थित होने पर विवेक, धैर्य, साहस, पुरुषार्थ तथा संकल्प से बुद्धिमान् मन्तव्य को साधे, अर्थात् उसे कार्यान्वित कर पूरा करे।।९।। जो लोग सत्य में श्रद्धा रखते हैं, निरन्तर सत्पथ पर डटे रहते हैं, उनमें ईर्ष्या, अन्याय तथा भय नहीं होता।।१०।। लोग उस कार्य की प्रशंसा नहीं करते, जिसे करके मनुष्य को सन्ताप होता है। वही कार्य श्रेष्ठ है, जिसे करके हित मिले।।११।। जो पुरुष दूसरों को दुःख देने से सुख की इच्छा करता है, वह वैर से युक्त स्वयं दुःख से छुटकारा नहीं पाता।।१२।।

भर्तृहरि ने कहा है—

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानवराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।

बेजोड़ वे सत्पुरुष हैं, जो स्वार्थ को त्याग दूसरों के प्रयोजनों में प्रयत्नशील हैं। सामान्य (साधारण) पुरुष वे हैं, जो स्वार्थ को न बिगाड़ते हुए दूसरों के प्रयोजनों में तत्पर रहते हैं। जो मनुष्य स्वार्थ के लिये दूसरों के हित को बिगाड़ते हैं, वे राक्षस हैं। जो बिना मतलब दूसरों के हित को बिगाड़ते हैं, वे कौन हैं, यह समझ में नहीं आता।

---

१. कामन्दक ५.९ २. कामन्दक ५.२६ ३. शान्ति. १७३.२२, शान्ति. १७३.२५
४. शान्ति. १७३.२१ ५. चाणक्य २.२३ ६. कथासरित्सागर.

वक्रां प्रज्ञां न सेवेत प्रतिबाधेत चागताम्।
ऋज्वीं प्रज्ञां हि सेवेत लोकात्मोत्कर्षतत्परः।।१३।।

[१]वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।
हितं मानं च मित्राणां वर्धयेद् न्यायनिष्ठया।।१४।।

प्रतिक्षणं क्रोधहर्षौ सन्तापं च प्रतिक्षणम्।
प्रतिक्षणं च संक्लेशं कार्यशीलः परित्यजेत्।।१५।।

[२]शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित् सह।
[३]न कर्म निष्फलं कुर्याद् राष्ट्रस्य हितमाचरेत्।।१६।।

दम्भाहङ्कारयुक्तस्य मात्सर्येणान्वितस्य च।
[४]भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति।।१७।।

विपन्ने च समारम्भे विवेकधृतिसाहसैः।
पौरुषेण व्रतेनैव मन्तव्यं साधयेत् सुधीः।।१८।।

चिन्ताविषादसन्तापैः क्षीयते नरगौरवम्।
[५]कष्टानि सहते धीरः प्रसन्नो लक्ष्यसिद्धये।।१९।।

सुशील तथा ज्ञानसम्पन्न सज्जन का जीवन जिये, विद्या तथा शील से विहीन पुरुष का जीवन निष्फल है।।१३।। दम्भ, अहंकार, ईर्षा से युक्त तथा प्राणियों से वैर करने वाले व्यक्ति के मन को शान्ति प्राप्त नहीं होती।।१४।। विवेकवान् उस मित्र को छोड़ दे, जो पेट में विष तथा मुँह में दूध रखता हो। वह न्यायनिष्ठा, से अर्थात् न्याय का ध्यान रखते हुए मित्रों के हित और मान को बढ़ाये।।१५।। दुर्जन के साथ न कभी बैठना चाहिये और न कभी जाना चाहिये। दुर्जन की चाहे जितनी सेवा की जाय, वह अच्छा व्यवहार नहीं करता।।१६।। प्रियवादी दुर्जन पर भी विश्वास नहीं करना चाहिये। विद्या से अलंकृत दुर्जन को भी छोड़ देना चाहिये।।१७।। संसार में दुराचारी पुरुष निन्दित होता है। सदाचारी शीलसम्पन्न पुरुष सदा यश प्राप्त करता है।।१८।। लोभ, काम तथा मद से युक्त लोकहित की सेवा नहीं करते। सज्जन पुरुष सबसे सदा कल्याण का आचरण करते हैं।।१९।। लोभ तथा तृष्णा से पराजित, अर्थात् उनमें फँसा मनुष्य धन-

---

१. चाणक्य २.५. २. मनु. ४.१३९ ३. मनु. ४.७०
४. भागवत ३.२९.२६ ५. रश्मिमाला, पृ. २८

लोभतृष्णाभिभूतश्च नरो द्रव्यवशानुगः।
लोकसेवारतश्चैव मानवानां हितानुगः।।२०।।

आत्मोत्कर्षः

संयमेन विवेकेन योगेन दृढनिष्ठया।
सत्कृतैः सहकार्येण हेयं दुःखमनागतम्।।१।।

पराक्रमेणार्जवेन मानमुत्सृज्य साधकः।
साधयेत् स्वसमोत्कर्षं हितं लोकस्य मङ्गलम्।।२।।

उत्थानेनाप्रमादेन संयमेन व्रतेन च।
विवेकशीलः प्राप्नोति ह्यानन्दं मङ्गलं शुभम्।।३।।

स जातो येन जातेन याति राष्ट्रं समुन्नतिम्।
स जीवति यशो यस्य कीतिर्यस्य स जीवति।।४।।

परित्यज्य दुराचारमन्यायं दमनं तथा।
गृह्णाति न्यायबन्धुत्वे लोकात्मोत्कर्षतत्परः।।५।।

[1]आत्मोत्कर्षं न मार्गेत परेषां परिनिन्दया।
स्वगुणै व सर्वार्थं कार्यनिष्ठोऽधिगच्छति।।६।।

दौलत के अधीन है, अर्थात् वह उसके वश में चलता है। लोकसेवा में संलग्न पुरुष मनुष्यों के हित का अनुसरण करता है।।२०।।

अपने व्यक्तित्व का ठीक तौर पर उद्धार करे, अर्थात् उसे ऊँचा उठाये। व्यक्तित्व को विनष्ट न करे। व्यक्तित्वहीन मनुष्य पशु के समान बताया जाता है।।१।। यह जीवलोक सुख का इच्छुक है। सुख के लिये संयमी बने तथा उद्योग और विवेक से सर्वांगीण उत्कर्ष को बढ़ाये।।२।। समता, आनन्द तथा सामाजिकता से सम्पन्न विकासशील मानवता व्यक्ति के उत्कर्ष का साधन है।।३।। समुदाय और व्यक्ति का सौहार्द संवृद्धि और आनन्द का हेतु है। समुदाय के हित में लगन कल्याण और उत्कर्ष का साधन है।।४।। मनुष्यजीवन उत्तरोत्तर उत्कर्ष का साधन है। समता, मनुष्यता तथा समाजसेवा द्वारा बुद्धिमान् उत्कर्ष को साधे।।५।। सम्यक् रूप से उत्कर्ष की सिद्धि के निमित्त कर्तव्य के प्रति दृढ़ निष्ठा, चरित्र, भावों की शुद्धि तथा विवेक को बुद्धिमान् पुष्ट करे।।६।। व्यक्तित्व के उत्कर्ष

---

१. शान्ति. २८७.२५

शिवमिच्छेत् स सर्वस्य य इच्छेद् भूतिमात्मनः ।
[१]वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् न्यायवृत्तिं च धारयेत् ।।७।।

[२]यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।
[३]आत्मनो भावसंशुद्ध्यै सर्वदैव प्रयत्यताम् ।।८।।

बुद्धिभावनयोर्द्वन्द्वं सर्वथा दुःखकारणम् ।
भावनाबुद्धिसंयोगाज्जनः कल्याणमश्नुते ।।९।।

[४]भावना प्रेरणं दद्याद् बुद्धिर्मार्गं प्रदर्शयेत् ।
समायोगात् तयोरेव समोत्कर्षं विवर्धयेत् ।।१०।।

नरो गतिस्वभावो वै प्रगतिस्तस्य सद्गुणः ।
तयोरेव समायोगादुत्कर्षं लभते सुधीः ।।११।।

स्वव्यक्तित्वविकासार्थं प्रयत्नं कुरुते सुधीः ।
व्रतव्यक्तित्वसम्पन्नो भवे नूनं समृध्यति ।।१२।।

उद्धरेच्च स्वव्यक्तित्वं व्यक्तित्वं नावसादयेत् ।
नरो व्यक्तित्वहीनो वै पशुतुल्य उदाहृतः ।।१३।।

में संलग्न व्यक्ति दुराचार, अन्याय, दमन, भय को छोड़कर न्याय, बन्धुता का ग्रहण करता है।।७।। बुद्धिमान् ज्ञान, पौरुष, संयम, न्यायभावना, शौर्य तथा सबके उत्कर्ष के निमित्त किये प्रयत्नों द्वारा व्यक्तित्व की साधना करे।।८।।

यह जीवलोक सुख का इच्छुक है। सुख के लिये संयमी होकर नित्य उद्योग तथा विवेक द्वारा सर्वांगीण विकास किया जाय।।९।। व्यक्तित्व का ठीक तौर पर उद्धार किया जाय, अर्थात् उसे ऊँचा उठाया जाय। व्यक्तित्व को नष्ट न किया जाय । व्यक्तित्वविहीन मनुष्य पशु के समान बताया जाता है।।१०।। समता, आनन्द तथा सामाजिकता से सम्पन्न विकासशील मनुष्यत्व व्यक्ति के विकास का साधन है।।११।। समुदाय और व्यक्ति का सौहार्द संवृद्धि और आनन्द का हेतु है। समुदाय के हित में लगन कल्याण और उत्कर्ष का साधन है।।१२।। मनुष्य जीवन उत्तरोत्तर उत्कर्ष का साधन है । समता, मनुष्यता तथा समाजसेवा द्वारा बुद्धिमान् उत्कर्ष को साधे।।१३।। सर्वांगीण उत्कर्ष की सिद्धि के निमित्त कर्तव्य के प्रति दृढ़ निष्ठा, चरित्र, भावों की शुद्धि तथा विवेक को

---

१. विदुर. ४.३० २. विक्रम. चरितम् ६४ ३. रश्मिमाला, पृ. ६८

४. रश्मिमाला, पृ. ५७

यस्तु शीलसमायुक्तः कल्याणे कुरुते मनः।
उत्तरोत्तरमुत्कर्षं लभते स विनिश्चितम्।।१४।।

विद्याचरणसम्पन्नः सत्ययोगपरायणः।
नैराश्येन विनिर्मुक्तो न्यायनिष्ठः पराक्रमी।।१५।।

निर्भीको निरहङ्कारो धृत्युत्साहसमन्वितः।
उत्तरोत्तरमुत्कर्षं लभते नात्र संशयः।।१६।।

स्वातन्त्र्यं न्यायबन्धुत्वे समत्वं सहकारिता।
समन्वितो गुणैरेतैरुत्कर्षं लभते बुधः।।१७।।

सुखार्थी जीवलोकोऽयं सुखार्थं संयतो भवेत्।
कर्तव्य उद्यमो नित्यं समोत्कर्षं च वर्धयेत्।।१८।।

गते शोको न कर्तव्यो वर्तमानं चैव चिन्तयेत्।
धैर्योत्साहसमायुक्तो भविष्यं साधयेत् सुधीः।।१९।।

[1]नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
त्यक्त्वा हृदयदौर्बल्यं भविष्यं साधयेत् सुधीः।।२०।।

सौम्यत्वं सत्वसंशुद्धिर्मानवत्वं पराक्रमः।
गुणैरेतैः समायुक्त उत्कर्षं लभते नरः।।२१।।

बुद्धिमान् पुष्ट करे।।१४।। व्यक्तित्व के उत्कर्ष में संलग्न व्यक्ति दुराचार, अन्याय, दमन, भय को छोड़कर न्याय, बन्धुता ग्रहण करता है।।१५।। जो अपना कल्याण चाहे, वह सबके कल्याण की इच्छा करे, आचार की यत्नपूर्वक रक्षा करे तथा न्यायपूर्ण जीवनचर्या और व्यवसाय को धारण करे।।१६।। बुद्धिमान् ज्ञान, पौरुष, संयम, न्यायभावना, शौर्य तथा सबके उत्कर्ष के निमित्त किये गये प्रयत्नों द्वारा व्यक्तित्व की साधना करे।।१७।। जो समता और न्याय की भावना से कल्याण में मन लगाता है, वह निःसन्देह उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्राप्त करता है, ऊँचा उठता है।।१८।। जिसकी जैसी भावना वैसी उसकी सफलता। अतः अपने भावों की शुद्धि के लिये सदा प्रयत्नशील रहा जाय।।१९।। बुद्धि और भावों का द्वन्द्व सर्वथा दुःख का कारण है। भाव और बुद्धि के मेल से ही मनुष्य कल्याण प्राप्त करता है।।२०।। भावना प्रेरणा देती है, बुद्धि मार्ग दिखाती है। इन दोनों के ठीक ठीक मेल से ही समोत्कर्ष बढ़ता है।।२१।। मानवता से भूषित, विश्वभावना

---

१. मनु. ४.१३७

[१]आत्मानमेव प्रथमं प्रतिरूपे निवेशयेत् ।
आत्मानं च तथा कुर्याद् यथाऽन्यमनुशासति ।।२२।।
लोकात्मोष्कर्षयोगेन ज्ञानपौरुषसंयमैः ।
न्यायभावेन शौर्येण कल्याणं लभते सुधीः ।।२३।।
[२]परोपदेशकुशलः केवलो न भवेन्नरः ।
[३]स्वान् दुर्गुणान् परित्यज्य सद्गुणान् स्वान् विवर्धयेत् ।।२४।।

लोकहितम्

लोकार्थनिहितं सौख्यं सर्वोत्कर्षश्च मङ्गलम् ।
लोकार्थरहितं कार्यं सर्वदा दुःखमूलकम् ।।१।।
कार्यनिष्ठो न्यायशीलः स्वार्थमोहविनिग्रही ।
युक्त उदात्तभावेन लोकार्थमधिगच्छति ।।२।।
लोकार्थमेव कर्माणि योगयुक्तः करोति यः ।
स एव निरहङ्कारो वर्धयेद् विश्वमङ्गलम् ।।३।।
यत्सुखं सेवमानोऽपि हितं लोकस्य वर्धयन् ।
कामं तदुपसेवेत सत्याचारः शमी दमी ।।४।।
[४]हितं यत्सर्वलोकानामात्मनश्च सुखावहम् ।
तत्कार्यमेव कुर्वीत वृत्तशीलगुणान्वितः ।।५।।

से समन्वित, समाज के उत्कर्ष में संलग्न, विवेकी, कार्यनिष्ठ, संयमी, ईमानदार, समष्टि के भाव से भूषित, वीर, समता में सिद्ध मनुष्य व्यक्तित्व के उत्कर्ष को प्राप्त करता है।।२२-२३।। निर्द्वन्द्व, निरहंकारी, निःस्वार्थी, न्यायनिष्ठ, निस्पृह, दृढ़संकल्प मनुष्य व्यक्तित्व के उत्कर्ष को प्राप्त करता है।।२४।।

लोकहित में सुख, सबका हित तथा मंगल निहित है । लोकहित से रहित कार्य सदा दुःखमूलक है।।१।। दुःखी, जिज्ञासु, तथा अपने अभीष्ट को सिद्ध करने में प्रयत्नशील अपना कार्य निरन्तर करता ही है। जनकल्याण में संलग्न पुरुष निःसन्देह इन सबमें श्रेष्ठ है।।२।। जो लोकहित में वृद्धि न करे, उसे बहुत नहीं मानना चाहिये। जिससे लोकहित हो, उस हानि को भी बहुत मानना चाहिये।।३।। सत्यवादी संयमी उस सुख का अच्छी तौर पर सेवन करे, जिसका उपभोग करते हुए लोकहित की वृद्धि हो।।४।। जिससे दूसरों का हित न हो, उसे कभी न करे। वही कार्य करना चाहिये,

---

१. धम्मपद, पत्तवग्गो २.३ २. शुक्र. २.९३ ३. शुक्र.
४. विदुर. ५.४०

यदन्येषां हितं न स्यान्न तत्कुर्यात् कथञ्चन।
तत्कार्यमेव कर्तव्यं यल्लोकहितमावहेत्।।६।।

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या न लोकहिता भवेत्।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यो लोकहितमावहेत्।।७।।

[1]धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
लोकार्थस्याभिवृद्धिश्च कर्तव्या कार्यनिष्ठितैः।।८।।

परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।
[2]परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति।।९।।

दम्भामर्षविनिर्मुक्तः सदा कल्याणमाचरेत्।
वृत्तं न्यायं प्रतिष्ठाप्य वर्धयेल्लोकमङ्गलम्।।१०।।

[3]समन्वितः करुणया परया दीनमुद्धरेत्।
पीडितानामनाथानां यत्नतः परिपालयेत्।।११।।

नहि स्वसुखमन्विच्छन् पीडयेन्निर्बलं जनम्।
स्वयं हितं परित्यज्य निर्बलस्य हितं चरेत्।।१२।।

विद्वान् सर्वेषु लोकेषु सर्वदा शिवमाचरेत्।
वदेत् तथ्यं च पथ्यं च विश्वकल्याणमावहेत्।।१३।।

जिससे लोक का हित हो।।५।। अपने सुख की इच्छा के कारण निर्बल को पीड़ा न दे। अपने हित को छोड़कर कमजोर का हित करे।।६।। विद्वान् सब लोगों का सदा कल्याण करे, तथ्य तथा हितकारी बात कहे, विश्वकल्याण करे।।७।। दम्भ और क्रोध से मुक्त सदा कल्याण करे, सदाचार और न्याय प्रतिष्ठित कर लोकमंगल बढ़ाये।।८।। करुणा से युक्त व्यक्ति पीड़ित तथा दीन का उद्धार करे, पीड़ितों तथा अनाथों का यत्नपूर्वक पालन पोषण करे।।९।। देश तथा काल का जानकार देश तथा काल में परार्थ साधे। दीनों के हित और मान की रक्षा और वृद्धि करे।।१०।। प्राण तथा धन से परोपकार करना चाहिये। जो उत्तम परोपकार के लिये जीता है, वही जिन्दा है।।११।। दूसरों के हित के निमित्त विद्वान् जीवन और हित का त्याग करे, कार्यनिष्ठों द्वारा लोकहित की वृद्धि की जानी चाहिये।।१२।। कार्यनिष्ठ, न्यायशील तथा स्वार्थ और मोह को नियन्त्रित करने वाला उदार भाव से युक्त व्यक्ति लोकहित करता है, अर्थात् लोककल्याण

---

१. हितो. मित्र. श्लो. ४४ २. विदुर. ७.५५ ३. कामन्दक ३.३

परार्थं देशकालज्ञो देशे काले च साधयेत्।
हितं मानं च दीनानां रक्षयेद् वर्धयेत् तथा।।१४।।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी स्वकार्यं कुरुतेऽनिशम्।
जनकल्याणनिरतो नरो नूनं विशिष्यते।।१५।।

प्रगतिप्रदनीतिज्ञः कारको न्यायनिष्ठितः।
भूषितो मानवत्वेन हितं लोकस्य सेवते।।१६।।

विद्याचरणसम्पन्नः समभावगुणान्वितः।
निष्कामत्वसमायुक्तः संसारं सेवतेऽनिशम्।।१७।।

सत्पुरुषः

कर्तव्यमाचरन् काममकर्तव्यमनाचरन्।
साम्यभावेन यस्तिष्ठेत् महाकर्ता स उच्यते।।१।।

लोकस्य संग्रहार्थं यः समो भूत्वा फलं त्यजन्।
सत्कार्यं कुरुते नित्यं महाकर्ता स उच्यते।।२।।

विद्याचरणसम्पन्नो धृत्युत्साहसमन्वितः।
कर्तव्यनिष्ठो निर्भीको न्यायशीलो दृढव्रतः।।३।।

करने के निमित्त इन गुणों का होना आवश्यक है।।१३।। प्रगतिशील नीतिज्ञ, कर्मण्य, न्यायनिष्ठ तथा मानवता से विभूषित लोकहित का अनुष्ठान करता है।।१४।। विद्या और आचरण से सम्पन्न, समत्व की भावना से युक्त तथा निष्काम भावना से समायुक्त व्यक्ति निरन्तर संसार की सेवा करता है।।१५।। जो लोकहित के लिये योगयुक्त हो कर्मों को करता है, वह निरहंकारी विश्वकल्याण, अपना उत्कर्ष, जनता का आनन्द, सबका उत्थान और सत्कर्म बढ़ाता है। वह मनुष्यता, उदारता, सहकारिता को पुष्ट करता है, स्वार्थ और शोषण को रोकता है तथा न्याय और लोकहित पर आश्रित संस्कृति को प्रतिष्ठित करता है।।१६-१७।।

जो लोकहित के संग्रह के लिये समरूप होकर फल को त्याग कर नित्य अच्छा काम करता है, वह महाकर्ता है।।१।। विद्या तथा आचरण से सम्पन्न, धृति और उत्साह से युक्त, कर्तव्यपरायण, निर्भीक, न्यायशील, दृढ़व्रती, लोकहित में संलग्न, बुद्धिमान्, सत्य के प्रयोग में तत्पर, सफलता और विफलता में विकाररहित सात्त्विक कर्ता कहलाता है।।२-३।। जो मनुष्य जीवन प्राप्त कर यत्नपूर्वक निरन्तर अपना तथा समाज का उत्कर्ष

रतो लोकहिते प्राज्ञः सत्ययोगपरायणः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।।४।।

ये चान्यायं न कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा।
न्यायेन जयमिच्छन्ति शिष्टास्ते पुरुषोत्तमाः।।५।।

यस्य संसारिणी प्रज्ञा दलितक्षेमहेतवे।
पौरुषे वर्तते नित्यं स वै सत्पुरुषः स्मृतः।।६।।

यो दम्भमभिमानं च परित्यज्य प्रयत्नतः।
निर्बलान् सेवते नित्यं स वै सत्पुरुषः स्मृतः।।७।।

निर्भीको निरहङ्कारो निर्द्वन्द्वो न्यायनिष्ठितः।
समः स्वतन्त्रः सुहितः सुशीलः सुजनः स्मृतः।।८।।

संयमी सत्त्वसंशुद्धः संस्कृतश्च सदाशयः।
सर्वोपकारसंलग्नः सद्व्रतः सुजनः स्मृतः।।९।।

उदात्तकर्मसंलग्नो देशभक्तिपरायणः।
उत्तरोत्तरमुत्कृष्टः सुजनः परिकीर्तितः।।१०।।

लोकज्ञो नीतिसंदक्षो संयमी दृढनिश्चयः।
शान्तो धीरश्च शूरश्च सुजनः परिकीर्तितः।।११।।

और कल्याण करता है, वह निःसन्देह सदाशय कहा जाता है।।४।। संसार में न्यायनिष्ठ सब मनुष्यों में उत्तम है। न्यायनिष्ठों में भी विश्वकल्याण में संलग्न कर्मण्य उत्तम है।।५।। जो मन, वाणी तथा कर्म से अन्याय नहीं करता तथा न्याय से विजय की इच्छा करता है, वह शिष्ट पुरुषों में उत्तम है।।६।। जिसकी सांसारिक बुद्धि दलितों के कल्याण के निमित्त पुरुषार्थ में नित्य लगी रहती है, वह निःसन्देह सत्पुरुष है।।७।। जो यत्नपूर्वक दम्भ तथा अभिमान को छोड़कर नित्य निर्बलों की सेवा करता है, वह निश्चय ही सत्पुरुष है।।८।। उदार कार्य में संलग्न, देशभक्ति में लीन, उत्तरोत्तर उन्नति करने वाला अच्छा मनुष्य है।।९।। निर्भीक, निरहंकार, निर्द्वन्द्व, न्यायनिष्ठ, समता की भावना से युक्त, स्वतन्त्र, सुहित तथा सुशील सज्जन कहलाता है।।१०।। जो समता और सत्य से युक्त, विद्या एवं सदाचार तथा व्रत से सम्पन्न, शौर्य तथा शील से सुशोभित, सद्भावों के भूषण से भूषित, निस्पृह, निरहंकारी, प्रगतिशील विद्वान्, लोकहितैषी तथा चतुर लोकज्ञाता

सौम्यत्वं च सर्वहितं सत्यशीलपरायणम्।
सेवा स्वातन्त्र्यबन्धुत्वे यस्य स्यात् स महामनः ।।१२।।

विक्रान्तो व्रतसम्पन्नः साहसी न्यायनिष्ठितः।
युक्तश्चोदात्तभावेन कर्मवीरः स वै स्मृतः ।।१३।।

शिष्टाचारः प्रियो येषु [1]सत्यं येषां परायणम्।
[2]सर्वभूतहिता ये च शिष्टास्ते पुरुषोत्तमाः ।।१४।।

संन्यासी

संन्यासी ज्ञानसम्पन्नः निस्पृहः साम्यसंयुतः।
प्रशान्तः करुणस्त्यागी सर्वेषां च हिते रतः ।।१।।

करुणो यश्च निष्कामस्तपोनिष्ठो ह्यनाश्रितः।
स्थितप्रज्ञो मिताहारः स संन्यासी प्रकीर्तितः ।।२।।

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
प्राप्नोतु साधुसंन्यासी स्वात्मोत्कर्षं च मङ्गलम् ।।३।।

कल्याणार्थाय जीवानां परिव्राजश्च जीवनम्।
लोकात्मोत्कर्षसंलग्नः सेवते जगतो हितम् ।।४।।

[3]यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निष्पृहः।
तदा प्राप्नोति संन्यासी सुखानन्दं च शाश्वतम् ।।५।।

है, वह सभ्य सत्पुरुष है।।११-१२।। जो मनुष्यों के हित तथा सत्य की स्थापना के निमित्त काल के अनुसार रचना, क्रान्ति एवं संघर्ष का अनुष्ठान करते हैं, नित्य अपने आचार की रक्षा करते हैं, न्याय को दृढ़ता से धारण करते हैं तथा सत्य का आचरण करते हैं, वे निश्चय ही कर्मशूर हैं।।१३-१४।।

शीलसम्पन्न, स्वार्थ और मोह तथा राग-द्वेष से रहित, ज्ञान एवं संयम से युक्त वृद्ध जनकल्याण की वृद्धि तथा अपने उत्कर्ष एवं समत्व की सिद्धि के निमित्त संन्यास लेता है।।१-२।। संन्यासी ज्ञानसम्पन्न, निस्पृह, समतायुक्त, प्रशान्त, करुणा तथा त्यागी होता है।।३।। सद्व्रती साधु-संन्यासी सब भावों में निस्पृह, प्रशंसा एवं निन्दा में समान रूप से मध्यस्थ की तरह ठहरे, बहुत बढ़कर बातें करने वालों के प्रति सहनशील रहे, किसी का अपमान न करे, अपनी श्लाघा (प्रशंसा) न करे, न ही कभी क्रोध करे।।४-५।।

---

१. शान्ति. १५५.२४ २. शान्ति. १५८.२४ ३. मनु. ६.८०

[1]अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।
[2]क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाकृष्टः कुशलं वदेत् ।।६।।

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
[3]यावज्जीवेच्च संसारे तावत् कल्याणमाचरेत् ।।७।।

भूतेभ्यश्चाभयं दत्त्वा निर्भयः समुदाचरेत् ।
न प्रहृष्येच्च लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत् ।।८।।

[4]यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
शान्तवाङ्मानसो नित्यं स संन्यासी प्रकीर्तितः ।।९।।

मध्यस्थ इव तिष्ठेत प्रशंसानिन्दयोः समः ।
नात्मप्रशंसां कुर्वीत निन्दां कुर्यान्न कस्यचित् ।।१०।।

समत्वं वै परं ज्ञानं तस्य सिद्धिस्तु दुष्करा ।
जीवन्ति तस्य सिद्ध्यर्थं परिव्राजश्च साधवः ।।११।।

[5]समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ।
लिङ्गमात्रेण संन्यासः सर्वथा हि निरर्थकः ।।१२।।

जिससे लोगों को उद्वेग या क्षोभ नहीं होता, तथा जो स्वयं लोगों से उद्विग्न अथवा क्षुब्ध नहीं होता और सदा वाणी और मन में शान्त है, वह संन्यासी है।।६।। इन्द्रियों के निरोध से, राग-द्वेष के क्षय से, समता एवं निष्काम भावना से, जनकल्याण की निष्ठा से, लय एवं त्याग और समाधि से, तथा विवेक, ज्ञान और सत्कार्यों से साधु-संन्यासी अपना उत्कर्ष निश्चय ही प्राप्त करता है।।७-८।। जीवों का कल्याण करने के लिये ही संन्यासी का जीवन होता है। वह अपने तथा लोक के उत्कर्ष में संलग्न, संसार के हित का अनुष्ठान करता है।।९।। समता श्रेष्ठ ज्ञान है। वह व्यक्ति और समाज के उत्कर्ष का साधन है । उसकी सिद्धि के निमित्त ही साधु-संन्यासी लोग जीते हैं, अर्थात् यही उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य है।।१०।। सबमें समानता, न कि चिह्न-विशेष धर्म का कारण है। चिह्न-मात्र का संन्यास बिलकुल ही बेकार है।।११।। जो व्यक्ति स्वार्थ, मोह और ऐश्वर्य का अनुगमन करता है, ऐसे व्यक्ति के आनन्द तथा भोग के लिये संन्यास का विधान नहीं है।।१२-१३।। जो अहंकार, पाखण्ड तथा शरीर के क्लेश के भय

---

१. मनु. ६.४७ २. मनु. ६.४८ ३. शान्ति. २९३.४
४. गीता १२.१५ ५. मनु. ६.६६

यो नरो भजते स्वार्थं मोहमैश्वर्यमेव च ।
तस्यानन्दाय भोगाय संन्यासो न विधीयते ।।१३।।

योऽहङ्कारेण दम्भेन [1]कायक्लेशभयात् तथा ।
कायकर्मपरित्यागी न स त्यागफलं लभेत् ।।१४।।

सत्कारमानपूजार्थं भिक्षार्थाय च केवलम् ।
यो धारयति संन्यासं मिथ्याचारः स उच्यते ।।१५।।

यस्तु स्वानन्दसंलग्नो जनानन्दमुपेक्षते ।
विपोषयति पाखण्डं मिथ्याचारः स उच्यते ।।१६।।

से कर्तव्य कर्मों का त्यागी है, वह त्याग के फल को नहीं पाता।।१४।। जो सत्कार, मान या पूजा की प्राप्ति के लिये केवल भिक्षा के लिये संन्यास को धारण करता है, वह मिथ्याचारी है।।१५।। जो व्यक्ति अपने आनन्द में संलग्न हो जनता के आनन्द की उपेक्षा करता है, वह पाखण्ड को पुष्ट करता है और मिथ्याचारी है।।१६।।

आत्मज्ञान तथा मोक्ष संन्यास का विशिष्ट उद्देश्य बताया जाता है, पर बहुत से विद्वानों के विचार में संन्यास-आश्रम को ग्रहण किये बिना भी इनकी सिद्धि हो सकती है। कहा गया है—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ।।
(सूक्तिसुधाकर, पृ. १८३)

रागी को वन में भी दोषों की जागृति हो जाती है और घर में रहकर भी पाँचों इन्द्रियों का संयम किया जाय, तो वह तप ही है। जो निर्दोष कर्म में प्रवृत्त होता है, उस विरक्त पुरुष के लिये घर भी तपोवन ही है।

इसी तरह महाभारत के शान्तिपर्व में जनक कहते हैं कि मेरी तो यह धारणा है कि गेरुआ वस्त्र पहनना, माथा मुड़ा लेना तथा त्रिदण्ड, कमण्डलु धारण करना—संन्यास मार्ग का चिह्न मात्र है, इनसे मोक्ष की सिद्धि नहीं होती। यदि इन चिह्नों के रहते हुए भी यहाँ दुःखों से मोक्ष पाने के लिये ज्ञान ही एकमात्र उपाय है, तो चिह्नों का धारण करना निरर्थक है। यदि यह कहा जाय कि लिङ्ग धारण करने से कष्ट कम होता है, इसे देखकर चिह्नों को धारण करने का विचार किया गया है, तो छत्र आदि के धारण करने में भी इस सामान्य प्रयोजन की दृष्टि क्यों न रखी जाय, न तो अकिंचनता में मोक्ष

---

१. गीता १८.८

है और न किञ्चनता में बन्धन ही है। धनी और निर्धन दोनों अवस्थाओं में ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। (शान्ति. ३२०.४७-५०)

श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद ने तो कहा है कि मुनिगण प्रायः अपने मोक्ष की अभिलाषा से निर्जन में मौन अवलम्बन करके रहते हैं, पर-उद्धार की चेष्टा नहीं करते, पर मैं इन दीन अज्ञ लोगों को छोड़कर अकेले मुक्त नहीं होना चाहता (नैतान्विहाय)। उन्होंने यह भी कहा कि मोक्ष के बताये साधन प्रायः अजितेन्द्रिय पुरुषों तथा पाखण्डियों की जीविका के उपाय होते हैं। (भागवत ७.९.४४-४६)

मनुस्मृति आदि स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रों में भी यह बार बार कहा गया है कि लिंगमात्र से मोक्ष नहीं मिलता, जो सत्कार, मान या पूजा प्राप्त करने के निमित्त दण्ड, कषाय वस्त्र धारण करता है, वह संन्यासी नहीं है, संन्यासी के लिये स्वर्ण, कृषि आदि का संग्रह वर्जनीय है तथा त्रिदण्ड धारण कर लिंगमात्र से जीविका करने वालों को मोक्ष प्राप्त नहीं होता। (लघुविष्णुस्मृति, अध्याय ४)।

मोक्ष क्या है? इसके सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का विचार था कि मोक्ष सत्कर्मों की उपलब्धि है तथा उनके फल की अवधि समाप्त होने पर जीव फिर जन्म लेता है। वेदान्ती स्वर्ग और मोक्ष का भेद करते हुए कहते हैं कि सत्कर्मों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। मोक्ष तो ब्रह्मज्ञान द्वारा होता है, तथा ब्रह्मज्ञान, अर्थात् मोक्ष के बाद पुनर्जन्म का प्रश्न नहीं उठता। बौद्धों के विचार में सब वासनाओं के क्षीण हो जाने पर, सांसारिक वासनाओं तथा कर्मचक्र से पूरी तौर पर छुटकारा पाना ही निर्वाण है। जैनियों के विचार में जीव द्वारा सर्वोत्कृष्ट अर्हत्-अवस्था की प्राप्ति ही मोक्ष है। भक्तों की धारणा है कि परमेश्वर से तादात्म्य, उसमें पूरी तौर पर लीन हो जाना ही सद्गति, अर्थात् मोक्ष है। योगियों की दृष्टि में मन और इन्द्रियों को योग के द्वारा समाहित कर समत्व की व्यापक सिद्धि से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। कर्मयोगी निष्काम भाव से लोकहित तथा लोकसंग्रह के निमित्त कर्तव्य करते हुए समत्व की प्राप्ति ही मोक्ष के लिये आवश्यक समझते हैं। दार्शनिक सिद्धान्तों की विभिन्नता, जीव एवं प्रकृति के तथा परमतत्त्व के सम्बन्ध में विचारों में मौलिक भेद ही मोक्ष के सम्बन्ध में मतों की विभिन्नता का मूल आधार है। ये सभी विचारक लोकहित तथा संयम के महत्त्व को स्वीकार करते हैं, पर इन सबकी दृष्टि मूलतः पारलौकिक है। वे लोकहित को चित्त की शुद्धि का उपाय, अतः पारलौकिक लक्ष्य की सिद्धि का साधन मात्र मानते हैं।

इन सबसे अलग समाजवादियों का दृष्टिकोण मूलतः लौकिक है। लोक की सर्वोत्तम व्यवस्था, लौकिक जीवन का सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वांगीण विकास और उत्कर्ष, लोकहित की अभिवृद्धि, स्वतन्त्रता तथा समता पर आधृत सुखी आनन्दमय जीवन तथा मानव

साधुवृत्तिः

स्वभावेन च यः शान्तः समः सर्वोपकारकः।
न्यायनिष्ठो मृदुर्दान्तः स वै साधुः प्रकीर्तितः ।।१।।

शीलसत्यव्रताचारो मैत्रः करुण एव च।
ज्ञाननिष्ठासमायुक्तो यः स साधुः प्रकीर्तितः ।।२।।

निरपेक्षश्च निर्वैरो निष्कामो निरहङ्कृतः।
आत्मोत्कर्षे च संलग्नः समो लोकार्थचिन्तकः ।।३।।

में निहित मनुष्यत्व तथा नैतिक गुणों का विकास ही समाजवाद का लक्ष्य है। पारस्परिक सहानुभूति, सामाजिक प्रेरणा उनके विचार में मानव स्वभाव का अंग है। उनके विकास में ही जीवन का विकास है, वे ही मनुष्यत्व के लक्षण हैं। मनुष्यत्व का पूर्ण विकास ही जीवन का उत्कर्ष है। वे चित्त-शुद्धि तथा वासनाओं के शोध को उत्कर्ष के लिये जरूरी समझते हैं, पर वासनाओं के क्षय के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते।

समाजवाद वयोवृद्धों को जीवनयात्रा के निमित्त साधनों को जुटाने की झंझट से मुक्त करना समाज का कर्तव्य समझता है, पर वह भिक्षावृत्ति द्वारा जीवननिर्वाह करना ठीक नहीं समझता। समाज द्वारा सामूहिक रूप से सामाजिक न्याय के आधार पर उसका प्रबन्ध ही वह उचित समझता है। समाजवाद संन्यास के चिह्न को भी विशेष महत्त्व नहीं देता। हाँ यदि कोई उन्हीं के धारण करने में रुचि या श्रद्धा रखता है, तो उसकी स्वतन्त्रता में बाधा डालना भी अनुचित समझता है। वह तो चाहता है कि वयोवृद्ध नागरिक, चाहे वे किसी वेष में रहे, समाज द्वारा जीवनयात्रा की समुचित सुविधा प्राप्त कर सब प्रकार की स्वार्थभावनाओं से ऊपर उठकर निष्काम भाव से अपनी शक्तियों और अनुभवों को समत्व की सिद्धि तथा लोकहित की अभिवृद्धि में लगा दें, निष्काम लोकवृत्ति (जीवनचर्या) को अपने जीवन का लक्ष्य बना अपना तथा समाज का अभ्युदय और उत्कर्ष करें, चिन्तन, मनन, चित्तशुद्धि, सहज प्रेरणाओं के परिशोध तथा निष्काम सेवा द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानें तथा अपना एवं लोक का उत्कर्ष करें। इस प्रकार का जीवन बिताने वाले संन्यासी का समाजवादी समाज में भी समुचित आदर हो सकता है। ऐसा व्यवहार प्राचीन परम्परा के अनुकूल भी है।

जो स्वभाव से शान्त, समदर्शी, सर्वोपकारी, न्यायनिष्ठ, मृदु तथा संयमी है, वह साधु कहलाता है।।१।। जो शील तथा सत्यव्रत का पालन करने वाला है, मैत्री तथा करुणा एवं ज्ञाननिष्ठा से युक्त है, वह साधु है।।२।। जो निरपेक्ष, निर्वैर, निष्काम, निरहंकारी, अपने उत्कर्ष में संलग्न, सम, लोकहित चिन्तक, सुख-दुःख तथा प्रशंसा-

प्रशान्तः सुखदुःखेषु प्रशंसानिन्दयोस्तथा ।
अनाश्रितो मिताहारः स साधुः समुदाहृतः ।।४।।

अद्रोहोऽनभिमानश्च सौहार्दं सत्यसंयमे ।
सौम्यत्वं भावसंशुद्धिर्मार्दवं चार्जवं तथा ।।५।।

त्यागः क्षमा च धैर्यं च तितिक्षा करुणा व्रतम् ।
यस्मिन्नेतानि दृश्यन्ते स साधुः समुदाहृतः ।।६।।

[1]निर्ममा निरहङ्काराः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ।
[2]प्रमाणभूता भूतानां साधवः समुदाहृताः ।।७।।

[3]प्रहर्षः प्रीतिरानन्दः समः स्वास्थ्यात्मचित्तता ।
गुणैरेतैः समायुक्ताः साधवः समुदाहृताः ।।८।।

ये चान्यायं न कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा ।
सत्पक्षे ये स्थिता नित्यं साधवस्ते प्रकीर्तिताः ।।९।।

आत्मोत्कर्षश्च कर्तव्यः कर्तव्यं शीलवर्धनम् ।
लोकसेवापि कर्तव्या राष्ट्रोत्थानं च साधुभिः ।।१०।।

साधुवृत्तस्तु सर्वेषु [4]मैत्रायणगतश्चरेत् ।
आचरेद् विश्वकल्याणं सर्वदा कुशलं वदेत् ।।११।।

निन्दा में शान्त, मिताहारी एवं अनाश्रित, अर्थात् किसी पर आश्रित नहीं है, वह साधु है।।३-४।। साधु-संन्यासी सबके प्रति मित्रभाव रखकर विचरता रहे, विश्वकल्याण करे तथा सदा कुशल कहे।।५।। साधु-संन्यासी सत्यार्थी दृढ़ता से न्याय धारण करता है, समता एवं सत्य की सिद्धि के लिये सब कष्टों को सहता है।।६।। जीवों के कल्याण के निमित्त तथा अपने और लोक के उत्कर्ष के लिये राग-द्वेष से रहित हो साधु लोग विचरते हैं।।७।। समता और बन्धुता की रक्षा के एवं सबके विवेक, हित और जागृति के निमित्त सन्तों की शक्तियाँ लगी रहती हैं।।८।। उदार और उदात्त भावों के द्वारा एवं विवेक, ज्ञान और साहस से गृहस्थ तथा साधु-संन्यासी साधुवृत्ति का पालन करे। जनकल्याण, सबका उत्कर्ष तथा साधुता को बढ़ाये एवं साधुचरित्र अपना उत्कर्ष और मंगल प्राप्त करे।।९-१०।। संसार में साधुवृत्ति मानवता की सिद्धि है। जो साधुवृत्ति का आचरण करता है, वह सबका माननीय है।।११।। जिनमें लोभ और मोह का अभाव है, जो

---

१. शान्ति. १५८.३१ २. शान्ति. १२०.१२ ३. शान्ति. २४७.२३
४. शान्ति. २७८.५५

साधुवृत्तस्तु सत्यार्थी सत्यं धारयते ध्रुवम्।
सहते सर्वकष्टानि न्यायस्थापनहेतवे।।१२।।

विरोधयत्यनाचारं सेवते हीननिर्बलान्।
संस्थाययति यत्नेन नैतिकत्वं सुसंस्कृतिम्।।१३।।

शुभकामना

सर्वस्तु सज्जनो भूयात् सर्वश्च सममाप्नुयात्।
सर्वः पश्यतु भद्राणि सर्वो वै हितमाचरेत्।।१।।

सर्वो भजतु नैर्मल्यं सर्वो वै न्यायमावहेत्।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्वो वै सत्यमाचरेत्।।२।।

सर्वो भवतु मेधावी सर्वः स्यात् कार्यतत्परः।
सर्वश्च शान्तिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।३।।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वश्च सुखमाप्नुयात्।
सर्वोऽभ्युदयभाग् भूयात् सर्वः स्याद् राष्ट्रनिष्ठितः।।४।।

स्वातन्त्र्यं प्राप्नुयात् सर्वः सर्वो गच्छतु सत्पथे।
सर्वो भजतु कल्याणं बन्धुत्वं सहकारिताम्।।५।।

सत्य और सरलता में स्थित हैं और विश्वकल्याण करते हैं, वे साधुजन निरन्तर सेवा के योग्य हैं।।१२।। सत्पुरुषों की साधुवृत्ति निःसन्देह सबका उपकार करने वाली है, दूसरों का साधु जैसा वेष अवश्य ही भ्रान्ति पैदा करने वाला है।।१३।।

साधुवृत्ति के लिये संन्यासी बनना अथवा किन्हीं विशिष्ट चिह्नों को धारण करना आवश्यक नहीं है। उपर्युक्त सद्गुणों और सद्व्यवहार से भूषित सज्जन गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन करते हुए साधुजीवन व्यतीत कर सकता है।

मण्डल (समुदाय, सम्मेलन) अपनी शोभा से संसार को अलंकृत करे। सब दोषों को छोड़कर सदा कुशलक्षेम करे।।१।। संघसामग्री (संघ के साधन) नित्य हों, संघ का कार्य सिद्ध हो, न्याय और सत्य से युक्त मन्तव्य अच्छी तौर पर सम्पन्न हों, फूलें-फलें।।२।। सब मानव कर्मण्य, ज्ञानी, न्यायनिष्ठ, निर्भीक, निरंहकारी तथा आपस में स्निग्ध (स्नेही, हितैषी) हों, निरन्तर शीलवान् तथा सभी सन्तापों से निर्मल हों, कल्याणकारी कार्य करें तथा विश्वहित को बढ़ायें।।३-४।। सभी सत्यनिष्ठ, सौहार्द-सम्पन्न, श्रम के गौरव से युक्त तथा मानवता से विभूषित हों।।५।। सभी लोकहितैषी,

सर्वं भवतु सौम्यं वै शिवसङ्कल्पमस्तु च।
प्राप्नोतु भावसंशुद्धिमैकाग्र्यं शुचितां हितम्।।६।।

सर्वः प्राप्नोतु मानुष्यं नैतिकत्वं सुसंस्कृतिम्।
सज्ज्ञानं सद्विवेकं च सद्वृत्तिं प्रगतिं यशः।।७।।



शूर, विश्वनिष्ठ, देशभक्त, समता के अभिलाषी, बुद्धिमान् एवं लोकतान्त्रिक हों।।६।। सभी सौम्य भाव, नैतिकता और अच्छी संस्कृति को, सौहार्द से सम्पन्न सज्जनता, अच्छी वृत्ति, प्रगति तथा यश को प्राप्त करें।।७।।



समाजदर्शनम्

व्रतम्

मानवत्वं परं श्रेष्ठं नराणां जीवनामृतम् ।
ज्ञान-चारित्र्य-सेवाभिः सिद्धं कुर्यामिति व्रतम् ।।१।।

समत्वं वै परा निष्ठा करिष्ये तस्य सिद्धये ।
सर्वसेवां जनक्षेमं दलितोत्थानमङ्गले ।।२।।

कुर्यां प्रतिष्ठितं राष्ट्रे समाजं समतास्थितम् ।
समाज-व्यक्ति-संयोगं व्यवस्थां लोकतान्त्रिकीम् ।।३।।

देशबन्धुत्व-संसृष्टं राष्ट्रियत्वं शिवान्वितम् ।
नागरत्व-नयादर्शौ नैतिकत्व-विभूषितौ ।।४।।

लोकन्यायं सदादर्शं समष्टिस्नेह-मान्यते ।
सामाजिक-मनुष्यत्वं राष्ट्रकर्तव्य-निष्ठताम् ।।५।।

अहिंसा सत्यमौदार्यं सर्वसौहार्द-सङ्गती ।
न्यासिता-भाव-सम्पन्नं सार्वलौकिक-जीवनम् ।।६।।

मानवता बहुत श्रेष्ठ है, मनुष्यों के जीवन का अमृत है; ज्ञान, चरित्र, सेवा द्वारा उसे सिद्ध करूँ, यही मेरा व्रत है।।१।। समता बड़ी निष्ठा है, मैं उसकी सिद्धि के लिये सबकी सेवा, जनता का कल्याण तथा दलितों का उत्थान और मंगल करूँगा।।२।। मैं राष्ट्र में प्रतिष्ठित करूँगा। समता पर आश्रित समाज को, समाज और व्यक्ति के सामंजस्य को, लोकतान्त्रिक व्यवस्था को, देशबन्धुत्व पर आधारित कल्याणकारी राष्ट्रीयता को, नैतिकता से विभूषित नागरिकता के सिद्धान्तों और आदर्शों को, लोकन्याय, अच्छे आदर्श तथा लोक-प्रेम और सामाजिक मान्यताओं को, सामाजिक मनुष्यत्व को, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य भावना को, अहिंसा तथा सत्य और उदारता को, सबके साथ सौहार्द और मेल को, न्यासिता (ट्रस्टीशिप) की भावना से सम्पन्न सार्वलौकिक जीवन को।।३-६।।

सत्यम्

सत्यं भूतहितं ज्ञानं सत्यं च समदर्शनम्[१] ।
सत्यस्याचरणं श्रेयः सत्यं धर्मः सनातनः[२] ।।१।।

जीवनोत्कर्षमाप्नोति नरः सत्येन कर्मणा ।
असत्येनापकर्षं च लोकहानिं विनिश्चिताम् ।।२।।

सत्यं वै धर्मसर्वस्वं लोकात्मोत्कर्षसाधनम् ।
अहिंसा समता न्यायो नैतिकत्वं मनुष्यता ।।३।।

सदाचारः सदादर्शः प्रगतिः प्रीति-सङ्गती ।
शान्तिः कल्याणमुत्कर्षः सत्याकाराः प्रकीर्तिताः ।।४।।

प्रगति-प्रद-संसारे सत्यं स्यात् प्रगतिप्रियम् ।
काशयेन्नवतत्त्वानि कल्याणार्थं नवस्थितौ ।।५।।

स्थित्या प्रभावितं सत्यं प्रभावयति जीवनम् ।
सत्यं कालानुकूलं वै पुष्णाति जनताहितम् ।।६।।

सत्य प्राणिमात्र का हित, ज्ञान और समता का दर्शन (ज्ञान और साक्षात्कार) है। सत्य का व्यवहार कल्याणकारी है। सत्य सनातन से प्रचलित धर्म है।।१।। मनुष्य सत्य पर आधारित कर्म से जीवन में उत्कर्ष प्राप्त करता है। असत्य से अपकर्ष और लोकक्षति अवश्य होती है।।२।। सत्य समस्त धर्म है। वह व्यक्ति और समाज के उत्कर्ष का उपकरण है। अहिंसा, समता, न्याय, नैतिकता, मनुष्यता, सदाचार, उदात्त आदर्श, प्रगति, प्रेम, मेल, शान्ति, कल्याण और उत्कर्ष उसके रूप हैं।।३-४।। प्रगतिशील संसार में सत्य प्रगति का समर्थक हो, नयी स्थिति में जनकल्याण के निमित्त नये तत्त्वों को प्रकाशित करे।।५।। स्थिति से प्रभावित सत्य जीवन को प्रभावित करता है । समय के अनुकूल सत्य ही जनता का हित पुष्ट करता है।।६।।

कतिपय दार्शनिक सार्वभौम सर्वकालीन निरपेक्ष सत्य पर विश्वास करते हैं। समाजवैज्ञानिक इस धारणा को निरी कल्पना बताते हैं। उनके विचार में सत्य सापेक्ष और अनुभव-जन्य है। दार्शनिक भी स्वीकार करते हैं कि अल्पज्ञ मानव के लिये सम्पूर्ण सत्य का ज्ञान असम्भव है। परिस्थिति के सन्दर्भ में अनुभव और मनन सत्य के ज्ञान के मूलाधार हैं। गाँधी जी भी, जो सत्य को ब्रह्म की तरह अनादि, अनन्त और अखण्ड

---

१. भागवत ११.१९.३१ २. महा. शान्तिपर्व १६२.४

सत्यार्थी दम्भकालुष्यं जडत्वं मोहमुत्सृजेत् ।
युक्तियुक्त-विचारेण लोककल्याणमुद्वहेत् ।।७।।
सत्यार्थी निरहङ्कारो मानयेद् विश्वपण्डितान् ।
विवेकेन शुभं ज्ञानं सर्वतः प्राप्नुयात् सदा ।।८।।
त्यक्त्वा सर्वज्ञतावादं जडत्वं दम्भमत्सरे ।
विवेकेन स्वराष्ट्रस्य ज्ञानमाचार-संस्कृती ।।९।।
विश्वस्य सञ्चितं ज्ञानं विज्ञानमनुशीलयेत् ।
यत्नेन पोषयेज्ज्ञानं युक्ति-क्षेम-नयान्वितम् ।।१०।।
युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि[१] ।
शत्रोरपि गुणा ग्राह्या गुरोस्त्याज्यास्तु दुर्गुणाः[२] ।।११।।
समत्व-न्याय-सन्तुष्टं लोककल्याणसंयुतम् ।
चारित्र्योत्कर्षसम्पन्नं ज्ञानं सज्ज्ञानमुच्यते ।।१२।।

मानते थे, मानव की अल्पज्ञता स्वीकार करते थे और कहते थे कि नयी नयी परिस्थितियों में सत्य के नये नये तत्त्व प्रकट होते हैं। संघर्षमय संसार में नयी नयी समस्याओं की पृष्ठभूमि में ही सत्य का स्वरूप विकसित हुआ है। प्राचीन भारतीय विद्वान् ब्रह्मज्ञान को निरपेक्ष मानते थे, पर वे स्वीकार करते थे कि मानव अल्पज्ञ है। उसके लिये पूर्ण सत्य का ज्ञान दुर्लभ है। ये विद्वान् यह भी स्वीकार करते थे कि मानव का व्यावहारिक ज्ञान सापेक्ष है, वह देश-काल की स्थितियों तथा व्यक्ति के स्वभाव और गुण से प्रभावित होता है, देशकालानुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है।

सत्यार्थी दम्भ, अपवित्रता (मत-भेद), जडता और मोह छोड़े तथा तर्कयुक्त विचार से लोककल्याण को पुष्ट करे।।७।। सत्यार्थी अहंकार छोड़ कर विश्व के सब विद्वानों का मान करे तथा विवेक द्वारा सदा सब तरफ से शुभ ज्ञान प्राप्त करे।।८।। सर्वज्ञतावाद, जड़ता, दम्भ (पाखंड, कपट, अभिमान), तथा मत्सर (डाह, क्रोध, द्वेष) छोड़ कर विवेकपूर्वक अपने राष्ट्र के ज्ञान, आचार और संस्कृति का तथा विश्व के संचित ज्ञान और विज्ञान का अध्ययन किया जाय तथा यत्नपूर्वक युक्ति, कल्याण तथा सदादर्शों से युक्त ज्ञान पुष्ट किया जाय।।९-१०।। बालक से भी तर्कयुक्त वचन ग्रहण किये जाँय, शत्रु के भी गुण ग्रहण करने योग्य हैं। गुरु के दुर्गुण त्याज्य हैं।।११।। समता और न्याय पर आधृत, लोककल्याण से युक्त तथा चरित्र और उत्कर्ष से सम्पन्न ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है।।१२।।

---

१. योगवाशिष्ठ २.१८.३   २. कामन्दकनीतिसार

भारतीय विद्वानों ने सत्य के महत्त्व की ओर बार बार हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। भृगु कहते हैं—

सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं विसृजते प्रजाः ।
सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति[१] ।।

सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही तप है, सत्य ही प्रजा की सृष्टि करता है, सत्य से संसार टिका है, सत्य से मनुष्य स्वर्ग जाता है।

भीष्म कहते हैं—

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम् ।
सत्येन विधृतं सर्वं सर्वे सत्यं प्रतिष्ठितम्[२] ।।

सत्य बोलना शुभ है, सत्य से बढ़ कर कुछ नहीं है। सत्य से ही सब कुछ धारण किया हुआ है, सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है।

नारद कहते हैं—

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं सुदुष्करम् ।
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं ब्रवीम्यहम्[३] ।।

सत्य बोलना श्रेयस्कर है, पर सत्य का यथार्थ ज्ञान कठिन है। मैं तो उसीको सत्य कहता हूँ, जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित होता हो।

भीष्म कहते हैं—

सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम् ।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्बं सत्ये प्रतिष्ठितम्[४] ।।

सत्य ही धर्म, तप और योग है, सत्य ही सनातन ब्रह्म है। सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है। सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है।

वे यह भी कहते हैं—

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।
स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत्[५] ।।

सत्य से बड़ा धर्म नहीं है और झूठ से बड़ा पाप नहीं है। सत्य ही धर्म का आधार है, इस लिये सत्य का लोप न करे।

---

१. महा. शान्तिपर्व १९०.१
२. महा. शान्तिपर्व २५९.१०
३. महा. शान्तिपर्व २८७.५२०
४. महा. शान्तिपर्व १६२.५
५. महा. शान्तिपर्व १६२.२४

समाजो मानवश्च

समं जना अजन्त्यस्मिन् समाजः परिकीर्त्यते ।
सौहार्दं सङ्गतिः प्रीतिः समत्वं तस्य सद्गुणाः ।।१९।।

सङ्गासक्तिमनुष्याणां गुणो नैसर्गिकः स्मृतः ।
सौहार्द-सङ्गति-प्राणो नरः सामाजिकः स्मृतः ।।२०।।

समाजे वै समुत्पन्नः समाजस्थितिनिर्मितः ।
लोककल्याणनिर्माता नरः सामाजिकः स्मृतः ।।२१।।

समाजे हि पुमान् शान्तिं ज्ञानोत्कर्षौ च विन्दति ।
समाजश्च नृणामेव पौरुषाद्धि प्रवर्धते ।।२२।।

सर्वेषामुन्नतेर्मूलं समष्टिहितभावना ।
कुर्यात् स जनकल्याणं लोकसङ्गति-संस्कृती ।।२३।।

नरः कर्ता च भोक्ता च साधनं साध्य-साधकौ ।
लोकात्मोत्कर्ष-कल्याणे तस्य जीवनसत्पथः ।।२४।।

बुद्धि-भाव-क्रिया-युक्तं प्रगतेः क्षमतायुतम् ।
समष्टि-स्नेह-सम्पन्नं मानवं जीवनं शुभम् ।।२५।।

व्यक्ति-लोक-समुत्कर्षो राष्ट्रोत्थानाय कल्पते ।
तस्मात्तयोः समुत्थाने प्रयत्नं कुरुते सुधीः ।।२६।।

जिसमें सब लोग साथ रहते हैं, वह समाज है। सौहार्द, मेल, प्रेम और समता उसके सद्गुण हैं।।१९।। संग में लगन मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। सौहार्द और संसर्ग से अनुप्राणित मनुष्य सामाजिक है।।२०।। समाज में जन्मा, समाज की स्थिति से रचा हुआ तथा लोक-कल्याण का निर्माण करने वाला मानव सामाजिक है।।२१।। समाज में ही मनुष्य शान्ति, ज्ञान और उत्कर्ष प्राप्त करता है और मनुष्यों के पौरुष से ही समाज की वृद्धि होती है।।२२।। समाजहित की भावना सबकी उन्नति का आधार है। वह जनता के कल्याण तथा सामाजिक मेल और संस्कृति को बढ़ाती है।।२३।। मनुष्य कर्ता, भोक्ता, साधक और साध्य है । संसार का तथा अपना कल्याण और उत्कर्ष उसके जीवन का सन्मार्ग है।।२४।।

बुद्धि, भाव, कर्मशक्ति से युक्त, प्रगति की क्षमता से सज्जित तथा समाज से स्नेह रखने वाला मानव-जीवन शुभ है।।२५।। राष्ट्र के उत्थान के लिये व्यक्ति और समाज

समाजो मानवो नूनं स्थितावन्योन्यसंश्रयात् ।
तयोरेव समायोगात् क्षेमोत्कर्षौ समृद्ध्यतः ।।२७।।

व्यक्तित्वं च समाजत्वमुभे जीवनसद्गुणौ ।
तयोः सहविकासेन ह्युत्कर्षं पद्यते नरः ।।२८।।

दोनों के समुचित उत्कर्ष की कल्पना (रचना, विचार) की जाती है । इसलिए दोनों के उत्थान के लिए बुद्धिमान् प्रयत्न करते हैं।।२६।। समाज और मानव एक दूसरे के आश्रय से स्थित है, उन दोनों के संयोग से कल्याण और उत्कर्ष की वृद्धि होती है।।२७।। व्यक्तित्व और समाजत्व (समाज भावना) दोनों ही जीवन के सद्गुण हैं । उन दोनों के साथ साथ विकास से मनुष्य उत्कर्ष प्राप्त करता है।।२८।।

व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध के प्रश्न पर चिर काल से कई विचार-धाराएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् व्यक्ति को समाज का मूलाधार स्वीकार करते हुए व्यक्तिवाद पुष्ट करते हैं। उनके विचार में समाज व्यक्ति का समूह है, प्रत्येक मनुष्य स्वतः उद्देश्य-स्वरूप है, व्यक्तिगत प्रेरणाएँ और निजी स्वार्थ ही सामाजिक प्रक्रियाओं का मूल स्रोत है, व्यक्तिगत हितों की उपलब्धि में रुकावटों को दूर करना ही सामाजिक व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य है। दूसरी तरफ कुछ विद्वान् व्यक्ति के बजाय समष्टि की प्रधानता स्वीकार करते हुए समष्टिवाद को पुष्ट करते हैं। ये विचारक व्यक्ति को समष्टि का अवयव समझते हैं। व्यक्तिगत मानस को लोक मानस की कृति मानते हैं। इनके मत से समष्टि के उद्देश्य की सिद्धि ही व्यक्ति की वृत्ति हैं। कुछ दूसरे विद्वान् व्यक्ति और समष्टि दोनों का महत्त्व स्वीकार करते हैं, दोनों को अपनी गति, प्रगति के लिए अन्योन्याश्रित समझते हैं। समाज के समस्त व्यापार को मानव और समाज दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम मानते हैं। इनके विचार में व्यक्ति और समाज दोनों साधन, साधक और साध्य हैं। दोनों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उनकी मर्यादाओं में सामञ्जस्य स्थापित करना और दोनों के लिए अभिव्यक्ति और विकास का अधिकार स्वीकार करना वे आवश्यक समझते हैं।

महात्मा गाँधी और आचार्य नरेन्द्रदेव दोनों इस तीसरी धारणा को स्वीकार करते हैं। इस पुस्तक में भी इसे ही मान्यता दी गयी है। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने भी समष्टि और व्यष्टि दोनों का महत्त्व स्वीकार किया है। जहाँ आत्मज्ञान और आत्मसिद्धि जीवन का ध्येय बताया गया है, वहाँ समाज की मर्यादाओं का आदर और पालन तथा सब के साथ आत्मौपम्य व्यवहार और समाज की निष्काम सेवा व्यक्ति का पुनीत कर्तव्य निर्धारित किया गया है।

मनुष्यत्वम्

मनुष्यत्वं मनुष्याणां स्वभावस्य गुणोत्तमः ।
मनुष्यत्व-विहीनो वै पशुतुल्यो नरः स्मृतः ।।२९।।

मनुष्यत्वं परं तत्त्वं नृणां जीवन-गौरवम् ।
सर्वमानव-मानुष्यं पूजनीयं प्रकीर्त्यते ।।३०।।

औदार्यं विश्वबन्धुत्वं समत्वं न्यायनिष्ठता ।
मानवानां हिते प्रीतिर्मनुष्यत्वस्य सद्गुणाः ।।३१।।

समाजिकत्व-मानुष्ये नृणां नैसर्गिकौ गुणौ ।
तयोः सहविकासो वै कल्याणोत्कर्षकारणम् ।।३२।।

सामाजिक-मनुष्यत्वं विधत्ते प्रीति-सङ्गती ।
समष्टि-व्यष्टि-संयोगं लोकात्मोत्कर्ष-मङ्गले ।।३३।।

औदार्यं स्वार्थनिर्मुक्तं सौजन्यं समतायुतम् ।
व्यक्तित्वं मित्रतायुक्तं विश्वबन्धुत्वभावनाम् ।।३४।।

यो नरः परिपुष्णाति सर्वमानव-सङ्गतिम् ।
विधत्ते विश्वकल्याणं विश्वबन्धुः स उच्यते ।।३५।।

तपन्ते विश्वतापेन विश्वाराधन-तत्पराः ।
विश्वं विमोचन्त्येव ह्याधिपत्याच्च सर्वथा ।।३६।।

मनुष्यता मनुष्यों के स्वभाव का उत्तम गुण है। मनुष्यता से रहित मनुष्य पशु के समान है।।२९।। मनुष्यता परम तत्त्व है, मनुष्यों के जीवन का गौरव है। सभी मनुष्यों की मनुष्यता आदरयोग्य है।।३०।। उदारता, विश्वबन्धुत्व, समता, न्याय के प्रति दृढ़ निष्ठा, मानवमात्र के हित में अभिरुचि मनुष्यता के सद्गुण हैं।३१।। सामाजिकता और मनुष्यता मनुष्यों के नैसर्गिक गुण हैं। उनका विकास ही कल्याण और उत्कर्ष का कारण है।।३२।। सामाजिक मनुष्यता प्रेम और मेल को, समाज के और व्यक्ति के सम्बन्ध को, व्यक्ति और समाज के कल्याण और आनन्द को, स्वार्थ से रहित उदारता को, समता से सम्पन्न सौजन्य को, मित्रता की भावना से युक्त व्यक्तित्व को, तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को बढ़ाता है।।३३-३४।। जो मनुष्य सब मनुष्यों की संहति पुष्ट करता है और विश्वकल्याण की वृद्धि करता है, वह विश्वबन्धु कहलाता है।।३५।। विश्व की आराधना (सेवा) में तत्पर लोग संसार के सन्ताप से तप्त होते हैं और संसार को आधिपत्य से छुड़ाते हैं।।३६।।

भारतीय विद्वानों ने मानव जीवन का महत्त्व स्वीकार किया है। भीष्मपर्व में कहा गया है—"मनुष्या जगति श्रेष्ठा:"[१] संसार में मनुष्य श्रेष्ठ हैं। शान्तिपर्व के अन्तर्गत हंस-गीता में कहा गया है—"न मनुष्याच्छ्रेष्ठतरं किञ्चित्"[२] मनुष्य से श्रेष्ठतर कोई नहीं है। शान्तिपर्व में पराशर कहते हैं—

उपभोगैरपि त्यक्तं नात्मानं सादयेन्नर: ।
चाण्डालत्वेऽपि मानुष्यं सर्वथा तात शोभनम्[३] ।।

इयं हि योनि: प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते ।
आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभि: शुभलक्षणै:[४] ।।

तात ! उपभोग के साधनों से वंचित होने पर मनुष्य अपने आपको हीन न समझे। चाण्डाल की योनि में भी मनुष्य-जीवन सर्वथा उत्तम है। राजन् ! मनुष्य की योनि ही वह अद्वितीय योनि है, जिसे पाकर शुभ कार्यों द्वारा आत्मा का उद्धार किया जा सकता है।

भारतीय विद्वानों ने मनुष्ययोनि को कर्मयोनि माना है। इस योनि में मनुष्य अपने पुराने कर्मों का फल ही नहीं भोगता, वरन् अपने कर्मों द्वारा पाप-पुण्य का अर्जन भी करता है, इसी योनि में प्रारब्ध कर्मो का फल भोगते हुए, नये सत्कर्मों द्वारा अनारब्ध कर्मों से छुटकारा पाकर मनुष्य सद्गति प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मज्ञान और मोक्ष की सिद्धि मनुष्ययोनि में ही सम्भव है। शास्त्रकारों के अनुसार दीन-हीन भी भगवद्भक्ति द्वारा भगवान् का प्रिय बन सकता है। 'हर को भजे सो हर का होई, जातपाँत पूछे नहि कोई। पुण्य कर्मों द्वारा मनुष्य 'वर्णोत्कर्ष' और द्विजत्व प्राप्त कर सकता है। महाभारत के वनपर्व में कहा गया है—"वृत्तेन हि भवेद् द्विज:"[५]। सदाचार से ही द्विज होता है। अन्यत्र कहा गया है—"वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नर: पुण्येन कर्मणा"। पुण्य कर्म से मनुष्य वर्ण में उत्कृष्ट हो जाता है। शिवपुराण आदि में कहा गया है कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी मन्त्र-दीक्षा द्वारा द्विजत्व प्राप्त कर सकता है।

प्राणिमात्र, विशेषत: मनुष्यों के साथ मनुष्यता का व्यवहार मनुष्य का पुनीत कर्तव्य है। महामना मालवीय जी की धारणा है कि मनुष्य के पशुत्व को मनुष्यत्व में परिणत करना ही ईश्वर का ईश्वरत्व है[६]। आधुनिक युग की आवश्यकताओं और मान्यताओं के सन्दर्भ में मनुष्यता से सम्बद्ध सिद्धान्तों और विचारों का विकास और उन पर सामाजिक व्यवस्थाओं और व्यवहारों का निर्धारण नितान्त आवश्यक है।।

---

१. महा. भीष्मपर्व १२१.३
२. महा. शान्तिपर्व २९९.२०
३. वहीं, २९७.३१
४. वहीं २९७.३२
५. महा. वनपर्व २१५.१२
६. मालवीय जी का लेख।

समत्वम्

मानवत्वे समत्वे च विश्वासो दृढनिष्ठया।
आस्तिक्यं कीर्तितं सद्भः सर्वोत्कर्ष-प्रसाधनम् ।।३७।।

मानवत्वं समत्वं च ह्यन्योन्योत्तमलक्षणम्।
तयोरेव सुसंयोगः प्रगतिक्षेमकारणम् ।।३८।।

समतायां मनुष्यत्वे विश्वासो दृढनिष्ठया।
लग्नत्वं लोकसेवायां जीवनोत्कर्षसाधनम् ।।३९।।

समत्वं वै परं ज्ञानं परं शीलं परं तपः।
ईशस्याराधनं ध्यानं समत्वं योग उच्यते[1] ।।४०।।

समत्वाराधनं श्रेयो विधत्ते सर्वमङ्गलम्।
समाजिकत्व-सन्न्यायौ मानुष्यं विश्वबन्धुताम् ।।४१।।

समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्[2]।
येषामात्मसमो लोको दुर्गाण्यतितरन्ति ते[3] ।।४२।।

आत्मतुल्यो मनुष्यत्व-सत्य-सौहार्द-सम्भृतः।
निष्पक्षो व्यवहारो वै समभावस्य सद्गुणः ।।४३।।

मानवता और समता में दृढ़ निष्ठा से भरा विश्वास सज्जनों द्वारा आस्तिकता कहलाती है। वह सबके उत्कर्ष का साधन है।।३७।। मानवता और समता एक दूसरे के उत्तम लक्षण हैं । उनका अच्छा संयोग (सम्बन्ध) प्रगति और कल्याण का कारण है।।३८।। समता और मनुष्यता में दृढ़ श्रद्धा के साथ विश्वास तथा लोकसेवा में लगन जीवन के उत्कर्ष के साधन हैं।।३९।। समता श्रेष्ठ ज्ञान, श्रेष्ठ शील, श्रेष्ठ तप, ईश्वर की आराधना और ध्यान है। समता योग कहा जाता है।।४०।। समता की आराधना, अर्थात् उसका पालन कल्याणकारी है। वह सबका मंगल तथा सामाजिकता, मनुष्यता, न्याय और विश्वबन्धुता बढ़ाता है।।४१।। चिह्नों के बजाय सब प्राणियों में समभाव ही धर्म का कारण है। जो लोक को अपने समान समझते हैं, वे कष्टों, दुःखों से छूट जाते हैं।।४२।। मनुष्यता,सत्य और सौहार्द से सम्पन्न अपने समान निष्पक्ष व्यवहार ही समभाव का सद्गुण है।।४३।। अपने समान ही सब मनुष्यों में भी मनुष्यता विद्यमान

---

१. श्रीमद्भगवद्गीता २.४८ २. मनुस्मृति ६.६६

३. महा. शान्तिपर्व ११०.१६

आत्मनीव मनुष्यत्वं नृषु सर्वेष्वपि स्थितम् ।
एवं ज्ञात्वा समो भूत्वा समाचरति सज्जनः ।।४४।।

आत्मौपम्येन[1] सर्वत्र समं पश्येन्नरोत्तमः ।
न तत् परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः[2] ।।४५।।

शोषणातङ्क-निर्मुक्त-राष्ट्र-निर्माण-तत्परः ।
संलग्नो दलितोत्थाने लोकन्यायसुसिद्धये ।।४६।।

रतः सिद्धौ समत्वस्य समाजे स्वीयजीवने ।
विश्वकल्याणसंलग्नः समत्वार्थी प्रकीर्तितः ।।४७।।

सुधीः समत्वसंसिद्ध्यै समाजोत्कर्षहेतवे ।
रहितं वर्गसङ्घर्षात् समाजं स्थापयेत् समम् ।।४८।।

है, ऐसा जान कर समभाव के साथ सज्जन आचरण करता है।।४४।। उत्तम पुरुष सब स्थितियों में अपनी उपमा से सबको समान देखे। दूसरों के प्रति वह काम न किया जाय, जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे, तो हमें बुरा लगे।।४५।। शोषण और आतंक से निर्मुक्त राष्ट्र के निर्माण में तत्पर, लोकन्याय की सिद्धि के लिए दलितों के उत्थान में संलग्न, समाज और अपने जीवन में समत्व की सिद्धि में रत तथा विश्वकल्याण में संलग्न समत्वार्थी कहलाता है।।४६-४७।। समत्व की सिद्धि और समाज के उत्कर्ष के निमित्त सज्जन वर्गसंघर्ष से रहित समसमाज की स्थापना करे।।४८।।

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने समत्व की सिद्धि और आराधना को मानव का जीवन-ध्येय निर्धारित किया है। उनके विचार में समत्व की सिद्धि ही जीवन-सिद्धि है, वही मानव का सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है। ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग और कर्मयोग सबने इसे स्वीकार किया है और सभी ने अपने अपने ढंग पर समत्व की आराधना को समत्व की सिद्धि का उपाय बताया है। विष्णुपुराण में प्रह्लाद कहते हैं— "समत्वमाराधनमच्युतस्य" समता ही भगवान् की आराधना है। श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः[3] ।।

हे अर्जुन! जो अपने समान ही सर्वत्र सबका सुख दुःख देखता है, वह परम योगी है।

---

१. भगवद्गीता ६.३२ २. महा. अनुशासनपर्व. ११३.८

३. महा. शान्तिपर्व ६.३२

लोकतन्त्रम्

स्वराज्यं समतायुक्तं लोकतन्त्र-विभूषितम् ।
नराधिकार-सम्पन्नं न्याययुक्तं शिवं स्मृतम् ।।४९।।

जनशक्तिः समाजस्य शक्तेर्वै मूलकारणम् ।
जनशक्त्याधृतं राज्यं लोकतान्त्रिकमुच्यते ।।५०।।

वयस्क-मत-संसृष्टं लोकतन्त्रं परं स्मृतम् ।
विधत्ते राष्ट्रकल्याणं नृणां स्वातन्त्र्य-गौरवे ।।५१।।

भीष्म युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं—'समः सर्वेषु भूतेषु मैत्रायणगतिश्चरेत्'[१] *सब प्राणियों में समभाव रखते हुए सबके साथ मित्रवत् व्यवहार करो ।*

वेदव्यास धर्म की व्याख्या करते हुए कहते हैं—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" जो व्यवहार तुमको अपने प्रतिकूल दिखाई दे, उस तरह का व्यवहार दूसरों के साथ न किया जाय।

महाभारत के शान्तिपर्व में शुक्र कहते हैं—

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्म सम्पद्यते तदा[२] *।।*

जब भूतात्मा सब प्राणियों में अपने को और अपने में सब प्राणियों को देखता है, तब वह ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः[३] *।।*

जिसके देह में जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम, जाति के कारण अहंभाव नहीं है, वही ईश्वर को प्यारा है।

समता से युक्त, लोकतन्त्र से विभूषित, मानव अधिकारों से सम्पन्न, न्याय से समन्वित स्वराज्य कल्याणकारी है।।४९।। जनशक्ति ही समाज की शक्ति का मूल कारण है। जनता की शक्ति पर आधारित राज्य लोकतन्त्र है।।५०।। वयस्क मत पर आधारित लोकतन्त्र श्रेष्ठ है। वह राष्ट्र का कल्याण करता है तथा मानव के अधिकार और गौरव को बढ़ाता है।।५१।। स्वतन्त्रता, देशबन्धुता, समता, सहकारिता, मनुष्यों

---

१. महा. शान्तिपर्व १६०.२७ २. महा. शान्तिपर्व २३९.२१
३. भागवत ११.२.५१

स्वातन्त्र्यं देशबन्धुत्वं समत्वं सहकारिता ।
नराधिकार-सन्न्यायौ लोकतन्त्रस्य सद्गुणाः ।।५२।।

समता-सहितो न्यायो जीवनस्याभिरक्षणम् ।
स्वातन्त्र्यं सहयोगस्य विचारस्य च संस्कृतेः ।।५३।।

सौविध्यं लोकयात्रायै चानन्दोत्कर्षसाधनम् ।
श्रममानवयोर्मानो ह्यधिकारा नृणां स्मृताः ।।५४।।

के अधिकार और न्याय लोकतन्त्र के सद्गुण हैं।।५२।। समता से युक्त न्याय, जीवन की रक्षा, सहयोग तथा विचार और संस्कृति की स्वतन्त्रता, जीवन निर्वाह की सुविधा, आनन्द और उत्कर्ष के साधन, मानव श्रम और मानव व्यक्तित्व का संमान मनुष्यों के अधिकार हैं।।५३-५४।।

इंगलिस्तान के प्रसिद्ध विद्वान् जान लाक आदि के विचार में मनुष्य कतिपय अधिकारों को लेकर समाज में प्रवेश करता है। उसके ये अधिकार प्राकृतिक हैं, उन्हें मान्यता प्रदान करना और उसकी रक्षा करना समाज और राज्य का कर्तव्य है। पर जेन आस्टिन आदि बहुत से विद्वानों की राय में मानव के अधिकार राज्य की आज्ञा पर आश्रित हैं। राज्य कानून द्वारा जिस स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान करता है, वही मानव अधिकार है। दूसरे बहुत से विद्वानों के विचार में मानव अधिकार का आदिस्रोत राज्य के बजाय समाज है। अधिकार की उत्पत्ति समाज में ही हुई, समाज में ही उसे सबसे पहले मान्यता मिली। इस बात को स्वीकार करते हुए जहाँ कुछ विद्वान् मानव अधिकार के लिए समाज की मान्यता ही पर्याप्त समझते हैं, वहीं कुछ विद्वान् राज्य की मान्यता भी आवश्यक समझते हैं। प्रोफेसर हेरल्ड लास्की, हावहाऊस आदि विद्वानों के विचार में सामान्य हित (कामन गुड) व्यक्तिगत अधिकारों का स्रोत है, अधिकार सामाजिक हित का तत्त्व है, सामाजिक हित के विरुद्ध कोई व्यक्तिगत नैतिक अधिकार नहीं है। हावहाऊस स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति के अधिकार व्यक्तित्व पर आधारित हैं, व्यक्ति के उत्कर्ष की शर्त है, पर वे ही कहते हैं कि व्यक्ति स्वयं सामान्य हित में एक तत्त्व है और इसी कारण उसके अधिकार को मान्यता प्राप्त है।

प्रो. लास्की आदि कतिपय विद्वान् प्राकृतिक अधिकार का एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि मानव अधिकार सामाजिक है, उनका उद्गम समाज में होता है, उनका सामाजिक लक्ष्य है, सामाजिक हित की पुष्टि उनका विशिष्ट गुण है, समाज के अनुरूप ही उनका स्वरूप होता है। अच्छे समाज में समाज-हित से सम्बद्ध मानव अधिकार समाज और राज्य दोनों द्वारा स्वीकार होते ही हैं, पर

नूनमुत्तरदायित्वमधिकारस्य लक्षणम् ।
लोककल्याण-संवृद्धिस्तस्य कर्तव्यमुच्यते ।।५५।।

कर्तव्यमधिकारश्च तिष्ठतोऽन्योन्यसंश्रये ।
तयोरेव समायोगो राष्ट्रोत्कर्षस्य कारणम् ।।५६।।

लोकात्मोत्कर्ष-संसिद्ध्यै समताक्षेमसिद्धये ।
राष्ट्र-स्वातन्त्र्य-रक्षायै सत्य-मानुष्य-वृद्धये ।।५७।।

सेवायै सर्वजीवानां पुष्ट्यर्थं शीलसंस्कृतेः ।
न्यायानुप्राणितं कार्यं कर्तव्यं परिकीर्तितम् ।।५८।।

उनका नैतिक अस्तित्व समाज की स्वीकृति के बजाय उनके अपने निहित गुणों पर आश्रित है। वे मानव अधिकार हैं, क्योंकि वे सामाजिक हित की वृद्धि और व्यक्ति की स्वतन्त्रता, अभिवृद्धि और उत्कर्ष के लिए आवश्यक हैं। इस अर्थ में वे प्राकृतिक तथा नैसर्गिक हैं और उनकी मान्यता के लिए समाज में संघर्ष किया जा सकता है।

कतिपय विद्वान् सम्पत्ति के अधिकार को प्राकृतिक मानते हैं। कुछ विद्वान् भूमि को प्रकृति का सर्वसुलभ दान मानते हैं और उस पर व्यक्ति के निजी स्वामित्व को गलत समझते हैं, पर अन्य प्रकार की सम्पत्ति पर व्यक्ति के मौलिक अधिकार की रक्षा राज्य का कर्तव्य मानते हैं। अन्य बहुत से आधुनिक विद्वान् मानव-जीवन और नागरिक स्वतन्त्रताओं जैसी मान्यता सम्पत्ति को देने के लिए तैयार नहीं है। उनके विचार में मानव-जीवन और व्यक्तित्व का सम्बन्ध सम्पत्ति के बजाय जीविका और जीवन-उत्कर्ष के साधनों से है। इस पुस्तक के लेखक ने इसी विचार को मान्यता दी है।

निःसन्देह उत्तरदायित्व अधिकार का लक्षण है। लोककल्याण की वृद्धि उसका कर्तव्य है।।५५।। कर्तव्य और अधिकार एक दूसरे पर आश्रित हैं । उन दोनों का सम्बन्ध-सहयोग राष्ट्र के उत्कर्ष का कारण है।।५६।। समाज और अपने उत्कर्ष की सिद्धि के लिए, समता और कल्याण की सिद्धि के लिए, राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए, सत्य और मनुष्यता की वृद्धि के लिए, सब जीवों की सेवा के लिए, शील और संस्कृति की पुष्टि के लिए न्याय से अनुप्राणित कार्य कर्तव्य हैं।।५७-५८।।

कर्तव्य और अधिकार के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए कुछ विद्वान् कहते हैं कि अधिकार-व्यवस्था जहाँ एक व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्रदान करती है, वहीं वह उस स्वतन्त्रता पर दूसरे व्यक्तियों की स्वतन्त्रता के आदर तथा संरक्षण का प्रतिबन्ध या कर्तव्य लागू करती है। कुछ विद्वानों के विचार में अधिकार और कर्तव्य का सम्बन्ध इससे कहीं अधिक घनिष्ठ है। उनके विचार में कर्तव्य अधिकार का अविच्छिन्न अंग

स्वतन्त्रो न्यायसन्निष्ठो राष्ट्रकर्तव्यतत्परः ।
सदाचारः समः सौम्यः सदादर्शः सदाशयः ।।५९।।

देशभक्तः प्रगत्यर्थी लोकात्मोत्कर्षतत्परः ।
तितिक्षुर्मतभेदे यः स स्मृतो लोकतान्त्रिकः ।।६०।।

मताधिकारसम्पन्ना जनता विधिपूर्वकम् ।
कल्याणार्थाय राष्ट्रस्य स्वाधिकारं प्रयोजयेत् ।।६१।।

है। स्वतन्त्रता-सम्पन्न व्यक्ति ही समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन कर सकता है, समाज की अभिवृद्धि में पूर्ण रूप से अपना योगदान कर सकता है। अधिकार और स्वतन्त्रता का उद्देश्य मानव को अपने विकास तथा आनन्द के निमित्त स्वच्छन्द परिस्थिति और सुविधा प्रदान करना ही नहीं है, बल्कि उसमें ऐसी क्षमता भी पैदा करना है कि वह समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सके, समाज से सम्बद्ध अपने कर्तव्य अपनी इच्छा से पूरा कर सके। गाँधी जी तो कर्तव्य को अधिकार का मूलाधार मानते थे। उनके विचार में अधिकार कर्तव्य से प्रवाहित होते हैं। कर्तव्य का समुचित पालन ही उनका उद्देश्य है। कर्तव्यहीन अधिकार तो अत्याचार है।

पाश्चात्य अधिकांश आधुनिक विद्वान् समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को ही कर्तव्य में शामिल करते हैं। पर प्रोफेसर हावहाऊस आदि कतिपय विद्वान् अपने जीवन के उत्कर्ष के प्रति व्यक्ति के उत्तरदायित्व को भी मानव का कर्तव्य समझते हैं, अर्थात् उनके विचार में सौहार्दपूर्ण व्यवहार, समाज-कल्याण तथा जीवनोत्कर्ष सम्बन्धी नियमों का पालन कर्तव्य हैं। कर्तव्य की यह व्यापक व्याख्या ही भारतीय विद्वान् स्वीकार कर सकते हैं, यही उनकी पुरानी परम्परा के अनुकूल है।

स्वतन्त्रता और न्याय में विश्वास और श्रद्धा रखने वाला, राष्ट्र कर्तव्यों के पालन में संलग्न, सदाचारी, समभावी, सौम्य, अच्छे आदर्श और अच्छे मन्तव्यों से युक्त देशभक्त, प्रगतिशील, समाज और अपने उत्कर्ष में तत्पर, मतभेद में सहनशील व्यक्ति लोकतान्त्रिक है।।५९-६०।।

लोकतान्त्रिक समाज के सब व्यक्तियों के लिए इन सब गुणों से सम्पन्न होना सम्भव नहीं है। पर इन आदर्शों को सामने रखना और यथासम्भव उन्हें जीवन में आत्मसात् करना लोकतान्त्रिक कार्यकर्ताओं और नेताओं का कर्तव्य अवश्य है। लोकतन्त्र को ठीक तौर पर चलाने के लिए उच्च कोटि का लोकतान्त्रिक जीवन अपेक्षित है।

वोट देने के अधिकार से सम्पन्न जनता निश्चित व्यवस्था और कार्य प्रणाली के अनुसार राष्ट्र के कल्याण के निमित्त अपने अधिकारों का प्रयोग करे, भद्रता और क्षमता

कुर्याल्लोकसभासभ्यान् भद्रता-क्षमता-युतान् ।
देशबन्धुत्व-सन्निष्ठान् न्याय-कर्तव्य-निष्ठितान्।।६२।।

रुन्ध्याद् वर्गदलाधिप्यं सेनाधिप्यं च शोषणम् ।
रक्षेच्च सम्यगादर्शं लोकतन्त्रस्य मान्यताम् ।।६३।।

सभायां सत्यसन्निष्ठः समष्टि-स्नेह-सम्मतः ।
निर्भीको न्यासितानिष्ठो निपुणो न्यायनीतिषु ।।६४।।

प्रगति-प्राणितः प्राज्ञो लोकज्ञो लोकतान्त्रिकः ।
सदाचारः सदादर्शः कीर्तितः श्रेष्ठसांसदः ।।६५।।

सभायां हितसङ्कल्पः सद्बुद्धिर्भद्रता यमः ।
राष्ट्रकल्याण-सम्पुष्टिर्लोकन्यायानुवर्तनम् ।।६६।।

वाक्यं प्रस्तावसंसक्तं युक्तिक्षेमनयान्वितम् ।
तितिक्षा मतभेदेषु लोकशीलं प्रशस्यते ।।६७।।

से युक्त, देशबन्धुत्व तथा न्याय और कर्तव्य में निष्ठावान् व्यक्तियों को लोकसभा आदि विधायिकाओं का सदस्य बनाएँ, वर्ग तथा दल और सेना के आधिपत्य और शोषण का प्रतिरोध करें तथा लोकतन्त्र के सही आदर्शों और मान्यताओं की रक्षा करें।।६१-६३।।

नृपतन्त्र के समर्थक कहते थे कि यथा राजा तथा प्रजा। लोकतन्त्र में जनता राजनीतिक शक्ति का स्रोत है और इसलिए कहा जा सकता है कि यथा जनता तथा लोकतन्त्र। लोकतान्त्रिक व्यवस्था तभी ठीक चल सकती है, जब जनता जागरूक हो, लोकतन्त्र की मान्यताओं की रक्षा तथा लोकतन्त्र-विरोधी शक्तियों का प्रतिरोध अपना कर्तव्य समझे और कर्तव्य में तथा समाजहित में अधिकारों का प्रयोग करने को तैयार हो।

जो व्यक्ति समाज में सत्यनिष्ठ, अर्थात् सत्य के पालन में संलग्न है और जो समाज-प्रेम से सम्पन्न, निर्भीक, न्यासिता की भावना से कार्य में संलग्न, न्याय-नीति में निपुण, प्रगति की भावना से अनुप्राणित, बुद्धिमान्, लोक की स्थिति का जानकार, लोकतान्त्रिक, सदाचारी तथा अच्छे विचारों और मन्तव्यों से सम्पन्न है, वह श्रेष्ठ सांसद और विधायक है।।६४-६५।। सभा में हितवृद्धि की प्रतिज्ञा, सद्बुद्धि, भद्रता, संयम, राष्ट्रकल्याण की पुष्टि, लोकन्याय का अनुसरण, प्रस्ताव से सम्बद्ध तथा तर्क, कल्याण और आदर्श से युक्त वाक्य, मतभेदों में सहनशीलता लोकशील कहलाता है।।६६-६७।। राष्ट्र-कर्तव्य के पालन में संलग्न, लोकशील से सम्पन्न, अच्छे विचार और मन्तव्य से युक्त सांसद और विधायक दमन, आतंक, क्रूरता, अन्याय और शोषण का प्रतिरोध

राष्ट्रकर्तव्यसन्निष्ठो लोकशीलः सदाशयः।
रुन्धीत दमनातङ्के क्रौर्यमन्यायशोषणे।।६८।।

शोधयेद् विधिवैकल्यं दोषपूर्णगतिस्थिती।
संवर्धयेज्जनक्षेमं राष्ट्रोत्कर्षं जगद्धितम्।।६९।।

सभ्यो लोकसभां गत्वा समाचरति भद्रताम्।
सेवते लोकतन्त्रस्य मर्यादां मान्यतां नयम्।।७०।।

प्रपुष्णाति स्वपक्षस्य सार्वलौकिकधारणाः।
शृणोति परपक्षस्य गुणदोषनिरूपणम्।।७१।।

अनुव्रजति दाक्ष्येण स्वप्रतिज्ञां हितान्विताम्।
भजते सत्प्रयत्नेन सन्न्यायं जनताहितम्।।७२।।

लोकज्ञो लोकनीतज्ञो राज्यं पण्यं न कारयेत्[1]।
यत् कल्याणमभिध्यायेत् तत्रात्मानं नियोजयेत्[2]।।७३।।

जनेभ्यो राष्ट्रसेवायै प्रेरणां यद् ददाति तत्।
लोकतान्त्रिकनेतृत्वं विद्वद्भिः परिकीर्तितम्।।७४।।

कृत्वाऽनुप्राणितं लोकं विवेकादर्शपौरुषैः।
पदाकाङ्क्षां निराकृत्य नेता कल्याणमाचरेत्।।७५।।

करे, कानून की खराबियों तथा दोषपूर्ण सामाजिक गतिविधि और स्थिति का सुधार करे एवं जनता का कल्याण, राष्ट्र का उत्कर्ष और संसार का हित बढ़ाये।।६८-६९।। सभ्य (सांसद और विधायक) लोकसभा आदि विधायिकाओं में जाकर भद्रता का आचरण करता है, लोकतन्त्र की मर्यादा, मान्यता, व्यवहार और आदर्श का पालन करता है, अपने पक्ष को सार्वलौकिक धारणाओं से पुष्ट करता है, दूसरे पक्ष द्वारा की गयी अच्छी-बुरी समीक्षा सुनता है, जनहितकारी अपनी प्रतिज्ञा दक्षता के साथ पूरी करता है तथा अच्छे प्रयत्नों द्वारा न्याय और जनता के हित का अनुष्ठान करता है।।७०-७२।। लोक की स्थिति और लोकनीति का जानकार राज्य के कार्य में सौदेबाजी न करे। जिसमें कल्याण समझे उसमें अपने को लगाये।।७३।। जो राष्ट्र की सेवा के लिए जनता को प्रेरणा देता है, वह विद्वानों द्वारा लोकतान्त्रिक नेतृत्व कहलाता है।।७४।। अपने विवेक, आदर्श और पौरुष से लोगों को अनुप्राणित कर, पद की आकांक्षा छोड़ कर नेता कल्याण का

---

१. महा. शान्तिपर्व २४.२६   २. महा. शान्तिपर्व ९४.१०

जनतायास्तु दुर्भावं दुर्मतिं यः प्रपुष्यति ।
स भ्रंशयति मर्यादां जनता-लोकतन्त्रयोः ।।७६।।

पुष्ट्यर्थं लोकतन्त्रस्य शिक्षयेत् सर्वराष्ट्रिकान् ।
लोकतन्त्रस्य सिद्धान्ते मान्यतायां च पद्धतौ ।।७७।।

अर्थाश्चैवाधिगम्यन्ते सङ्घात-बल-पौरुषैः[1] ।
तस्मात् सङ्घातयोगेन प्रयतेरन् गणाः सदा[2] ।।७८।।

कुरुते जनकल्याणं सुराज्यं प्रगतिप्रियम् ।
रक्षणं रञ्जनं सेवा प्रजायास्तस्य सद्गुणाः ।।७९।।

व्यवस्था शान्तिकल्याणे जनतोत्कर्षवर्धनम् ।
सुख-सौविध्य-संवृद्धिः सुराज्यस्य गुणाः स्मृताः ।।८०।।

मन्त्रिणो न्यासिताभाव-विवेकोत्साह-पौरुषैः ।
भजेयुर्जनकल्याणं राष्ट्रोत्कर्षं जगद्धितम् ।।८१।।

पश्येयू राज्यकर्माणि रक्षेयू राष्ट्रगौरवम् ।
कुर्वीरन् लोककल्याणं न्यायाश्रितप्रशासनम् ।।८२।।

मायादम्भेन्द्रजालानि परित्यज्य प्रयत्नतः ।
निष्पक्ष-मति-भावाभ्यां शासको न्यायमाचरेत् ।।८३।।

आचरण करे।।७५।। जो व्यक्ति जनता की दुर्भावनाओं और अनुचित विचारों को पुष्ट करता है, वह जनता और लोकतन्त्र की मर्यादाओं को भ्रष्ट करता है।।७६।। लोकतन्त्र की पुष्टि के निमित्त सब नागरिकों को लोकतन्त्र के सिद्धान्तों, मान्यताओं और पद्धति से परिशिक्षित किया जाय।।७७।। सामूहिक बल-पौरुष से सब प्रकार के अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है। अत: गण सदा संघबद्ध हो प्रयत्न करे।।७८।। प्रगतिशील अच्छा राज्य जनकल्याण करता है। प्रजा की रक्षा, रंजन (प्रसन्नता, सन्तुष्टि) और सेवा उसके सद्गुण हैं।।७९।। व्यवस्था, शान्ति, कल्याण, जनता के उत्कर्ष की वृद्धि, सुख-सुविधा की वृद्धि अच्छे राज्य के गुण कहलाते हैं।।८०।। मन्त्री लोग न्यासिता की भावना, विवेक, उत्साह और पौरुष से जनता के कल्याण, राष्ट्र के उत्कर्ष और संसार के हित का अनुष्ठान करें, राज्य के कार्यों की देखभाल करें, राष्ट्र के गौरव की रक्षा करें, लोक कल्याण और न्याय पर आश्रित शासन करें।।८१-८२।। शासक प्रयत्नपूर्वक माया,

---

१. महा. शान्तिपर्व १०७.१५   २. महा. शान्तिपर्व १०७.२४

शासकानामधीकाराः कर्तव्येन नियन्त्रिताः ।
कर्तव्यस्य प्रपूर्तिर्हि तेषां लक्ष्यमुदाहृतम् ।।८४।।

मन्त्रिणः संसदो योगो नियतं हितकारकः ।
विधत्ते जनकल्याणं व्यवस्थां राष्ट्रवैभवम् ।।८५।।

राष्ट्रकल्याण-पुष्ट्यर्थं राष्ट्रिकाश्चैव सांसदाः ।
मन्त्रिणां सर्वकार्याणां समीक्षां कुर्वतेऽनिशम् ।।८६।।

मन्त्रित्वाद्धि निराकृत्य मन्त्रिणं गुणवर्जितम् ।
न्याय-कर्तव्य-सन्निष्ठं गुणवन्तं नियोजयेत् ।।८७।।

दम्भ और इन्द्रजाल को छोड़कर निष्पक्षता के साथ न्याय का अनुसरण करें।।८३।। शासकों के अधिकार कर्तव्य से नियन्त्रित हैं। कर्तव्य का पालन ही उनका उद्देश्य है।।८४।। मन्त्रियों और सांसदों का सहयोग निश्चित ही लाभदायक है। वह जनता का कल्याण, व्यवस्था और राष्ट्र का वैभव बढ़ाता है।।८५।। राष्ट्रकल्याण की पुष्टि के निमित्त नागरिक, सांसद (विधायक) मन्त्रियों के सब कार्यों की निरन्तर समीक्षा करते हैं।।८६।। गुणरहित मन्त्रियों को मन्त्रिपद से हटा कर न्याय और कर्तव्य में निष्ठावान् गुणी व्यक्तियों को इस काम में लगाया जाय।।८७।।

नृपतन्त्र और सामन्तशाही के समर्थक लोकतन्त्र को 'अयोग्यता का पथ' कहते थे, औद्योगिक वर्ग लोकतन्त्र को राजनीतिक क्षेत्र में सीमित रखना चाहते थे। वे वयस्क मताधिकार को हानिकर तथा धन-सम्पत्ति के आधार पर मताधिकार का निर्धारण ठीक समझते थे और वे इस तरह राज्याधिकार को सम्पन्न वर्ग के हाथ में सुनिश्चित रखना चाहते थे। श्रमिक वर्ग ने सम्पन्न वर्ग की इन धारणाओं का डट कर विरोध किया और काफी लम्बे संघर्ष के बाद वयस्क मताधिकार लोकतन्त्र का प्रमुख सिद्धान्त स्वीकार किया जाने लगा तथा लोकतान्त्रिक राज्य ने कल्याण राज्य का रूप किसी हद तक धारण कर लिया। पर आन्तरिक संघर्ष घटने के बजाय अधिक तीव्र हो गया। उग्रपंथी मजदूर दल की बढ़ती हुई शक्ति से घबड़ा कर उदारदलीय औद्योगिक वर्ग ने कुछ देशों में अनुदारदलीय सामन्तशाही शक्तियों से गठबन्धन करना और कुछ देशों में लोकतन्त्रविरोधी शक्तियों का समर्थन करना अपने हित में समझा। उनके ये प्रयास किसी हद तक सफल हुए। इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्पेन, पुर्तगाल आदि देशों में लोकतान्त्रिक व्यवस्था के स्थान पर दलीय अधिनायकत्व स्थापित हो गये तथा न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया आदि देशों में सम्पन्न वर्गों की संयुक्त शक्ति ने चुनावों में मजदूर दल को हरा कर राज्यसत्ता पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उधर सोवियत यूनियन

आदि कम्युनिस्ट देशों में सर्वहारा के अधिनायकत्व के नाम पर कम्युनिस्ट पार्टियों ने अपना दलीय आधिपत्य कायम कर लिया। इण्डोनेशिया आदि कतिपय देशों में सैनिक आधिपत्य स्थापित हो गये। यद्यपि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली में फिर से लोकतान्त्रिक शासन स्थापित हो गये हैं और सोवियत यूनियन आदि कम्युनिस्ट देशों में दलीय आधिपत्य को लोकतान्त्रिक स्वरूप दिया जा रहा है, पर पूर्वी यूरोप का तथाकथित जनवादी लोकतन्त्र सर्वहारा के अधिनायकत्व, दलीय आधिपत्य का ही एक रूप है। अफ्रीका के कतिपय देशों में भी किसी न किसी प्रकार का अधिनायकत्व कायम हो गया है। ईरान में इस्लामी शासन के नाम पर लोकतान्त्रिक शक्तियों का गला घोटा जा रहा है। इस तरह से लोकतन्त्र के लिए वर्गाधिपत्य, सेनाधिपत्य तथा दलाधिपत्य को भारी खतरे हैं और इनका डट कर मुकाबला करना लोकतान्त्रिक शक्तियों का परम कर्तव्य है। उधर प्रजातिवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद, धर्मान्धता, आक्रमणशील राष्ट्रीय भावनाएँ भी लोकतान्त्रिक जीवन को विषाक्त कर रही हैं। लोकतान्त्रिक व्यवस्था को अच्छी तौर पर प्रतिष्ठित करने के लिए व्यापक देशबन्धुत्व की भावना पर आश्रित तथा विश्व-कल्याण की कामना से अनुप्राणित उदार राष्ट्रीयता का संचार और प्रसार नितान्त आवश्यक है।

राज्य का कार्यक्षेत्र बढ़ता चला जा रहा है। उसे नित नये उत्तरदायित्व ग्रहण करने पड़ रहे हैं। उनके संचालन के लिए कर्तव्यपरायण क्षमतासम्पन्न नागरिकों और संचालकों की आवश्यकता है। जनता की शक्ति ही लोकतन्त्र का मूल आधार है। उनकी क्षमता और कर्तव्यपरायणता पर ही लोकतन्त्र का भविष्य निर्भर है। नागरिकों की क्षमता को विकसित करना, उनको लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और मर्यादाओं में प्रशिक्षित करना, देश की समस्याओं को समझने की उनमें क्षमता पैदा करना, उन्हें सही अर्थों में लोकतान्त्रिक नागरिक बनाना लोकतन्त्र की प्रगति के लिए आवश्यक है।

गाँधीजी चाहते थे कि भारतीय राजनीतिज्ञ सत्यनिष्ठ हों, सत्य की कसौटी पर विपक्षी के विचारों को परखें, सत्य पर अपनी नीति-रीति, कार्यक्रम आधृत करें, जनहित की वृद्धि और न्याय को सब सार्वजनिक कार्यों की कसौटी समझें। वही करें, जिससे सामाजिक न्याय की रक्षा और वृद्धि हो। उनके विचार में न्याय का राज्य ही स्वराज्य है।

गाँधीजी कहते थे कि जनता का आधिपत्य शुद्ध नैतिक प्रभुत्व[१] पर आधारित होना चाहिए। उन्हें अपने को भारत का सेवक[२] समझ सेवा की भावना[३] से भारत के हित में स्वतन्त्रता, आत्मानुशासन[४] और साहस के साथ अपने लोकतान्त्रिक कर्तव्यों और

१. हरिजन २.१.१९३७
२. हरिजन ७.९.१९४७
३. हरिजन ७.९.१९४७
४. आत्मकथा, अंग्रेजी पृ. ३६९

समः समाजः

समत्वं लोकतन्त्रं च स्यादन्योन्यगुणोत्तमः ।
सर्वक्षेत्रेषु तद्वृद्धिः समताया गुणो भवेत् ।।८८।।

सेनावर्गदलाधिप्यं साम्राज्यं परतन्त्रता ।
नूनं समसमाजस्य सर्वथा प्रतिरोधिनः ।।८९।।

सर्वस्वातन्त्र्य-सम्पन्नः समष्टि-स्नेह-सम्भृतः ।
सज्जितः सहयोगेभ्यो मैत्रीमानुष्यमण्डितः ।।९०।।

अधिकारों का प्रयोग करना चाहिए। सर्वोच्च प्रकार की स्वतन्त्रता में सर्वाधिक अनुशासन और नम्रता निहित होती है[१]। न्यासिता (ट्रस्टीशिप) की भावना से अनुप्राणित नागरिक, कार्यकर्ता, सांसद और शासनाधिकारी ही अपने लोकतान्त्रिक उत्तरदायित्व को ठीक तौर पर वहन कर सकते हैं।

गाँधीजी कहते थे कि स्वस्थ असन्तोष उन्नति का मंगलाचरण है[२]। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की समीक्षा जनता की सतर्कता का सुखद चिह्न है[३]। नियन्त्रित आन्दोलन राष्ट्रीय विकास की शर्त है[४]। वे चाहते थे कि दुष्कर्मों की सच्ची और निर्भीक समीक्षा की जाय[५], दमन और निरंकुशता के विरुद्ध नागरिक स्वतन्त्रताओं और सामाजिक न्याय की रक्षा की जाय[६]। पर वे कहते थे कि लोकतान्त्रिक आन्दोलन और हुल्लड़वाजी में भी भारी अन्तर है[७]। लोकतन्त्र भीड़तन्त्र में विकृत न किया जाय[८], लोकतन्त्रवादी को अपनी या अपने दल की दृष्टि से नहीं, बल्कि एकमात्र लोकतन्त्र की दृष्टि से सब कुछ सोचना चाहिए। तभी वह सविनय अवज्ञा का अधिकारी हो सकता है[९]।

समता और लोकतन्त्र एक दूसरे के उत्तम गुण बनें। सब क्षेत्रों में लोकतन्त्र की वृद्धि समता का गुण हो।८८।। सेना, वर्ग और दल का आधिपत्य, साम्राज्य तथा परतन्त्रता और क्रूरता सर्वथा समसमाज के प्रतिरोधक हैं, विरोधी हैं।।८९।। सर्वविध स्वतन्त्रता से सम्पन्न, समष्टि के स्नेह से युक्त, सहकारिता से सज्जित, मैत्री और मनुष्यता

---

१. यंग इंडिया ३.६.१९२६
२. यंग इंडिया १.८.१९२९
३. यंग इंडिया ७.५.१९३१
४. यंग इंडिया १९१९-१९२२, पृ. ८४
५. यंग इंडिया १९२४-१९२६. पृ. १७
६. हरिजन १३.११.१९३७
७. यंग इंडिया १९१९-१९२२, पृ. ८४
८. यंग इंडिया १.१२.१९२७
९. हरिजन २७.५.१९३९

लोकार्थ-लोकतन्त्राभ्यां लोकन्यायेन नोदितः ।
श्रमिक-श्री-शिवायुक्तः समाजः सम उच्यते ।।९१।।

लोके समसमाजो वै सर्वश्रेष्ठः प्रकीर्तितः ।
स्वराज्यं समताराज्यं स्वैच्छिकी सहकारिता ।।९२।।

शोषणातङ्कनिर्मुक्तिर्जनताक्षेमविस्तृतिः ।
श्रमजीवनसम्मानः सौहार्दं तस्य सद्गुणाः ।।९३।।

प्रथा समसमाजस्य लोककल्याणसंश्रिता ।
विनाशयति वैषम्यं हितसङ्घर्ष-शोषणे ।।९४।।

प्रतिष्ठापयते न्यायं श्रमिकाणां च गौरवम् ।
संवर्धयति सौभ्रात्रं राष्ट्रोत्कर्षं नृमङ्गलम् ।।९५।।

समे समाजे श्रमिकाः प्राप्नुवन्ति नृगौरवम् ।
जीविकोत्कर्ष-सौविध्यं जीवनानन्द-साधनम् ।।९६।।

नराधिकार-सम्मानौ लोकतान्त्रिक-भद्रताम् ।
राष्ट्र-निर्माण-सामर्थ्यं स्वातन्त्र्यं समतायुतम् ।।९७।।

समे समाजे सुजनाः सेवन्ते सहजं समम् ।
सर्वोत्थानं समोत्कर्षं सौभ्रात्रं सहकारिताम् ।।९८।।

से सम्पन्न, लोकहित तथा लोकतन्त्र और लोकन्याय से प्रेरित, श्रमिकों की श्री (विभूति, गौरव, कीर्ति) तथा शिव (सुख, कल्याण) से संयुक्त समाज समसमाज है।।९०-९२।। संसार में समसमाज ही सर्वश्रेष्ठ है। स्वराज्य, समताराज्य, स्वेच्छिक सहकार, शोषण और आतंक से छुटकारा, जनता के कल्याण का विस्तार, श्रमिक जीवन का संमान, सौहार्द उसके सद्गुण हैं।।९२-९३।। लोककल्याण पर आश्रित समसमाज की प्रथा विषमता, हितसंघर्ष और शोषण नष्ट करती है, न्याय और श्रमिकों का गौरव प्रतिष्ठित करती है, सौभ्रात्र तथा राष्ट्र का उत्कर्ष और जनता का मंगल बढ़ाती है।।९४-९५।। समसमाज में श्रमिक मानव-गौरव, जीविका और उत्कर्ष की सुविधाएँ, जीवन के आनन्द के साधन, मानव-अधिकार, सम्मान, लोकतान्त्रिक भद्रता, राष्ट्र निर्माण की क्षमता तथा समतायुक्त स्वतन्त्रता प्राप्त करता है।।९६-९७।। समसमाज में सज्जन सहज रूप से समता, सबका उत्थान, सर्वांगीण उत्कर्ष, सौहार्द और सहकारिता का पालन करते हैं। प्रयत्नपूर्वक न्याय, लोकतन्त्र, कल्याण और उत्कर्ष की सुविधा तथा राष्ट्र की सम्पत्ति,

वर्धयन्ति प्रयत्नेन सन्न्यायं लोकतन्त्रकम्।
कल्याणोत्कर्ष-सौविध्यं राष्ट्र-रै-क्षेम-संस्कृतीः ।।९९।।

समे समाजे सुजनः समाचरति भद्रताम्।
भजते राष्ट्रकल्याणं समतान्याय-संश्रितम् ।।१००।।

लोकतन्त्रसमायुक्ते समाजे समता-स्थिते।
लोकसेवा समोत्कर्षः स्वातन्त्र्यं सहकारिता ।।१०१।।

लोकन्यायस्य सम्पुष्टिः सौजन्यं साम्यसंयमौ।
लोकार्थस्य सुसंवृद्धिः संस्कृतिः समुदाहृता ।।१०२।।

क्रान्तिः समसमाजस्य मानवीया प्रकीर्तिता।
समतान्यायमानुष्ये तस्या वै नैतिका गुणाः ।।१०३।।

तनुते समता-राज्यं लोकतान्त्रिकमार्थिकम्।
संस्कृतिं स्नेह-सौहार्द-स्वातन्त्र्य-समतान्विताम् ।।१०४।।

लोके समसमाजो वै जीवनोत्कर्ष-हेतुकः।
मनुष्यास्तत्र पद्यन्ते समता-सिद्धि-साधनम् ।।१०५।।

जीवन्ति सहयोगेन जीवनं समतायुतम्।
समष्टि-स्नेह-सम्पन्नं मैत्री-मानुष्य-मण्डितम् ।।१०६।।

कल्याण और संस्कृति बढ़ाते हैं।।९८-९९।। समसमाज में सज्जन भद्रता का आचरण करता है तथा समता और न्याय पर राष्ट्रकल्याण का अनुष्ठान करता है।।१००।। लोकतन्त्र से समन्वित समता पर स्थित समाज में लोकसेवा, सबका सर्वांगीण उत्कर्ष, स्वतन्त्रता, सहकारिता, लोकन्याय की पुष्टि, सौजन्य, समता, संयम, लोकहित की वृद्धि संस्कृति कहलाती है, अर्थात् संस्कृति के ये महत्त्वपूर्ण तत्त्व होते हैं।।१०१-१०२।। समसमाज की क्रान्ति मानवीय है। समता तथा न्याय और मनुष्यता उसके सद्गुण हैं। वह समता का राज्य, लोकतान्त्रिक और आर्थिक व्यवस्था का तथा स्नेह-सौहार्द, स्वतन्त्रता से समन्वित संस्कृति का विस्तार करती है।।१०३-१०४।। संसार में समसमाज निःसन्देह जीवन के उत्कर्ष का उपकरण है। उसमें मनुष्य समता की सिद्धि का साधन प्राप्त करता है तथा समष्टि के स्नेह से सम्पन्न, मैत्री और मनुष्यता से अलंकृत, समता से युक्त जीवन सहयोगपूर्वक व्यतीत करता है।।१०५-१०६।।

रोजा लुकजमवर्ग और आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे समाजवादी नेताओं ने तथा महात्मा गाँधी ने समसमाज के नैतिक और सांस्कृतिक पक्ष पर काफी जोर दिया है। उनकी धारणा

है कि भौतिक अभ्युदय के साथ साथ मनुष्यत्व का विकास समसमाज का लक्ष्य है। उसका एकमात्र उद्देश्य आर्थिक व्यवस्था का नवनिर्माण करना तथा सभी लोगों को शोषण-विहीन जीवन बिताने की सुविधा पहुँचाना ही नहीं है, वह तो एक ऐसी संस्कृति का विकास करना चाहता है, जो समता, स्वतन्त्रता, सहकारिता, भातृत्व, सामाजिक न्याय, लोककल्याण पर आधृत हो, जिसमें मानव-व्यक्तित्व के साथ साथ मानव-श्रम का सम्मान हो, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को संचित सांस्कृतिक उपलब्धियों से अपने जीवन को आनन्दमय और सुसंस्कृत बनाने की सुविधा प्राप्त हो, मानव के पारस्परिक सम्बन्ध समतामूलक सौहार्द पर आधृत हों, सबको अपने जीवन के सर्वांगीण विकास तथा उत्कर्ष के लिए समुचित अवसर और सुविधाएँ प्राप्त हों। समाजवाद श्रम और संस्कृति के समन्वित विकास पर विश्वास करता है। अभ्युदय के भौतिक साधनों के उत्पादन में संलग्न श्रमिकों के सांस्कृतिक विकास पर ध्यान देना, वह समाज का विशेष कर्तव्य समझता है।

गाँधीजी की समसमाज की कल्पना आर्थिक कारणों से कहीं अधिक नैतिक कारणों पर आधृत थी। वे कहते थे कि वही व्यवस्था सर्वोत्तम है, जिसके द्वारा मानव अपने सद्गुणों की रक्षा करते हुए अपने जीवननिर्वाह और जनकल्याण की वृद्धि करता है। उनके विचार में जनकल्याण ही नैतिकता का मूल मन्त्र है। वे लोभ पर आश्रित होड के विरोधी थे, क्योंकि उनके विचार में वह शोषण, छलकपट, विद्वेष, ईर्ष्या, अहंवाद आदि दुर्गुणों को बढ़ाती है और मानव के पारस्परिक सम्बन्धों को विषाक्त कर देती है। वे यह भी कहते थे कि समाज के बहुत से आदमियों के सहयोग से संचित सम्पत्ति को मुख्यत: अपने लाभ के लिए प्रयोग करने का किसी को नैतिक अधिकार नहीं है[१]। वे वर्गहीन समाज का आदर्श नैतिक कारणों से स्वीकार करना और उसके लिए प्रयत्न करना सर्वथा उचित समझते थे[२]।

वे चाहते थे कि जमींदार और पूँजीपति न्यासिता की भावना से अनुप्राणित हों तथा किसान, मजदूर और समाज के हित में न्यासी की हैसियत से अपनी सम्पत्ति का संचालन करें। पर जब वे लोग उसके लिए तैयार नहीं हुए, तब गाँधी जी ने समसमाज की स्थापना के निमित्त उनके अधिकारों को समाप्त करने का समर्थन किया। वे चाहते थे कि समाजवाद और समसमाज के समर्थक कार्यकर्ता स्वयं अपने जीवन में उनके नैतिक आदर्शों को आत्मसात् करें।

समसमाज में मनुष्य को समता की अनुभूति स्वयं नहीं होती। उसकी सिद्धि के लिए उसे प्रयत्न करना होता है, निष्काम भाव से समाज की सेवा करनी होती है, समता की भावना से अपने शील, व्यवहार और कृत्यों को अनुप्राणित करना होता है । विषमता

---

१. हरिजन १६.१२.१९४५ २. हरिजन १७.१.१९४६

आर्थिकव्यवस्था

श्रमिक-क्षेम-सम्पन्नं समत्वेन समन्वितम्।
भूषितं जनकल्याणैः समाजोत्कर्षसंयुतम्।।१०७।।

न्यासिता-भाव-संयुक्तं शोषणाधिप्यनिर्गतम्।
आर्थिकं संविधानं हि सर्वश्रेष्ठमुदाहृतम्।।१०८।।

अहिंसा-समता-युक्ते न्यासिता सहकारिता।
पुष्यतो राष्ट्रकल्याणं श्रमिकक्षेमगौरवे।।१०९।।

सर्वेभ्यः श्रमसौगम्यं जीविकायाश्च साधनम्।
जीवनोत्कर्ष-सौविध्यं कृषक-क्षेम-विस्तृतिः।।११०।।

श्रमिकाणां समुत्थानं स्वैच्छिकी सहयोगिता।
लोककल्याण-संसृष्टा उद्योगाः सार्वलौकिकाः।।१११।।

समाजोत्कर्ष-संवृद्धिर्विकासः समतान्वितः।
कल्याणमुपभोक्तृणां चार्थतन्त्रस्य सद्गुणाः।।११२।।

से परिपूर्ण समाज में तो इन सब बातों के साथ साथ उसे विषमता, वैमनस्य, दम्भ, द्वेष तथा अन्याय से संघर्ष करना पड़ता है और इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए उसे चरित्र को सुधारना जरूरी हो जाता है। आचार्य नरेन्द्रदेव कहा करते थे कि समाजवाद की लड़ाई मजदूर वर्ग के नैतिक उत्कर्ष की अपेक्षा करती है। वे चाहते थे कि कार्यकर्ता अपने जीवन को जनता के जीवन से आत्मसात् कर उनकी निष्काम सेवा करे।

श्रमिकों के कल्याण से सम्पन्न, समता से युक्त, जनकल्याण से विभूषित, सामाजिक उत्कर्ष से समन्वित, न्यासिता की भावना से प्रेरित, शोषण और आधिपत्य की भावना से रहित आर्थिक व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ है।।१०७-१०८।। अहिंसा और समता से युक्त न्यासिता और सहकारिता राष्ट्रकल्याण को तथा श्रमिकों के कल्याण और गौरव को परिपुष्ट करती है।।१०९।। सबके लिए श्रम की सुगमता, जीविका का साधन, जीवन के उत्कर्ष की सुविधाएँ, किसानों के कल्याण का विस्तार, श्रमिकों का उत्थान और उद्योगों के संचालन और प्रबन्धन में उनकी स्वैच्छिक सहभागिता, लोककल्याण पर निर्मित सार्वलौकिक उद्योग, समाज के उत्कर्ष की सम्यक् वृद्धि, समतोन्मुख विकास और उपभोक्ताओं का कल्याण आर्थिक व्यवस्था के सद्गुण हैं, अर्थात् इन गुणों से सम्पन्न आर्थिक व्यवस्था उत्तम है।।११०-११२।। धनिकों का आर्थिक आधिपत्य जनता के हित का

धनिनामार्थिकाधिप्यं जनता-हित-घातकम् ।
विलीनीकरणं तस्य सर्वलोकहितात्मकम् ।।११३।।

मानुष्य-समता-सिद्ध्यै समाजोत्कर्षहेतवे ।
श्रमिक-क्षेम-संवृद्ध्यै लोकन्यायसुसिद्धये ।।११४।।

समाजो विपुलोद्योग-व्यापाराणां प्रयत्नतः ।
समाजीकरणं कृत्वा समाजं स्थापयेत् समम् ।।११५।।

समाजीकृतमुद्योगं सम्पूर्णार्थिक-जीवनम् ।
सर्वलोक-हितार्थाय सञ्चालयति राष्ट्रिकः ।।११६।।

कृषकक्षेमवृद्ध्यर्थं शास्ता च जनसेवकः ।
पुष्यतो यत्नतो ग्रामे कृषिं वै सहयोगिकाम् ।।११७।।

उद्योगकृषि-सौविध्यं वृत्तिं शोषणनिर्गताम् ।
जीवनं समतायुक्तं सर्वसौहार्द-संयुतम् ।।११८।।

घातक है, उसका विलीनीकरण सब लोगों के हित में है।।११३।। मनुष्यता और समता की सिद्धि के लिए, समाज के उत्कर्ष के लिए, श्रमिकों के कल्याण की वृद्धि के लिए तथा लोकन्याय की सिद्धि के लिए समाज बड़े बड़े उद्योगों और व्यापारों का समाजीकरण करके समसमाज स्थापित करे।।११४-११५।। राष्ट्रिक (नागरिक और शासक) समाजीकृत उद्योग और सम्पूर्ण आर्थिक जीवन का संचालन सब लोगों की हितवृद्धि के लिए करता है, अर्थात् सबका कल्याण ही आर्थिक जीवन का लक्ष्य है।।११६।। किसानों के कल्याण की हितवृद्धि के लिए शासक और लोकसेवक गाँव में सहयोगिक खेती, उद्योग और खेती से सम्बद्ध सुविधाओं को तथा शोषणरहित जीविका एवं सबके साथ सौहार्द से युक्त समता के जीवन को पुष्ट करे।।११७-११८।।

गाँधी जी स्पर्धा की नीति को अनैतिक और 'सहकारिता' के सिद्धान्त पर आश्रित व्यवस्था को 'अहिंसात्मक' मानवीय समझते थे[१]। वे चाहते थे कि गाँवों में जहाँ तक सम्भव हो, सब काम सहकारिता के आधार पर किये जाये[२]। जमीन मालिकों द्वारा सहकारिता में धारण की जाय और सहकारिता में जोती बोई जाय...मालिक सहकारिता में काम करेंगे और सहकारिता में पूंजी, औजारों और बीज आदि के मालिक होंगे[३]।

---

१. हरिजन १२.२.१९४२ २. हरिजन २६.७.१९४२

३. हरिजन ९.३.१९४७

यथाशक्ति श्रमः पुंसां कर्तव्यं परिलक्ष्यते।
जीविकोत्कर्ष-सौविध्यमधिकारो नृणां स्मृतः।।११९।।
आलस्यं सर्वथा त्यक्त्वा न्यायेनैव प्रयत्नतः।
मानवो लोकयात्रार्थं लोकार्थं धनमर्जयेत्।।१२०।।
जीविकायै धनं सर्वः सद्यत्नेन समर्जयेत्।
अधिकं यदि सामर्थ्यं तल्लोकेभ्यः समर्पयेत्।।१२१।।
सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्[1]।
न्यायागतं धनं[2] चैव देयं भोग्यं च सर्वथा।।१२२।।
कुटुम्बं जीवितं वित्तं यदसत्येन वर्धते।
तथापि सत्यमारक्षेत् सर्वदा न्यायमाचरेत्[3]।।१२३।।

यथाशक्ति श्रम मनुष्यों का कर्तव्य है। जीविका और उत्कर्ष की सुविधा मनुष्यों का अधिकार है।।११९।। आलस्य बिल्कुल छोड़ कर न्याय से प्रयत्नपूर्वक जीवन-निर्वाह और लोकहित के लिए मनुष्य धन कमाये।।१२०।। सत्प्रयत्नों द्वारा जीविका के लिए धन कमाया जाय। यदि अधिक सामर्थ्य हो, तो उसे लोगों के हित में समर्पित किया जाय।।१२१।। सब प्रकार के शौचों में आर्थिक शौच श्रेष्ठ है। न्याय से प्राप्त धन का ही दान और उपभोग किया जाय।।१२२।। यदि असत्य से कुटुम्ब, जीवन और धन की वृद्धि होती है, तो भी सत्य की रक्षा की जाय, सदा न्याय का आचरण किया जाय।।१२३।।

स्थिर स्वार्थों के समर्थक निजी सम्पत्ति के समाजीकरण का विरोध करते हैं। वे उसे अन्याय समझते हैं। उनके विचार में सम्पत्ति मानव-व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है, सम्पत्ति का अधिकार मानवजीवन से सम्बद्ध अन्य अधिकारों की तरह नैसर्गिक है, निजी सम्पत्ति का अपहरण मानव-व्यक्तित्व को खंडित करता है। उनके विचार में सम्पत्ति का संग्रह मानव-स्वभाव का गुण है। इसके उत्तर में समाजवाद के समर्थकों का कहना है कि मानव-अधिकारों की उत्पत्ति समाज में होती है, सामाजिक परिस्थिति और मान्यताओं के साथ साथ उनमें भी परिवर्तन होता है। सम्पत्ति तो एकमात्र सामाजिक संस्था है, वह तो सामाजिक व्यवस्था पर आश्रित है और उसकी व्यवस्था समय समय पर बदलती रहती है। सम्पत्ति की मान्यता की तुलना व्यक्तित्व की मान्यता से नहीं की जा सकती।

---

१. मनुस्मृति ५.१०६   २. महा. शान्तिपर्व २९.२-४

३. ज्ञानार्णव।

व्यक्तित्वम्

व्यक्तित्वं समतासिद्धं प्रगतेः क्षमता-युतम् ।
मण्डितं मानवत्वेन लोकात्मोत्कर्षतत्परम् ।।१२४।।

न्यासिता-भाव-सम्पन्नं न्याय-पौरुष-संयुतम् ।
समे समाजे सुजनैः श्रेष्ठं व्यक्तित्वमुच्यते ।।१२५।।

जहाँ सम्पत्ति एक भौतिक साधन है। सम्पत्ति के बजाय मानव व्यक्तित्व के आदर और संरक्षण का अंग है। उसका तिरस्कार और अपहरण ही मानव-व्यक्तित्व को खंडित करता है। लोभ पर आश्रित सामाजिक व्यवस्था में मानव श्रम के बजाय सम्पत्ति का आदर करता है। जहाँ सम्पत्ति के अधिकारों का संरक्षण होता है, वहाँ श्रमिकों के श्रम का शोषण होता है। श्रमिकों के श्रम की अभिव्यक्ति का उपभोग सुविधासम्पन्न धनवान् करते हैं। सम्पत्ति के संचय की लालसा कृत्रिम है, निजी सम्पत्ति पर आश्रित आर्थिक व्यवस्था का परिणाम है। मानव तो जीवनयात्रा की सुविधा तथा समाज में सम्मान चाहता है, जिनकी उपलब्धि जनसमूह के लिए शोषणविहीन समसमाज में अधिक सम्भव है। गाँधी जी कहते हैं कि यदि पूंजी शक्ति है, तो काम भी शक्ति है[१]। श्रम पूंजी से श्रेष्ठ है[२], अतः पूंजी को श्रम का नौकर होना चाहिए न कि मालिक[३]। वे यह भी कहते थे कि दायाद तो न्यायानुसार राष्ट्र में निहित होना चाहिए[४]। समाज के बहुत से लोगों के सहयोग से जमा किये धन को मुख्यतः व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयोग करने का किसी मनुष्य को नैतिक अधिकार नहीं है[५]। वे यह भी कहते थे कि मैं उन सभी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना चाहूँगा, जिनमें बहुत से लोग काम करते हैं, उनकी कुशल और अकुशल मेहनत से जो कुछ उत्पन्न होगा, उस पर राज्य द्वारा उन्हीं मजदूरों का स्वामित्व होगा[६]। वे यह भी कहने लगे थे कि जबकि हिंसक उपायों द्वारा ही व्यक्तियों के हाथ में पूँजी का संचय सम्भव है, अहिंसक समाज में राज्य द्वारा पूँजी का संचय सम्भव ही नहीं, बल्कि वाँछनीय और अवश्यभावी भी है[७]।

समता की भावना से सम्पन्न, प्रगति की क्षमता से युक्त, मानवता से अलंकृत, समाज और अपने उत्कर्ष में तत्पर, न्यासिता की भावना से सम्पन्न, न्याय और पौरुष से युक्त व्यक्तित्व समसमाज में सज्जनों के द्वारा श्रेष्ठ व्यक्तित्व कहा जाता है।।१२४-१२५।।

---

१. महात्मा गाँधी का संदेश पृ. ७३
२. हरिजन १९.१०.१९३५
३. हरिजन १८.१०.१९४४
४. हरिजन १३.७.१९३७
५. हरिजन १.१०.१९४६
६. महात्मा गाँधी का संदेश, पृ. ८८
७. हरिजन २७.२.१९४७

लोकस्य संग्रहार्थं यः समो भूत्वा फलं त्यजन्।
सत्कार्यं कुरुते नित्यं समत्वार्थी स वै स्मृतः ।।१२६।।

नराधिकारसम्माने यो नरः सर्वमानवान्।
मन्यते स्वात्मतुल्यान् हि समत्वार्थी स कीर्तितः ।।१२७।।

शोभितः शौर्यशीलाभ्यां विद्यावृत्तव्रतान्वितः।
भूषितो भूतिभावेन मैत्री-मानुष्य-मण्डितः ।।१२८।।

निर्भीको निरहङ्कारो न्यासिता-न्याय-निष्ठितः।
समता-सत्य-सन्निष्ठः समत्वार्थी प्रकीर्त्यते ।।१२९।।

समत्वार्थी समः सत्यः सदा सर्वोपकारकः।
जाति-वंश-पदानां च दम्भाहङ्कारनिर्गतः ।।१३०।।

प्रगति-प्राणितः प्राज्ञः सदादर्शः सदाशयः।
संलग्नः सर्वसेवायां समष्टि-हित-तत्परः ।।१३१।।

धैर्यं विपदि सेवायां रुचिरभ्युदये क्षमा।
सभायां सत्यसम्पुष्टिः सत्कार्ये सहकारिता ।।१३२।।

व्यसनं ज्ञानविज्ञाने युधि पौरुष-विक्रमौ।
लग्नत्वं विश्वकल्याणे सुधियां सद्गुणाः स्मृताः ।।१३३।।

लोकसंग्रह (लोककल्याण) के निमित्त जो व्यक्ति समभाव से युक्त होकर फल की अभिलाषा छोड़ कर नित्य सत्कार्य करता है, वही समत्वार्थी है।।१२६।। जो मनुष्य सब मनुष्यों को मानव-अधिकार और सम्मान में अपने तुल्य समझता है, वह समत्वार्थी है।।१२७।। शौर्य और शील से सुशोभित, विद्या तथा सदाचार और व्रत से समन्वित, कल्याण की भावना से विभूषित, मैत्री और मनुष्यता की भावनाओं से अलंकृत, निर्भीक, निरहंवादी, न्यासिता और न्याय में संलग्न, समता और सत्य में निष्ठावान् समत्वार्थी कहलाता है।।१२८-१२९।। समत्वार्थी वह है, जो समता की भावना से युक्त हो, सत्य का अनुसरण करता हो, सदा सबका उपकार करता हो, सबकी सेवा तथा समाज के हित में संलग्न हो।।१३०-१३१।। विपत्ति में धैर्य, सेवा में रुचि, अभ्युदय में क्षमा, सभा में सत्य की पुष्टि, सत्कर्म में सहयोग, ज्ञान-विज्ञान में व्यसन, युद्ध में पौरुष और विक्रम, विश्वकल्याण में लगन बुद्धिमान् व्यक्तियों के सद्गुण हैं।।१३२-१३३।।

राष्ट्रियत्वम्

सर्वेषां जातिधर्माणां देशबन्धुषु सङ्गतिः ।
देशभक्तिसमायुक्ता राष्ट्रियत्वमुदाहृतम् ।।१३४।।

समता श्रमिकक्षेम लोकतन्त्रं मनुष्यता ।
भावनां राष्ट्रियत्वस्य शोभयन्ते हि सद्गुणैः ।।१३५।।

समता-देशबन्धुत्व-मनुष्यत्व-समाश्रितम् ।
राष्ट्रियत्वं समुत्कृष्टं कल्याणोत्कर्षवर्धनम् ।।१३६।।

प्रजाति-धर्म-भेदेषु संसृष्टा राष्ट्रभावना ।
द्वेष-विग्रह-सम्पन्ना सङ्कीर्णा समुदाहृता ।।१३७।।

सङ्कीर्णः प्रान्तवादस्तु देशबन्धुत्वघातकः ।
देशसंहति-सौहार्द-शान्ति-प्रगति-नाशकः ।।१३८।।

जातिवादं परित्यज्य गृह्णीयाद् देशबन्धुताम् ।
देशप्रेम समोत्कर्षं जनक्षेमं विवर्धयेत् ।।१३९।।

दम्भाधिपत्य-भावाभ्यां निर्मुक्ता देशबन्धुता ।
पुष्णाति शान्ति-सौहार्दं व्यवस्थां सर्वमङ्गलम् ।।१४०।।

देशबन्धुत्वमुत्कृष्टं विश्वबन्धुत्वसाधनम् ।
देशबन्धुत्वरहितं मानवत्वमसम्भवम् ।।१४१।।

सब जातियों और धर्मों के देशबन्धुओं में देशभक्ति से युक्त ऐक्य राष्ट्रीयता कहलाती है।।१३४।। समता, श्रमिकों का कल्याण, लोकतन्त्र और मनुष्यता राष्ट्रीयता की भावना को सद्गुणों से सुशोभित करते हैं।।१३५।। समता, देशबन्धुता, मनुष्यता पर आधृत राष्ट्रीयता उत्कृष्ट है, वह कल्याण और उत्कर्ष को बढ़ाने वाली है।।१३६।। प्रजाति और धर्म के भेदों से निर्मित राष्ट्रभावना द्वेष और विद्वेष से सम्पन्न संकीर्ण होती है।। १३७।। संकीर्ण प्रान्तवाद देशबन्धुत्व का घातक है, देशप्रेम, सौहार्द, शान्ति और प्रगति का नाशक है।।१३८।। जातिवाद छोड़कर देशबन्धुता ग्रहण की जाय तथा देशप्रेम, सबका सर्वांगीण उत्कर्ष, जनता का कल्याण बढ़ाया जाय।।१३९।। दम्भ और आधिपत्य से रहित देशबन्धुत्व शान्ति, सौहार्द, व्यवस्था तथा सबका कल्याण आनन्द बढ़ाता है।।१४०।। उत्कृष्ट देशबन्धुत्व विश्वबन्धुत्व का साधन है। देशबन्धुत्व की भावना से रहित मानवता सम्भव नहीं है।।१४१।।

जिना, सावरकर आदि कतिपय नेता धर्म को राष्ट्रीयता का आधार बताते थे, पर इटली के राष्ट्रपिता मेजनी और भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी धर्म पर दृढ़ विश्वास रखते हुए भी धार्मिक विश्वासों पर आश्रित राष्ट्रीयता स्वीकार नहीं करते थे। गाँधीजी कहते थे कि धर्म राष्ट्रीयता का मापदण्ड नहीं है[१] तथा विभिन्न धर्मों के समर्थकों को परस्परविरोधी समूहों में बांटना धर्म और देश दोनों के साथ शत्रुता है[२]। देशबन्धुत्व ही राष्ट्रीयता का आधार है, हम किसी भी धर्म को मानते हों, राष्ट्रीयता के अर्थ में हम सब 'भारतीय' ही हैं[३]। हम सबको राष्ट्रीयता की भावना को, जो साम्प्रदायिकता से बड़ी है, अपने में विकसित करना चाहिए[४]।

हिटलर प्रजाति (रेस) को राष्ट्रीयता का आधार मानते थे तथा राष्ट्र के आधिपत्य का विस्तार प्रत्येक प्रतिभासम्पन्न राष्ट्र का सहज अधिकार समझते थे, पर मेजनी और गाँधी जी इन बातों को स्वीकार नहीं करते थे[५]।

भारतीय कम्यूनिस्ट भाषा को राष्ट्रीयता का आधार मानते हुए भारत को बहु भाषा-भाषी राष्ट्रों का समूह समझते हैं। गांधी जी भारतीय राष्ट्रीयता को अखण्ड रखते हुए भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्गठन का समर्थन करते थे, पर भाषा को राष्ट्रीयता का आधार मानने को वे तैयार नहीं थे। वे कहते थे कि भाषा की एकता राष्ट्रीयता की अनिवार्य परख नहीं है[६]।

इसी तरह गाँधी जी देशबन्धुत्व और देशप्रेम पर आश्रित धर्मनिरपेक्ष उदार राष्ट्रीयता का समर्थन करते थे। वे चाहते थे कि हम सब हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख, इसाई—भारतीयों की तरह मित्रभाव से रहें तथा मातृभूमि के लिए जीने मरने के लिए प्रज्ञाबद्ध हों[७]। उनका हमें आदेश था कि हम सब प्रजाति और धर्म के भेदों को नामंजूर करते हुए[८] अपने को प्रेम की रेशमी पास[९] में बाँध कर राष्ट्रीय एकता दृढ़ करें और उसके निमित्त एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक दूसरे के साथ सहयोग किया जाय, एक दूसरे के दुःखों में हिस्सा बटाया जाय और परस्पर सहिष्णुता बरती जाय[१०]। उनकी धारणा थी कि यदि प्रत्येक प्रान्त अपने को अलग सर्वसत्तासम्पन्न इकाई समझने लगेगा, तो भारत की स्वतन्त्रता अर्थहीन हो जायगी और उसके साध ही भिन्न इकाइयों की स्वतन्त्रता

१. हरिजन १९.६.१९४७
२. हरिजन ६.१०.१९४५
३. हरिजन १९.६.१९४७
४. यंग इंडिया २६.१.१९२२
५. यंग इंडिया १३.२.१९२५
६. यंग इंडिया ३०.७.१९३१
७. यंग इंडिया २३.४.१९३१
८. हरिजन १८.१.१९४८
९. हरिजन १८.१.१९४८
१०. यंग इंडिया २५.२.१९२०

भी समाप्त हो जायेगी[१]। इसलिए हमें, उनके विचार में, सब विघटनकारी प्रवृत्तियों को दृढ़ता से दबा कर अपने को भारतीय समझना चाहिए और उसके अनुरूप व्यवहार करना चाहिए'[२]। हमें संकीर्ण एकान्तिक प्रान्तीयता को छोड़ कर याद रखना चाहिए कि सब प्रान्तों के लोग भारतीय हैं और सम्पूर्ण भारत में सबके अधिकार समान हैं[३]। गाँधी जी का आग्रह था कि हम जिस प्रान्त में रहें, उसे अपना समझ कर उसकी सेवा करें, उसका शोषण न करें, वहाँ के दूसरे निवासियों के साथ स्वदेशियों की तरह रहें और उस प्रान्त के गुणों को ग्रहण करे[४]।

महामना मालवीय जी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्रदेव आदि नेता भी गाँधी जी के इन विचारों से सहमत थे। मालवीय जी चाहते थे कि देश ही समस्त देशवासियों के प्रेम और भक्ति का विषय बन जाय[५]। मतभेद, जातिभेद, वर्गभेद के होते हुए भी राष्ट्रीयता का भाव देशव्यापी हो जाय[६]। उनके विचार में राष्ट्रीयता उस भावना का नाम है, जो देश के सम्पूर्ण निवासियों के हृदय में देशहित की लालसा में व्याप्त रही हो, जिसके आगे अन्य भावों को श्रेणी नीची ही रहती हो[७]। वे कहते थे कि राष्ट्रीय सरकार और जातिगत शासन दोनों एक साथ चल नहीं सकते[८], राष्ट्रवाद और जातिवाद एक साथ ठहर नहीं सकते[९]। वे संयुक्त स्वशासित भारतीय राष्ट्र[१०] के पक्ष में थे और चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमान दोनों साथ साथ रहें और प्रेम से रहें तथा सोलह आना राष्ट्रवादी बनने का उपाय करें[११]। नरेन्द्रदेव जी कहते थे कि राष्ट्रीयता धर्म के भेदों से परे है[१२]। मौलाना आजाद भी मुत्तहिदा कौमियत (संयुक्त राष्ट्रीयता) का समर्थन करते थे[१३]।

---

१. हरिजन १.२.१९४८
२. हरिजन १.२.१९४८
३. हरिजन २१.९.१९४७
४. हरिजन ७.९.१९४७
५. हरिजन २१.९.१९४७
६. मालवीय जी के लेख, पृ. ९९
७. मालवीय जी के लेख, पृ. ९९
८. मालवीय जी के लेख, पृ. ९९
९. हिन्दू महासभा वेलगाँव अधिवेशन,
१०. इंडियन क्वार्टर्ली रजिस्टर १९२७, जि. २, पृ. २५३
११. हिन्दू महासभा १९२४ वेलगाँव अधिवेशन,
१२. मुकुटविहारी लाल, आचार्य नरेन्द्रदेव – युग और नेतृत्व
१३. मौलाना आजाद : मुसलमान और कांग्रेस

देशभक्तिः

देशभक्तिः परं शीलं विधत्ते राष्ट्रमङ्गलम्।
भक्तानां जीवनोत्कर्षं सौहार्दं देशबन्धुषु।।१४२।।

देशसेवा जनोत्कर्षः समाजक्षेमविस्तृतिः।
देशबन्धुत्वसम्पुष्टिर्देशभक्तस्य पौरुषम्।।१४३।।

देशभक्तिसमायुक्तो देशप्रीतिविभूषितः।
सन्त्यज्य स्वार्थ-दासत्वे नैराश्यं हीनभावनाम्।।१४४।।

विरुन्धेत् पारतन्त्र्यं च दमनं शोषणं भयम्।
सेवते राष्ट्रकल्याणं स्वातन्त्र्यं लोकतन्त्रकम्।।१४५।।

देशभक्तिसमायुक्तैर्मानवत्वेन मण्डितैः।
हिते मानवमात्रस्य कार्या देशसमुन्नतिः।।१४६।।

देशभक्ति श्रेष्ठ शील है। वह राष्ट्र का कल्याण, देशभक्तों के जीवन का उत्कर्ष तथा देशबन्धुओं में सौहार्द बढ़ाती है।।१४२।। देशसेवा, जनता का उत्कर्ष, समाज के कल्याण का विस्तार, देशबन्धुत्व की पुष्टि देशभक्त का पौरुष है, अर्थात् यही देशभक्त के मुख्य कार्य हैं।।१४३।। देशभक्ति से युक्त, देशकल्याण में तत्पर व्यक्ति स्वार्थ, दासता की भावना, निराशा तथा हीनभावना को छोड़ कर परतन्त्रता, दमन, शोषण, भय का विरोध करे तथा राष्ट्रकल्याण, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र को पुष्ट करे।।१४४-१४५।। देशभक्ति से सम्पन्न और मनुष्यत्व की भावना से अलंकृत व्यक्तियों द्वारा मानवमात्र के हित में देश की समुचित उन्नति की जाय।।१४६।।

देशभक्ति को धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग घोषित करते हुए महामना मालवीय जी कहते थे कि देशभक्ति का भाव हमारे हृदय से स्वार्थ को निकाल कर फेंक देगा, हम अदूरदर्शी, स्वार्थी, खुशामदियों की तरह ऐसे काम कदापि नहीं करेंगे, जिनसे देशवासियों को हानि पहुँचे, बल्कि दूरदर्शी, परमार्थी, सत्यशील तथा दृढ़ताप्रिय आत्मा की तरह असंख्य कष्ट उठाते हुए वही करेंगे, जिसमें देश का भला हो। निर्धन धनवान्, निर्बल बलवान् और मूर्ख बुद्धिमान् हो जाये, प्रत्येक प्रकार के कष्ट मिटें और दुर्भिक्ष और विपत्तियाँ दूर होकर लाखों बिलबिलाती आत्माओं को सुख मिले[1]। उनकी कामना थी कि हम सब सच्चे देशभक्त बनें, स्वार्थभक्ति छोड़कर देशभक्ति को अपनाएँ, हमारे सब सम्बन्ध देश की नींव पर स्थापित हो[2]। हम देश की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझें, देश के यश

---

१. मालवीय जी के लेख, पृ. १०१-१०२		२. वहीं, पृ. १०८

अन्ताराष्ट्रियसहयोगः

राष्ट्रं जानातु भागं वै सर्वमानवसंहतेः ।
एवं ज्ञात्वा प्रगत्यर्थी विश्वक्षेमं विवर्धयेत् ।।१४७।।

भवे मानवमात्रस्य स्वातन्त्र्यं क्षेमवर्धनम् ।
स्वातन्त्र्य-रहितं राष्ट्रं विश्वकल्याणघातकम् ।।१४८।।

साम्राज्यं पारतन्त्र्यं च विश्वसौहर्द-नाशनम् ।
स्वातन्त्र्य-समता-न्याय-नराधिकार-घातकम् ।।१४९।।

भावनामाधिपत्यस्य परित्यज्य प्रपोषयेत् ।
अन्ताराष्ट्रीय-सौहार्दं स्वातन्त्र्य-समतान्वितम् ।।१५०।।

स्वातन्त्र्य-समता-निष्ठो विश्वभाव-विभूषितः ।
रुणद्धि खलु साम्राज्यं दम्भशोषणसंयुतम् ।।१५१।।

परिपुष्णाति राष्ट्राणां स्वातन्त्र्यं लोकतान्त्रिकम् ।
सर्वमानव-सौभ्रात्रं सर्वराष्ट्रेषु सङ्गतिम् ।।१५२।।

संस्कृति-ज्ञान-विज्ञान-क्षेम-संवृद्धि-हेतवे ।
सत्यार्थी परिपुष्णाति राष्ट्राणां विश्वसंहतिम् ।।१५३।।

में अपना यश समझें, हम जो कुछ करें, सब देश के लिए हो, देश के कार्य में हम तत्पर रहें और एकाकी लगन से देश के ही ध्यान और उपासना में लगे रहें[1]।

राष्ट्र को सब मनुष्यों के समूह का भाग समझा जाय। ऐसा जान कर प्रगतिशील विश्वकल्याण की वृद्धि करे।।१४७।। संसार में मानवभाव की स्वतन्त्रता कल्याण की वृद्धि करने वाली है। स्वतन्त्रता से रहित राष्ट्र सारे विश्व के कल्याण का घातक है।।१४८।। साम्राज्य और परतन्त्रता विश्व सौहार्द का नाशक तथा समता, स्वतन्त्रता, न्याय और मनुष्यों के मौलिक अधिकारों का घातक हैं।।१४९।। आधिपत्य की भावना छोड़ कर स्वतन्त्रता और समता से युक्त अन्तरराष्ट्रीय सौहार्द परिपुष्ट किया जाय।।१५०।। स्वतन्त्रता और समता में निष्ठावान् तथा विश्वभावना से विभूषित सज्जन साम्राज्य का, जो दम्भ और शोषण से युक्त है, प्रतिरोध करते हैं तथा राष्ट्र की लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता, सब मनुष्यों में भाईचारा, सभी राष्ट्रों में मेलजोल को पुष्ट करते हैं।।१५१-१५२।। संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, कल्याण, अभ्युदय के निमित्त सत्यार्थी राष्ट्रों की एकता को पुष्ट करते

---

१. मालवीय जी के लेख, पृ. १०८

सौहार्दं सर्वराष्ट्रेषु विश्वप्रगति-हेतुकम्।
सहयोगेन राष्ट्राणां विश्वसङ्घं प्रसाधयेत्।।१५४।।
विश्वसङ्घः प्रयत्नेन मानवानां स्वतन्त्रताम्।
तेषां कल्याणमुत्कर्षं शान्तिं न्यायं च पोषयेत्।।१५५।।

हैं।।१५३।। सब राष्ट्रों में सौहार्द विश्व की प्रगति का साधन है, राष्ट्रों के सहयोग से विश्वसंघ बनाया जाय।।१५४।। विश्वसंघ प्रयत्नपूर्वक मनुष्यों की स्वतन्त्रता तथा उनके कल्याण और उत्कर्ष एवं शान्ति और न्याय को पुष्ट करे।।१५५।।

हिटलर, मुसोलिनी आदि नाजी और फासिस्ट मनोवृत्ति के लोग विश्वभावना और सर्वमानव सौहार्द के सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करते थे तथा बलपूर्वक कमजोर राष्ट्रों पर साम्राज्यिक आधिपत्य स्थापित करना क्षमतासम्पन्न राष्ट्रों का स्वाभाविक अधिकार समझते थे। वे इसे प्रगति के लिए भी लाभप्रद बताते थे। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के समर्थक बहुत से उदारदलीय नेता भी विकसित देशों के आधिपत्य का विस्तार अपने देश के लिए ही नहीं, वरन् सारे विश्व के लिए भी हितकर मानते हैं।

पर इटली के राष्ट्रपिता मेजनी और भारत के राष्ट्रपिता गाँधी जी इन विचारों से सहमत नहीं थे। वे दोनों राष्ट्र को मानव समाज का अंग स्वीकार करते थे, विश्वहित की रक्षा और वृद्धि प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र का कर्तव्य समझते थे। गाँधी जी कहते थे कि मैं उस देशभक्ति को अस्वीकार करता हूँ, जो दूसरे राष्ट्रों के कष्टों तथा शोषण के जरिये पनपना चाहती है। उस देशभक्ति का मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं, जिसका सम्पूर्ण मानवता की अधिकतम भलाई के साथ हमेशा बिना किसी अपवाद के हर मामले में मेल नहीं बैठता[१]। उनकी दृढ़ धारणा थी कि स्वराज्य प्रत्येक राष्ट्र और देश का समान अधिकार है[२]। वे चाहते थे कि प्रत्येक राष्ट्र स्वतन्त्र हो और सब मिलकर नैतिकता के आधार पर अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करें[३]। बड़े राष्ट्र साम्राज्यवादी योजनाएँ त्यागें[४] विध्वंसक यन्त्रों का प्रयोग बन्द करें[५] तथा साहस से अकेले और मिलकर निरस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करें[६]। स्थायी विश्वशान्ति[७] तथा सम्पूर्ण मानव-समाज के साथ समान व्यवहार[८] गाँधी जी के मूल मन्त्र थे। भारत के अधिकांश नेता गाँधी जी के विचारों से सहमत हैं।

---

१. यंग इंडिया ४.४.१९२९
२. यंग इंडिया १.१०.१९३१
३. हरिजन १७.११.१९४६
४. हरिजन १६.५.१९३६
५. हरिजन १६.५.१९३६
६. हरिजन २४.१२.१९३८
७. हरिजन १६.५.१९३६
८. यंग इंडिया २.९.१९२८

प्रगतिः

संसारे नैतिकादर्शो मानवः संस्कृतिः स्थितिः ।
व्यवस्था-न्याय-मर्यादाः परिणाम-गुणान्विताः ।।१५६।।
सर्वे विकास-सम्भूताः प्रगतेः क्षमतायुताः ।
प्रभावयन्ति चान्योन्यं विकसन्ति यथाक्रमम् ।।१५७।।
मानवः स्थितियोगेन सङ्घातज्ञानपौरुषैः ।
रचना-क्रान्ति-सङ्घर्षैर्विधत्ते प्रगतिं शुभाम् ।।१५८।।
सङ्घशक्तिर्महाशक्तिर्निर्बलानां परं बलम् ।
श्रमिकः सङ्घयोगेन नाशयेत् शोषणं भयम् ।।१५९।।
वर्गाधिप्यमहंवादं प्रयत्नेन विनाशयेत् ।
जनजागृतिकल्याणे जनानन्दं विवर्धयेत् ।।१६०।।
श्रमिकोत्थानसम्मानं समाजोत्कर्षमुद्वहेत् ।
स्थापयेल्लोकतन्त्रं च समाजं समतास्थितम् ।।१६१।।

अब अन्तरराष्ट्रीय सहयोग की बात स्वीकार की जाने लगी है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद लीग आफ नेशंस और दूसरे विश्वयुद्ध के बाद युनाइटेड नेशंस के नाम से विश्वसंघ स्थापित भी हो गये। इन दोनों से सम्बद्ध कतिपय संस्थानों ने सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। पर ये दोनों संघ विश्वशान्ति स्थापित करने में विफल रहें हैं। संसार अब भी विकसित, विकासशील और अविकसित देशों में, तथा दुर्बल और शक्तिशाली राष्ट्रों में बटा हुआ है। शक्तिशाली राष्ट्र किसी न किसी रूप में अपना आधिपत्य बनाये रखना चाहते हैं। सैन्यवाद का अब भी बोलबाला है। विश्वशान्ति और विश्वसहयोग को स्थापित करने के लिए अब भी बहुत कुछ करना बाकी है।

संसार में नैतिक आदर्श, संस्कृति, परिस्थिति, व्यवस्था, न्याय और मर्यादाएँ परिवर्तन के गुण से सम्पन्न हैं, अर्थात् वे सभी परिवर्तनशील हैं।।१५६।। विकास द्वारा उद्भूत (उत्पन्न) तथा प्रगति की क्षमता से युक्त ये सब एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा क्रमानुकूल विकसित होते हैं।।१५७।। मनुष्य परिस्थितियों के सम्पर्क और मेल से तथा सहयोग, ज्ञान और पौरुष से एवं रचना, क्रान्ति, संघर्ष द्वारा शुभ प्रगति को बढ़ाता है।।१५८।। संघशक्ति बड़ी शक्ति है, निर्बलों का बड़ा बल है। श्रमिक संघ द्वारा शोषण और भय नष्ट करे। वर्गाधिपत्य और अहंवाद को यत्नपूर्वक नष्ट करे, जनता की जागृति तथा उसका कल्याण और आनन्द बढ़ाये, श्रमिकों के उत्थान और संमान को तथा समाज के उत्कर्ष को बढ़ाये तथा लोकतन्त्र और समता पर आश्रित समाज,

रचना-क्रान्ति-सङ्घर्षाः सेवितव्या यथोचितम् ।
समायोगेन तेषां वै वर्धनीयं जगद्धितम् ।।१६२।।

रचनात्मक-सङ्घर्षो राष्ट्र-प्रगति-हेतुकः ।
नितरां रचनाहीनः सङ्घर्षो नाशकारकः ।।१६३।।

रचना-क्रान्ति-सङ्घर्षैर्दीनानां हितमाचरेत् ।
तेषामुत्कर्ष-कल्याणे समाजोन्नति-लक्षणम् ।।१६४।।

नारीणां सर्वकार्येषु ह्यधिकारः समः स्मृतः ।
तासां समः समोत्कर्षो लोकप्रगतिहेतुकः ।।१६५।।

नरः स्वमति-चारित्र्य-भाव-कर्माणि शोधयेत् ।
मानवोचित-मार्गेण शुभं साध्यं प्रसाधयेत् ।।१६६।।

न्यासिता-मति-भावाभ्यां प्रेरितं नरजीवनम् ।
समाजोन्नति-कल्याण-जीवनोत्कर्षसाधनम् ।।१६७।।

प्रगत्यर्थी प्रपुष्णाति संहतिं समतान्विताम् ।
लोकन्यायं सदादर्शं विधानं लोकतान्त्रिकम् ।।१६८।।

विरुन्धे शोषणं क्रौर्यं दमनं मत्सरं भयम् ।
संस्थापयति सौभ्रात्रं समाजं समताश्रितम् ।।१६९।।

अर्थात् समसमाज स्थापित करें।।१५९-१६१।। रचना, क्रान्ति, संघर्ष का यथोचित प्रयोग किया जाना चाहिए, उनके समुचित प्रयोग से जगत् का हित बढ़ाना चाहिए।।१६२।। रचनात्मक संघर्ष राष्ट्र की प्रगति का साधन है। रचनाहीन संघर्ष सर्वथा नाशकारक है।।१६३।। रचना, क्रान्ति और संघर्ष द्वारा दीनों का हित किया जाय, उनका उत्कर्ष और कल्याण समाज की उन्नति का लक्षण है।।१६४।। सब कामों में स्त्रियों का स्थान निश्चय ही समान है, उनका समान सर्वांगीण उत्कर्ष समाज की प्रगति का उपकरण है।।१६५।। मनुष्य अपने विचार, चरित्र, भावनाओं और कार्यों को सुधारे तथा मानवोचित उपायों द्वारा शुभ लक्ष्य साधे।।१६६।। न्यासिता के विचार और भावना से प्रेरित मानव-जीवन समाज की उन्नति, कल्याण, जीवन के उत्कर्ष का उपकरण है।।१६७।। प्रगति का इच्छुक, समता पर आश्रित साहचर्य, लोकन्याय, अच्छा आदर्श, लोकतान्त्रिक व्यवस्था को पुष्ट करता है। शोषण, क्रूरता, दमन, मत्सर (डाह, घमण्ड, लोभ) और भय का विरोध करता है तथा बन्धुता और समता पर आश्रित समाज को प्रतिष्ठित करता है।।१६८-१६९।।

मानव और समाज की प्रगति के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ के विचार में समाज और मानव का क्रमशः पतन हो रहा है। गुम्लोविकज, पेटरो आदि कतिपय यूरोपियन विद्वानों की राय में इतिहास की गति चक्रीय (साइक्लिक) है, कुछ के विचार में मानव और समाज की प्रगति पेचदार है। जो विचारक विकासशील प्रगति पर विश्वास करते हैं, उनमें भी प्रगति की गति, स्वरूप और कारणों के सम्बन्ध में गहरा मतभेद है। जर्मनी के प्रसिद्ध समाजवैज्ञानिक मेक्सवेवर की राय में कालविन की कतिपय उदार धारणाएँ ही यूरोप में पूँजीवादी व्यवस्था के उद्गम का विशिष्ट कारण थी। कुछ विद्वानों की राय में राज्य ही काल का कारण है, समाज और मानव की गतिविधि और व्यवहार राजनीतिक गतिविधि पर निर्भर रहता है।

मार्क्स आदि बहुत से विद्वानों की राय में राजनीतिक व्यवस्था आर्थिक व्यवस्था पर आश्रित है। मार्क्स के विचार में उत्पादक शक्तियों के विकास के अनुरूप उत्पादक सम्बन्ध कायम होते हैं, उत्पादक सम्बन्धों को जोड़ कर आर्थिक ढांचा बनता है और आर्थिक ढाँचे के आधार पर सांस्कृतिक और सामाजिक ढाँचा खड़ा होता है। इस तरह उनकी राय में अन्य सामाजिक प्रक्रियाएँ और व्यवस्थाएँ आर्थिक प्रक्रिया के समरूप होती हैं और आर्थिक व्यवस्था में मौलिक परिवर्तन होने पर वे भी बदलती हैं। मार्क्स स्वीकार करते हैं कि अन्य संस्थाएँ, आर्थिक ढाँचे का परिणाम होते हुए भी स्वतन्त्र शक्तियाँ बन जाती हैं, वे अपनी आन्तरिक शक्तियों से भी विकसित होती तथा एक दूसरे को और इतिहास की गति को प्रभावित करती हैं। मार्क्स यह भी स्वीकार करते थे कि जिस तरह परिस्थितियाँ मनुष्य को बनाती हैं, उस तरह मनुष्य भी परिस्थितियों को बनाता है। मार्क्सवादी नरेन्द्रदेव के विचार में इस तरह इतिहास के विकास में अनेक कारण काम करते हैं और नयी नयी सामाजिक व्यवस्था को कायम करने के लिए अनुकूल सामाजिक परिस्थिति के साथ साथ मनुष्यों का सचेत प्रयत्न भी जरूरी होता है। समाज के ढाँचे में आधारभूत परिवर्तन की ऐतिहासिक आवश्यकता क्रान्ति द्वारा ही पूरी होती है और परिवर्तन का स्वरूप भी क्रान्तिकारी होता है । क्रान्तिकारी समन्वय और गुण-परिवर्तन विकास की परिणति है।

यद्यपि समसमाज की रूपरेखा और सामाजिक क्रान्ति की गतिविधि के सम्बन्ध में गाँधी जी और नरेन्द्रदेव की धारणाएँ भिन्न थी, पर नरेन्द्रदेव की तरह गाँधी जी भी कहते थे कि मानव मनोवृत्ति और व्यवहार पर परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है[१]। समय के साथ व्यवहार और व्यवस्था बदलती रहती है[२]। अपने व्यक्तित्व को सामाजिक व्यक्तित्व के अनुकूल बनाकर ही वह (मनुष्य) मौजूदा स्थिति प्राप्त कर पाया है[३]।

---

१. यंग इंडिया ८.२.१९२५ २. यंग इंडिया १९१९-१९२२, पृ. ३४

३. हरिजन १७.५.१९३९

नैतिकत्वम्

आदर्शो नैतिकत्वस्य सद्भिः सामाजिकः स्मृतः ।
सङ्गति-प्रेरणा-बद्धः समाजक्षेमहेतुकः ।।१७०।।

नैतिकत्वं गतिं सूते प्रगतिस्तस्य सद्गुणः ।
प्रगतिक्षेमसामर्थ्यं परीक्षा तस्य वै स्मृता ।।१७१।।

व्यापकं सर्वकार्येषु सर्वकल्याणसम्भृतम् ।
कर्तव्यसमतायुक्तं नैतिकत्वं परं शिवम् ।।१७२।।

स्वेच्छया प्रेरितं कर्म शुभप्रेरणयान्वितम् ।
निःस्वार्थ-भाव-सम्पन्नं शुभसाधनसम्भृतम् ।।१७३।।

सच्चारित्र्य-समायुक्तं समाज-क्षेम-भूषितम् ।
सदन्तक्षमतायुक्तं नैतिकं सद्भिरुच्यते ।।१७४।।

नरेन्द्रदेव की तरह गाँधी जी भी मानव और स्थिति दोनों को गत्यात्मक बताते थे, क्रमशः ह्रास के सिद्धान्त को गलत समझते थे, मानव जीवन और समाज के विकास पर विश्वास करते थे, प्रगति में ही मानव की प्रतिष्ठा स्वीकार करते थे। दोनों का विश्वास था कि प्रत्येक मनुष्य में ऊँचा उठने की शक्ति विद्यमान है। स्त्री और पुरुष समान दर्जे के हैं, दलितों और उपेक्षितों की हितवृद्धि जनकल्याण का मापदंड है। गाँधी जी की दृढ़ धारणा थी कि देशोत्थान के लिए समाज का सर्वांगीण विकास तथा सामाजिक संस्थाओं का सुधार और न्यायसंगत आधार पर उनका पुनर्गठन आवश्यक है। सर्वोन्मुखी प्रगति के लिए उन्होंने नरेन्द्रदेव से कहीं अधिक प्रयत्न किया। गाँधी जी और नरेन्द्रदेव दोनों व्यक्ति को साधन, साधक और साध्य तीनों मानते थे, नवनिर्माण के लिए मानव के सचेत, न्यायसंगत, सामूहिक प्रयत्न तथा रचना और संघर्ष दोनों को आवश्यक समझते थे। दोनों ही विकासमूलक क्रान्ति तथा जातिविहीन, वर्गविहीन समाज के समर्थक थे।

नैतिकता के आदर्श सज्जनों द्वारा सामाजिक बताये गये हैं। वह साहचर्य की प्रेरणा से सम्बद्ध तथा समाज-कल्याण के साधन हैं।।१७०।। नैतिकता गतिशील है, प्रगति उसका सद्गुण है, प्रगति और कल्याण का सामर्थ्य ही उसकी परीक्षा है।।१७१।। सब कार्यों में व्यापक, सत्य और कल्याण से सम्पन्न, कर्तव्य और समता से युक्त नैतिकता श्रेष्ठ और मंगलकारी है।।१७२।। अपनी इच्छा से प्रेरित, शुभ प्रेरणा से सम्पन्न, निःस्वार्थ भावना से युक्त, शुभ साधन से सम्पन्न, सदाचार से युक्त, समाज के कल्याण से भूषित, अच्छे परिणाम की क्षमता से युक्त कर्म नैतिक है।।१७३-७४।। स्वतन्त्रता, सामूहिकता,

स्वातन्त्र्यं समुदायत्वं समत्वं न्यायनिष्ठता ।
लोकसेवा च नैष्कर्म्यं नैतिकत्वस्य सद्गुणाः ।।१७५।।

नैतिकत्वविकासार्थं न्यायनिष्ठः प्रयत्नतः ।
प्रपुष्णाति प्रथां नीतिं स्वार्थवैषम्यनिर्गताम् ।।१७६।।

नैतिकोत्कर्ष-सिद्ध्यर्थं जनकल्याणहेतवे ।
यत्नतो जडतां त्यक्त्वा प्रगतिं पौषयेत् सुधीः ।।१७७।।

अन्धविश्वास-निर्मुक्तिर्ज्ञानं लोकहितात्मकम् ।
शीलं मानुष्य-सम्पन्नं नैतिकोत्कर्षसाधनम् ।।१७८।।

चित्तशुद्धिः सदाचारः समष्टिहितभावना ।
लोककल्याणलग्नत्वं नैतिकोत्कर्षसाधनम् ।।१७९।।

सङ्घर्षो दलितक्षेम-न्याय-स्वातन्त्र्य-हेतवे ।
शौर्य-मानुष्य-सम्पन्नो नैतिकोत्कर्षसाधनम् ।।१८०।।

सेवा निष्कामभावेन सौजन्यं समतान्वितम् ।
बुद्धि-भाव-क्रिया-शुद्धिर्नैतिकं जीवनं स्मृतम् ।।१८१।।

सदुद्देश्यसमायुक्तं स्वार्थाहङ्कारनिर्गतम् ।
लोकार्थाय कृतं कर्म निष्कामं कर्म कीर्तितम् ।।१८२।।

समता, न्यायनिष्ठा, लोकसेवा तथा आसक्ति और निजी लाभ की कामना का त्याग नैतिकता के सद्गुण हैं।।१७५।। नैतिकता के विकास के निमित्त न्यायनिष्ठ व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक स्वार्थ और विषमता से रहित प्रथा और नीति को परिपुष्ट करता है।।१७६।। विद्वान् नैतिक उत्कर्ष की सिद्धि तथा जनकल्याण के निमित्त दृढ़ता से जड़ता छोड़ कर प्रगति बढ़ाये।।१७७।। अन्धविश्वास से छुटकारा, लोकहितकारी ज्ञान, मनुष्यता से सम्पन्न शील नैतिक उत्कर्ष के साधन हैं।।१७८।। चित्तशुद्धि, सदाचार, समष्टिहित की भावना, लोककल्याण में लगन नैतिक उत्कर्ष के साधन हैं।।१७९।। दलितों के कल्याण तथा न्याय, स्वतन्त्रता के निमित्त शौर्य और मनुष्यता से सम्पन्न संघर्ष नैतिक उत्कर्ष के साधन हैं।।१८०।। निष्काम भाव से सेवा, समता से सम्पन्न सौजन्य तथा बुद्धि, भावना और क्रिया की शुद्धि नैतिक जीवन है।।१८१।। सदुद्देश्य से युक्त, स्वार्थ और अहंकार से रहित, लोकहित के लिए काम निष्काम कर्म कहलाता है।।१८२।।

कुछ विद्वानों के विचार में अदृश्य आत्मतत्त्व नीतिशास्त्र का मूलाधार है। कतिपय विद्वान् नैतिक नियमों को ईश्वरादेशित और आप्त पुरुषों द्वारा उनकी व्याख्या को प्रामाणिक

मानते हैं। कुछ विद्वान् प्रबुद्ध सद्विवेक, बुद्धि के आदेश को ही नैतिकता का आधार स्वीकार करते हैं, पर कुछ विद्वानों की नैतिक विवेचना मूल रूप से लौकिक और सामाजिक है। वे समाज और मनुष्यत्व के परम उत्कर्ष को ही नैतिक आदेशों का मुख्य लक्ष्य स्वीकार करते हैं। भारत के अधिकांश पंडित और मौलवी नैतिक नियमों को ईश्वरादेशित मानते हैं तथा श्रुति, स्मृति, कुरान, हदीश की व्याख्याओं को प्रामाणिक समझते हैं। लोकमान्य तिलक गीता द्वारा प्रतिपादित कर्मयोग को ब्रह्मविद्या पर निर्मित नीतिशास्त्र घोषित करते हैं। उनके विचार में गीता का नीतिशास्त्र अदृश्य आत्मतत्त्व पर आधारित है, वह आत्मज्ञान और नैतिक व्यवहार के मेल पर आग्रह करता है, उसमें मोक्ष, नीति, धर्म और व्यवहार की एकवाक्यता सिद्ध की गयी है। वे यह भी कहते हैं कि नीतिशास्त्र का काम नये नीतिनियमों का सर्जन करना नहीं है, बल्कि नीतिनियमों में निहित मूलतत्त्व की खोज करना है, तथा गीताशास्त्र का अभिप्राय यही है कि समाज व्यवस्था चाहे कैसी भी हो, उसमें जो काम यथाधिकार तुम्हारे हिस्से में पड़ जाय, उसे उत्साहपूर्वक करके सर्वभूतहित रूपी आत्मश्रेय की सिद्धि करो।

लोकमान्य तिलक की तरह गाँधी जी भी भगवद्गीता को कर्मयोग का शास्त्र तथा लोकसेवा को जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक उत्कर्ष के लिए सर्वोत्तम समझते थे। वे मोक्ष के आध्यात्मिक महत्त्व को स्वीकार करते थे, पर मोक्ष और नैतिकता की एकवाक्यता उन्हें ठीक नहीं जँचती थी। उनके विचार में व्यक्तिगत मोक्ष की कामना का अपना महत्त्व है, पर नैतिकता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

नैतिकता, उनके विचार में, सामाजिक प्रक्रिया हैं, नैतिक आदर्श सामाजिक आदर्श हैं, नैतिकता का उदय और विकास समाज में ही होता है, समाज से अलग नैतिकता की कल्पना असम्भव है। स्वेच्छा से निःस्वार्थ भाव से सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सबके साथ सौहार्दपूर्ण सद्व्यवहार, समाज की प्रगति में उत्तरदायित्व पूर्ण योगदान, व्यवहार और साधनों की स्वच्छता पर समुचित ध्यान तथा आचरण की शुद्धि नैतिक जीवन के कतिपय मुख्य लक्ष्य हैं। नैतिक व्यवहार के लिए गाँधी जी प्रेरणा, परिणाम, उपाय और इच्छा इन सबकी शुद्धता आवश्यक समझते थे। उनके विचार में वही कार्य नैतिक है, जो सदिच्छा से प्रेरित हो, सच्चरित्रता और सदुपायों से युक्त हो, निःस्वार्थ समाजहित की भावना से समन्वित हो, जनकल्याण के साधन की जिसमें क्षमता हो।

गाँधी जी जीवन और समाज के सर्वांगीण नैतिक उत्थान पर जोर देते थे। वे विकास को जीवन का नियम मानते थे और परिवर्तनशील संसार में परिस्थिति के अनुकूल सामाजिक नियमों और जीवनप्रणाली में परिवर्तन प्रगति के लिए आवश्यक समझते थे। वे चाहते थे कि हमारे सभी क्रियाकलाप तथा हमारी सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएँ नैतिकता से अनुप्राणित हों, नैतिक सिद्धान्तों पर आश्रित हों। पुरानी

लोकन्याय:

शोषणातङ्कनिर्मुक्तं लोकरक्षाबलान्वितम् ।
समता-सत्य-सम्पन्नं निष्पक्षं वैरनिर्गतम् ।।१८३।।
भूषितं जनकल्याणैः समाजक्षेमसंयुतम् ।
शक्तियुक्तियुतं तत्त्वं लोकन्यायः प्रकीर्तितः ।।१८४।।
स्वातन्त्र्यं शान्तिसौहार्दे समता सहकारिता ।
व्यवस्था दलितोत्थानं लोकन्यायस्य सद्गुणाः ।।१८५।।

आचारसंहिता की कालविपरीत प्रथाओं के स्थान पर कालानुकूल, न्यायसंगत, मानवीय प्रथाएं तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएँ स्थापित की जाएं।

सत्य, अहिंसा, स्वतन्त्रता, समता, बन्धुत्व, सहकारिता, न्याय, मानव व्यक्तित्व और श्रम का आदर, न्यासिता, अर्थात् उत्तरदायित्व की भावना, कर्तव्यपरायणता, निःस्वार्थ जनकल्याण, अन्त्योदय, सर्वोदय, सत्याग्रह, आत्मशुद्धि, सर्व-धर्म-समभाव गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित नैतिकता के मूल सिद्धान्त हैं।

गाँधी जी की धारणा थी कि विश्व के नैतिक विधान पर विश्वास ही धर्म है और इस दृष्टि से वे धर्म और नैतिकता के घनिष्ठ सम्बन्ध पर विश्वास करते थे। उनकी धारणा थी कि नैतिकता धर्म का विशिष्ट लक्षण है। नैतिकताविहीन धर्म पाखण्ड है। नैतिक जीवन ही सच्चा धार्मिक जीवन है।

इस तरह गाँधी जी की नैतिक धारणाएँ समाज-वैज्ञानिकों की सामाजिकता और सापेक्षता, भगवद्गीता की निष्काम लोकसेवा, भारतीय अध्यात्म के अद्वैत और समत्व, जीवन और समाज के स्वस्थ पुनर्गठन की भावना एवं समाज दर्शन के कतिपय मूलभूत सिद्धान्तों पर आश्रित थी । वे निःसन्देह गतिशील, प्रगतिशील और संघर्षात्मक थीं। वे शास्त्रीय प्रमाण और परम्परागत प्रथाओं पर विवेक और अन्तःकरण की प्रभुता प्रतिष्ठित करती हैं तथा पुरानी कालविपरीत रूढियों से संघर्ष करने की एवं जड़ता और निराशा को त्याग करने को प्रोत्साहित करती है।।

शोषण और आतंक से रहित, लोकरक्षा की शक्ति से समन्वित, समता और सत्य से सम्पन्न, निष्पक्ष, वैर से रहित, जनकल्याण से विभूषित, समाज-क्षेम से सम्पन्न, शक्ति और तर्क से युक्त तथ्य लोकन्याय है।।१८३-१८४।। शान्ति, स्वतन्त्रता, सौहार्द, समता, सहकारिता, व्यवस्था, दलितों का उत्थान लोकन्याय के सद्गुण हैं।।१८५।। आधिपत्य से पराभूत तथा क्रूरता और शोषण से युक्त अन्यायमूलक कानून को एवं दमन,

आधिपत्य-पराभूतं क्रौर्यशोषणसंयुतम्।
विधिमन्यायमूलं च दमनं शोषणं भयम्।।१८६।।
लोकतान्त्रिक-मार्गेण क्रान्त्या कर्तव्य-तत्परः।
त्यक्त्वा हृदयदौर्बल्यं प्रतिरुन्ध्यात् प्रयत्नतः।।१८७।।
दलितक्षेम-पुष्ट्यर्थं न्यायस्थापनहेतवे।
न्यायशीलः समत्वार्थी सहयोगैः सुकर्मभिः।।१८८।।
रचनां क्रान्ति-सङ्घर्षौ यथाकालं निषेवते।
परिपुष्णाति सन्न्यायं मानुष्यं समतानयम्।।१८९।।
लोकज्ञो न्यायसन्निष्ठः प्रगत्यर्थी सदाशयः।
रुन्ध्याद्धि दमनं क्रौर्यं शोषणं परतन्त्रताम्।।१९०।।
शोधयेद् विधिवैकल्यं दोषपूर्णां परम्पराम्।
काशयेन्नीतिसिद्धान्तान् प्रगतिक्षेमसम्भृतान्।।१९१।।
क्रौर्यं रूढिं निराकृत्य लोकन्यायं प्रपोषयेत्।
न्याय-कल्याण-सम्पन्नां नीतिं रीतिं समर्थयेत्।।१९२।।
शासको नीतिसन्दक्षो निष्पक्षो वैरनिर्गतः।
प्रपुष्णाति सदा न्यायं नराधिकारभद्रताम्।।१९३।।
स्वातन्त्र्यं शासकेभ्यस्तु समत्वं चात्मनिग्रहः।
न्यायनिष्ठा विवेको वै न्यायाधीशस्य सद्गुणाः।।१९४।।

शोषण और भय को कर्तव्यशील हृदय की दुर्बलता को त्याग कर लोकतान्त्रिक उपायों और क्रान्ति से यत्नपूर्वक रोकें।।१८६-१८७।। न्यायशील, समत्वार्थी दलितों के कल्याण के पोषण और न्याय की स्थापना के लिए रचना, क्रान्ति और संघर्ष का कालानुसार प्रयोग करता है तथा न्याय, मनुष्यता और समता के सिद्धान्त और व्यवहार को पुष्ट करता है।।१८८-१८९।। लोक का ज्ञाता, न्यायनिष्ठ, प्रगति का इच्छुक, अच्छा विचारवान् व्यक्ति दमन, क्रूरता, शोषण और परतन्त्रता का प्रतिरोध करे, कानून की बुराइयों और दोषपूर्ण परम्पराओं का शोधन करे तथा प्रगति और कल्याण से सम्पन्न नये नीति के सिद्धान्त प्रतिपादित करे।।१९०-१९१।। क्रूरता और रूढ़ि को दूर कर लोकन्याय को पुष्ट किया जाय। न्याय और कल्याण से सम्पन्न नीतिरीति का समर्थन किया जाय।।१९२।। नीतिनिपुण निष्पक्ष वैररहित प्रशासक सदा न्याय, मानवाधिकार और भद्रता को पुष्ट करता है।।१९३।। शासकों से स्वतन्त्र, सबके प्रति समान व्यवहार, आत्मनिग्रह, न्यायनिष्ठा और विवेक न्यायाधीश के सद्गुण हैं।।१९४।। न्यायाधीश सभा

न्यायाधीशः सभां गत्वा रागद्वेषविनिर्गतम् ।
न्यायं कृत्वा विवेकेन हितं लोकस्य वर्धयेत् ।।१९५।।

में जाकर विवेक से राग-द्वेष से रहित न्याय करके लोकहित की वृद्धि करे।।१९५।।

संसार के सभी विद्वान् न्याय के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। पर उसके सम्बन्ध में सब विचारकों की एक जैसी राय नहीं है। कुछ विद्वान् न्याय को धर्म का अंग स्वीकार करते हैं। धर्म-ग्रन्थों में प्रतिपादित न्यायव्यवस्था का अक्षरशः पालन नितान्त आवश्यक समझते हैं और इस सम्बन्ध में धर्माधिकारियों की व्यवस्था को सर्वमान्य बताते हैं। पर कुछ विद्वान् लौकिक न्यायविधान को धर्म का अंग स्वीकार नहीं करते और लौकिक न्याय की व्यवस्था में धर्माधिकारियों का हस्तक्षेप अनुचित समझते हैं। समाजहित की दृष्टि से विवेक और अनुभव के आधार पर न्यायव्यवस्था का निर्धारण उन्हें ठीक जँचता है। कुछ विद्वानों के विचार में कतिपय सार्वकालिक सिद्धान्त न्याय का आधार हैं। कुछ विद्वानों की राय में न्यायव्यवस्था का समाजव्यवस्था से गहरा सम्बन्ध है तथा गतिशील संसार में सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में दोनों में परिवर्तन होता रहता है। यद्यपि न्यायविधान सामाजिक व्यवस्था का आधार समझा जाता है, पर न्यायविधान पर सामाजिक परिस्थितियों और सामाजिक व्यवस्था की गहरी छाप होती है। न्यायविधान सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप होता है और विद्वानों की वही धारणाएँ सामाजिक मान्यता प्राप्त करती हैं और न्यायव्यवस्था का अंग बन पाती हैं, जो सामाजिक व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तों और समाज के कर्णधारों के हितों के अनुकूल होती हैं। जाति और वर्गों में विभाजित समाज में न्यायविधान और न्याय-धारणाओं पर उच्च वंशों और वर्गों के हितों और भावनाओं की गहरी छाप होती है। मनुष्यता, समता और निष्पक्षता के बजाय वंशाभिमान, जात्यहंकार, वर्गाधिपत्य न्यायव्यवस्था-दण्डविधान के मुख्य आधार बन जाते हैं। एक ही अपराध के लिए विभिन्न वर्गों और विभिन्न जातियों के अपराधियों के लिए विभिन्न प्रकार के दण्डों की व्यवस्था न्यायसंगत समझी जाती है। आर्थिक हितों की रक्षा के निमित्त सम्पत्ति-सम्बन्धी अपराधों के लिए अमानुषिक शारीरिक दण्ड निर्धारित किये जाते हैं। वर्गसमाज का दण्डविधान इस प्रकार की व्यवस्थाओं से भरा पड़ा है। उच्च वंश और उच्च वर्ग के लोग धर्म और सामाजिक परम्पराओं के आधार पर उन्हें न्यायसंगत और उचित बताते हैं, पर समसमाज और लोकतन्त्र के समर्थक विद्वान् इस प्रकार की व्यवस्था की कड़ी आलोचना करते हैं।

आधुनिक युग में औद्योगिक वर्ग ने सामन्तशाही युग की न्यायव्यवस्था और दण्डव्यवस्था को काफी संशोधित कर दिया है। सब के लिए समान न्याय का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। मानव व्यक्तित्व का महत्त्व स्वीकार करते हुए बहुत से

शौर्यम्

लोकन्यायस्तथा शौर्यं साध्यसाधनतां गते।
शौर्यं न्यायविहीनं तु ह्यत्याचारस्य कारणम्।।१९६।।

न्यायः शौर्यविहीनश्च शक्तिसाधनवर्जितः।
तयोरेव सुसम्बन्धो लोककल्याणहेतुकः।।१९७।।

समाज-स्नेह-सम्पन्नं युक्तं मानुष्यनिष्ठया।
शौर्यं न्यायसमायुक्तं नराणां भूषणं स्मृतम्।।१९८।।

अमानुषिक दण्डों को दण्डविधान से निकाल दिया गया है और वध-दण्ड बहुत ही क्रूर समझा जाने लगा है। अपराधों के निवारण के लिए प्रतिशोधात्मक कड़े दण्ड के बजाय सुधारात्मक दण्ड अधिक श्रेयस्कर समझे जाने लगे हैं, पर वर्गाधिपत्य की भावना के कारण औद्योगिक वर्ग के लिए जनता के साथ पूर्ण रूप से न्यायसंगत व्यवहार सम्भव नहीं हो रहा है।

श्रमिक जनता की माँग है कि समसमाज के मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर न्यायव्यवस्था को सामाजिक न्याय का स्वरूप दिया जाय तथा जीवन के सब क्षेत्रों में उनके साथ समता का व्यवहार किया जाय, उनके आर्थिक हितों की तथा उनके जीवन और श्रम के गौरव की रक्षा का समुचित प्रबन्ध हो, जीवनोत्कर्ष के लिए उन्हें उचित सुविधाएँ प्रदान की जाएँ, उनका उत्थान सामाजिक न्याय का महत्त्वपूर्ण मन्तव्य स्वीकार किया जाय।

श्रमिक जनता की ये माँगे गाँधी जी के सर्वोदय और अन्त्योदय के सिद्धान्तों के अनुकूल हैं और उनकी मान्यता सुख-शान्ति और सामाजिक प्रगति तथा समसमाज की स्थापना के लिए आवश्यक हैं। सामाजिक न्याय को प्रतिष्ठित करने के लिए पुराने अन्यायमूलक कानूनों का विरोध और संशोधन, नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन, समता और मनुष्यता से विभूषित व्यवस्था का निर्धारण तथा निष्पक्ष न्याय-प्रशासन की व्यवस्था नितान्त आवश्यक है।।

लोकन्याय और शौर्य साध्य और साधन हैं। न्यायविहीन शौर्य अत्याचार का कारण ही है। शौर्यविहीन न्याय शक्ति-साधन से विहीन है। उन दोनों का अच्छा सम्बन्ध लोककल्याण का कारण है।।१९६-१९७।। समष्टि के स्नेह से सम्पन्न, मनुष्यता की निष्ठा से युक्त तथा न्याय से समन्वित शौर्य मनुष्य का भूषण है।।१९८।। अपने लक्ष्य में दृढ़ विश्वास, कर्तव्य और न्याय में निष्ठा, संकट में विक्रम तथा धैर्य वीर के सद्गुण

स्वलक्ष्ये दृढविश्वासः कर्तव्य-न्याय-निष्ठता ।
सङ्कटे विक्रमो धैर्यं वीरस्य सद्गुणाः स्मृताः ।।१९९।।

अहिंसा निष्क्रिया लोके सर्वथा हि निरर्थिका ।
नितरां रचनाहीना कल्याणोत्कर्षघातिका ।।२००।।

अहिंसा सक्रिया नूनं सत्यसिद्धिसुसाधनम् ।
सङ्घर्ष-रचना-शक्ति-युता सर्वहितान्विता ।।२०१।।

वीराः सत्याग्रहेणैव यथाशक्यं प्रयत्नतः ।
रुन्धन्तु पारतन्त्र्यं वै दमनं तस्य शोषणम् ।।२०२।।

लोकतन्त्रेऽपि सत्यार्थी संवैधानिकसाधनैः ।
सत्याग्रहेण रुन्धीत दमनातङ्कशोषणम् ।।२०३।।

त्यक्त्वा शक्तेरहङ्कारं न्यायं रक्षति यत्नतः ।
पौरुषेण विवेकेन यः स शूरः प्रकीर्तितः ।।२०४।।

न्याय-स्वातन्त्र्य-संरक्षा सतां च परिपालनम् ।
शोधनं दुर्जनानां च शौर्यस्य ध्येयमुच्यते ।।२०५।।

हैं।।१९९।। संसार में निष्क्रिय अहिंसा बिल्कुल निरर्थक है। यह रचना से हीन तथा कल्याण और उत्कर्ष की घातक है।।२००।। सक्रिय अहिंसा निःसन्देह सत्य की सिद्धि का अच्छा साधन है, रचना और संघर्ष की शक्ति से समन्वित सर्वहितकारी है।।२०१।। वीर पुरुष सत्याग्रह से यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक परतन्त्रता तथा दमन और शोषण का मुकाबला करते हैं।।२०२।। लोकतन्त्र में भी सत्यार्थी संवैधानिक साधनों और सत्याग्रह द्वारा दमन, आतंक, शोषण का प्रतिरोध करता है।।२०३।। जो व्यक्ति शक्ति का अहंकार त्याग कर पौरुष और विवेक से न्याय की रक्षा करता है, वह शूर है।।२०४।। न्याय और स्वतन्त्रता की रक्षा, सज्जनों का पालन तथा दुर्जनों का शोधन शौर्य कहलाता है।।२०५।।

शौर्य मानव की महत्त्वपूर्ण वृत्ति है। शौर्यविहीन जीवन निकम्मा और निरर्थक है। पर शौर्य राजसिक वृत्ति है। दम्भ, स्वार्थ, आधिपत्य जैसी तामसिक और राजसिक वृत्तियों से सम्बन्धित हो जाने पर वह विकराल रूप धारण कर लेता है। वह मानव स्वतन्त्रता तथा विश्वशान्ति और विश्वसहयोग का घातक बन जाता है। उद्दण्ड शौर्य तो साधारण सामाजिक जीवन को भी कठिन बना देता है। पर मनुष्यता, न्याय, सामाजिक स्नेह जैसी सात्त्विक भावनाओं से सम्बद्ध शौर्य जीवन का भूषण, लोकन्याय का समर्थक तथा

लोकशीलम्

मानुष्यं समता सत्यं लोकन्यायः सदाशयः।
लोकाभ्युदयसंवृद्धिर्जीवनादर्श-रक्षणम् ।।२०६।।

न्यासिता-भाव-सम्पन्नं सार्वलौकिकजीवनम्।
श्रमजीवन-सम्मानो लोकशीलं प्रशस्यते।।२०७।।

सौजन्यं समतासूतं सेवा सौहार्द-सम्मता।
स्वातन्त्र्यं शीलसम्पन्नं शौर्यं मानुष्य-मण्डितम्।।२०८।।

बुद्धि-भाव-क्रिया-शुद्धिर्विवेकान्वित-विक्रमः।
देशबन्धुषु सौहार्दं लोकशीलं प्रशस्यते।।२०९।।

शुभकामना

सर्वो भूयात् समत्वार्थी राष्ट्रनिर्माणतत्परः।
दलितक्षेमसंलग्नो निर्भीको न्यायजीवनः।।२१०।।

सर्वो भवतु कर्मण्यो लोकात्मोत्कर्षतत्परः।
देशभक्तः सदाचारः समः सर्वोपकारकः।।२११।।

मनुष्यता, स्वतन्त्रता और प्रगति का पोषक है। शौर्य के लिए हिंसात्मक होना भी अनिवार्य नहीं है। अहिंसात्मक शौर्य सर्वोत्तम है।।

मनुष्यता, समता, सत्य, लोकन्याय, अच्छा विचार और मन्तव्य, समाज के अभ्युदय की वृद्धि, जीवन के आदर्शों की रक्षा, न्यासिता की भावना से सम्पन्न सार्वलौकिक जीवन तथा श्रमिक जीवन का संमान लोकशील है।।२०६-२०७।। समता से युक्त सौजन्य, सौहार्द से समन्वित सेवा, शील से सम्पन्न स्वतन्त्रता, मनुष्यता से विभूषित शौर्य, बुद्धि तथा भाव और क्रिया की शुद्धि, विवेक से सम्पन्न पौरुष, देशबन्धुओं में सौहार्द, लोकशील है।।२०८-२०९।।

शील मानवजीवन का सद्गुण और भूषण है। भारतीय शास्त्रकारों ने शील की काफी विस्तृत व्याख्या की है। यहाँ सामाजिक और सार्वजनिक जीवन से सम्बद्ध शील और शिष्टाचार की कतिपय मुख्य बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। भारतीय विद्वान् कहते हैं—"शीलं प्रधानं पुरुषे" पुरुष (मनुष्य) में शील प्रमुख है।।

सभी मनुष्य समत्वार्थी, राष्ट्रनिर्माण में तत्पर, दलितों के कल्याण में संलग्न, निर्भीक और न्यायजीवी हों।।२१०।। सभी कर्मण्य, समाज और अपने उत्कर्ष में तत्पर,

सर्वः प्राप्नोतु मानुष्यं नैतिकत्वं सुसंस्कृतिम्।
अन्ध-विश्वास-निर्मुक्तिं विवेकं प्रगतिं यशः।।२१२।।

सर्वः प्राप्नोतु सौजन्यं समष्टिहितभावनाम्।
विश्वकल्याणलग्नत्वं लोकतान्त्रिकभद्रताम्।।२१३।।

सर्वे सङ्घा स्वसत्कृत्यैर्वर्धयन्तु नृमङ्गलम्।
प्रगतिं सर्वसौहार्दं समत्वं सहकारिताम्।।२१४।।

सर्वः पश्यतु भद्राणि सर्वो गच्छतु सत्यताम्।
सर्वश्च शान्तिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।२१५।।



देशभक्त, सदाचारी, समभावना से युक्त तथा सर्वोपकारी हों।।२११।। सभी मनुष्यता, नैतिकता और अच्छी संस्कृति से युक्त तथा अन्धविश्वास से मुक्त हो, विवेक, प्रगति और यश प्राप्त करें।।२१२।। सभी सौजन्य, देश बन्धुत्व की भावना, विश्वकल्याण में लगन तथा लोकतान्त्रिक भद्रता प्राप्त करें।।२१३।। सभी संघ अपने सत्कर्मों द्वारा कल्याण, प्रगति, सबमें सौहार्द समता, सहकारिता की वृद्धि करें।।२१४।। सभी ऐश्वर्यशाली बने, सभी सन्मार्ग पर चलें, सबको शान्ति प्राप्त हो, सभी हर समय खुश रहें।।२१५।।



कल्याणोत्कर्षसत्पथम्

व्रतम्

सामाजिकत्वमोदार्यं समत्वं विश्वनिष्ठताम् ।
नागरत्वनयादर्शौ नैतिकत्वविभूषितौ ।।१।।

देशबन्धुत्वसंसृष्टं राष्ट्रियत्वं शिवान्वितम् ।
सिद्धान्येतानि कुर्वीय समाजे स्वीयजीवने ।।२।।

लोकन्यायं सदादर्शं समष्टेर्हितमण्डितम् ।
सामाजिकमनुष्यत्वं कर्तव्ये परिनिष्ठताम् ।।३।।

देशसेवां सदाचारं लोकतान्त्रिकभद्रताम् ।
सिद्धान्येतानि कुर्वीय समाजे स्वीयजीवने ।।४।।

कुर्यां प्रतिष्ठितं राष्ट्रे समाजं समतास्थितम् ।
समष्टिव्यष्टिसंयोगं व्यवस्थां लोकतान्त्रिकीम् ।।५।।

सर्वमानवकल्याणं संस्कृतिं प्रगतिप्रदाम् ।
न्यासिताभावसम्पन्नं सार्वलौकिकजीवनम् ।।६।।

मानवत्वं परं श्रेष्ठं नराणां जीवनामृतम् ।
ज्ञानचारित्र्यसेवाभिः सिद्धं कुर्यामिति व्रतम् ।।७।।

सामाजिकता, उदारता, समता, विश्वनिष्ठा, नैतिकता से विभूषित नागरिकता के नय (सिद्धान्त) और आदर्श, देशबन्धुता पर निर्मित कल्याणकारी राष्ट्रीयता इन सबको समाज और अपने जीवन में सिद्ध करूँ।।१-२।। लोकन्याय, समष्टि के हित से अलंकृत अच्छे आदर्श, सामाजिक मनुष्यता, कर्तव्य के प्रति निष्ठा, देशसेवा, सदाचार, लोकतान्त्रिक भद्रता इन सबको समाज और अपने जीवन में सिद्ध करूँ।।३-४।। मैं राष्ट्र में प्रतिष्ठित करूँ समता पर आश्रित समाज को, समष्टि और व्यक्ति के सामंजस्य को, लोकतान्त्रिक व्यवस्था को, सभी मनुष्यों के कल्याण को, प्रगतिशील संस्कृति को तथा न्यासिता की भावना से सम्पन्न सार्वजनिक जीवन को।।५-६।। मानवता बहुत श्रेष्ठ है, मनुष्यों के जीवन का अमृत है। ज्ञान, चरित्र तथा सेवा से इसे सिद्ध करूँ, यही मेरा व्रत है।।७।।

मानवानां हितार्थाय समत्वसहितो ह्यहम् ।
सततं भूतिकर्माणि कुर्यामित्येव मे व्रतम् ।।८।।

क्रोधं मोहं भयं त्यक्त्वा सङ्कटेनापराजितः ।
नित्यं कर्तव्यभावेन करिष्ये लोकमङ्गलम् ।।९।।

माध्यस्थ इव तिष्ठेयं प्रशंसा-निन्दयोः समः ।
नात्मप्रशंसां कुर्वीय सदा कुर्यां जगद्धितम् ।।१०।।

मानवः

बुद्धिभावक्रियायुक्तं प्रगतेः क्षमतायुतम् ।
मानवं जीवनं श्रेष्ठं मानुष्यं परमं शिवम् ।।११।।

नरः कर्ता च भोक्ता च साधनं साध्यसाधकौ ।
लोकात्मोत्कर्षकल्याणं तस्य जीवनसत्यताम् ।।१२।।

आत्मजीवननिर्माता नानाशक्तियुतो नरः ।
शक्त्युत्कर्षप्रयोगाभ्यां साफल्यं लभते भवे ।।१३।।

प्रीत्यानन्दहितोत्कर्षं साधनं नरजीवनम् ।
प्रज्ञासंयमसत्कृत्यैः स्वलक्ष्यं पद्यते नरः ।।१४।।

मानवः स्थितियोगेन जीवनादर्शसंस्कृती ।
व्यवस्थां ज्ञानमाचारं लोके सृजति निश्चयम् ।।१५।।

मनुष्यों के हित के लिए मैं समता-सहित निरन्तर कल्याणकारी काम करूँ, यही मेरा व्रत है।।८।। क्रोध, मोह और भय को छोड़कर कष्टों से पराजित हुए बिना कर्तव्य भावना से सदा लोक का मंगल करूँगा।९।। प्रशंसा और निन्दा में मध्यस्थ की तरह तटस्थ रहूँ, अपनी प्रशंसा न करूँ, सदा जगत् का हित करूँ।।१०।।

बुद्धि, भाव और क्रियाशक्ति से सम्पन्न, प्रगति की क्षमता से युक्त मानव-जीवन श्रेष्ठ है। मनुष्यता परम कल्याणकारी है।।११।। मनुष्य कर्ता, भोक्ता, साधन, साध्य और साधक है। संसार तथा अपना उत्कर्ष और कल्याण उसके जीवन का सही मार्ग है, अर्थात् यही मनुष्यों का परम पुरुषार्थ है।।१२।। नाना शक्ति से सम्पन्न मनुष्य अपने जीवन का निर्माता है। वह संसार में शक्ति और उत्कर्ष के प्रयोगों के द्वारा सफलता प्राप्त करता है।।१३।। मनुष्य-जीवन प्रेम, आनन्द, हित और उत्कर्ष का साधन है। बुद्धि, संयम और सत्कार्यों द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।।१४।। मनुष्य संसार में स्थिति के सहयोग से जीवन-आदर्श, संस्कृति, व्यवस्था, ज्ञान, आचार का निश्चय

मानवः सर्वकार्याणां परिमाणमुदाहृतम् ।
नृणामुत्कर्षकल्याणं स्मृतं तेषां परीक्षणम् ।।१६।।

सामाजिकत्वम्

समाजे हि समारब्धं समाजेन प्रभावितम् ।
मानवं जीवनं नूनं सामाजिकमुदाहृतम् ।।१७।।

सङ्गासक्तिर्मनुष्याणां गुणो नैसर्गिकः स्मृतः ।
सौहार्दसङ्गतिप्राणो नरः सामाजिकः स्मृतः ।।१८।।

भावः सामाजिकत्वस्य समाजस्य परं हितम् ।
नूनं तस्य समुत्कर्षः समाजोन्नतिहेतुकः ।।१९।।

सर्वेषामुन्नतेर्मूलं समष्टेर्हितभावना ।
सा विधत्ते जनोत्कर्षं लोककल्याणसंस्कृती ।।२०।।

समाजो मानवो नित्यं स्थितावन्योन्यसंश्रयात् ।
ततस्तयोः समायोगाद् राष्ट्रोत्कर्षः समृद्ध्यति ।।२१।।

समाजे मानवः शान्तिं ज्ञानोत्कर्षौ च विन्दति ।
नराणां पौरुषेणैव समाजः सम्प्रवर्धते ।।२२।।

ही सृजन करता (जन्म देता, ढीला करता, बदलता) है।।१५।। मनुष्य सब कर्मों का मापदण्ड कहा जाता है। मनुष्यों का उत्कर्ष और कल्याण सब कामों की परीक्षा है, अर्थात् वही कार्य ठीक है, जो मनुष्यों के उत्कर्ष और कल्याण में सहायक हो।।१६।।

समाज में जन्मा तथा समाज से प्रभावित मानव-जीवन निश्चय ही सामाजिक है।।१७।। संग अर्थात् साहचर्य में अनुराग मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। सौहार्द और साहचर्य जिसका जीवन-तत्त्व है, वह मनुष्य सामाजिक है।।१८।। सामाजिकता की भावना समाज की बहुत हितकारी है । उसका उत्कर्ष (विकास) अवश्य ही समाज की उन्नत्ति का उपकरण है।।१९।। समाज के हित की भावना सबकी उन्नति का मूल है। वह जनता के उत्कर्ष को तथा लोक के कल्याण और संस्कृति को बढ़ाती है।।२०।। समाज और मनुष्य सदा एक दूसरे के आश्रय से स्थित हैं। इसलिए इन दोनों के मेल से राष्ट्र का उत्कर्ष समृद्ध होता है।।२१।। समाज में ही मानव शान्ति, ज्ञान और उत्कर्ष प्राप्त करता है और मनुष्यों के पौरुष से ही समाज उन्नति करता है।।२२।। समाज की

समाजस्य हि संवृद्धौ निहितं व्यक्तिमङ्गलम् ।
निःस्वार्थलोकसेवा वै व्यक्तित्वोत्कर्षसाधनम् ।।२३।।

स्वातन्त्र्यं सामुदायित्वमुभे कल्याणहेतुके ।
ततः स्वातन्त्र्यमारक्षेत् समष्टिं परिपोषयेत् ।।२४।।

कुटुम्बकम्

कुटुम्बं तु समाजस्य मूलभित्तिः प्रकीर्तिता ।
विधत्ते प्रीति-सौहार्दे सद्वृत्तिं सहकारिताम् ।।२५।।

भावं सामाजिकत्वस्य सुसांस्कृतिकजीवनम् ।
सम्बन्धिषु च सौभ्रात्रं व्यवहारं हितान्वितम् ।।२६।।

जीवनस्य च सौविध्यमानन्दः सौख्यमार्जवम् ।
स्नेहश्चातिथ्यसत्कारः सौहार्दं सहकारिता ।।२७।।

कल्याणस्य सुसंवृद्धिर्लोकसेवा च भद्रता ।
सर्वोत्थानं समोत्कर्षः कुटुम्बस्य सुलक्षणम् ।।२८।।

कुटुम्बं जीवितं वित्तं यद्यसत्येन वर्धते ।
तथापि सत्यमारक्षेत् सर्वदा न्यायमाचरेत् ।।२९।।

समृद्धि में ही व्यक्ति का मंगल निहित है। समाज की निःस्वार्थ सेवा ही व्यक्तित्व के उत्कर्ष का साधन है।।२३।। स्वतन्त्रता और सामाजिकता दोनों ही कल्याण के हेतु हैं। इसलिए स्वतन्त्रता की रक्षा की जाय और समष्टि को परिपुष्ट किया जाय।।२४।।

कुटुम्ब समाज का मूलाधार है। वह प्रेम, सौहार्द, सद्व्यवहार, सहकारिता, सामाजिकता की भावना, सांस्कृतिक जीवन, सम्बन्धियों में भाईचारा, हितसम्पन्न व्यवहार को बढ़ाता है।।२५-२६।। जीवन की सुविधा, आनन्द, सुख, सरलता, स्नेह, आतिथ्यसत्कार, सौहार्द, सहकारिता, कल्याण की वृद्धि, लोकसेवा, भद्रता, सबका अर्थात् सारे कुटुम्ब का उत्थान, सर्वांगीण विकास कुटुम्ब के उत्तम लक्षण हैं, अर्थात् वही कुटुम्ब अच्छा है, जो इन सब गुणों से सम्पन्न हो।।२७-२८।। यदि कुटुम्ब, जीवन, धन असत्य से बढ़ता है, तब भी न्याय की रक्षा की जाय, दृढ़ता से सत्य का आचरण किया जाय।।२९।।

मानवत्वम्

सामाजिकत्वं मानुष्यं समलक्ष्यगुणान्विते ।
सौहार्दं जीवनोत्कर्षो लोकार्थो लक्ष्यमुच्यते ।।३०।।

सामाजिकमनुष्यत्वं मानवोत्कर्षहेतुकम् ।
सौहार्दं समता सेवा शान्तिकल्याणवर्धनम् ।।३१।।

सामाजिकत्वसम्पन्नं मानवत्वं परं स्मृतम् ।
समाजव्यक्तिसंयोगजननं जीवनामृतम् ।।३२।।

न भेदोऽस्ति मनुष्येषु सर्वे मानुष्यमूलकाः ।
सुधीः सर्वमनुष्येषु मानुष्यं भावमीक्षते ।।३३।।

आत्मनीव समस्तेषु मानुष्यं खलु संस्थितम् ।
एवं ज्ञात्वा समो भूत्वा समाचरति पण्डितः ।।३४।।

कारुण्यं विश्वबन्धुत्वं समत्वं न्यायनिष्ठता ।
मानवानां हिते प्रीतिर्मानवत्वमुदाहृतम् ।।३५।।

विश्वबन्धुत्वम्

भावना विश्वबन्धुत्वसमा नास्ति महीतले ।
विश्वसौहार्दयुक्ता सा विश्वशान्तिप्रसाधनम् ।।३६।।

सामाजिकता और मनुष्यता दोनों समान लक्ष्य से समन्वित होते हैं। सौहार्द, जीवन का उत्कर्ष, लोक कल्याण दोनों का लक्ष्य है।।३०।।सामाजिक मनुष्यता मानव के उत्कर्ष का साधन है। वह सौहार्द, समता, सेवा, शान्ति और कल्याण को बढ़ाने वाली है।।३१।। सामाजिकता से सम्पन्न मानवता श्रेष्ठ है। वह समाज और व्यक्ति के सामंजस्य की जननी तथा जीवन का अमृत है।।३२।। मनुष्यों में भेद नहीं, वे सब मानुष्यमूलक हैं (मूलतः मनुष्य हैं), विद्वान् सभी मनुष्यों में मनुष्यता की भावना रखता है।।३३।। जैसे अपने में वैसे ही सबमें मनुष्यता स्थित है, इसे जानकर सबके प्रति समभावना रखते हुए पण्डित आचरण करते हैं।।३४।। करुणा, विश्वबन्धुता, समता, न्याय-निष्ठा, मनुष्यों के हित में प्रेम मानवता है, अर्थात् यही मानवता के लक्षण हैं।।३५।।

इस संसार में विश्वबन्धुता के समान कोई भावना नहीं है। यह भावना विश्व-सौहार्द से युक्त तथा विश्व-शान्ति का साधन है।।३६।। जो मनुष्य सब मनुष्यों के साहचर्य और

योो नरः परिपुष्णाति सर्वमानवसङ्गतिम् ।
विधत्ते विश्वकल्याणं विश्वबन्धुः स उच्यते ।।३७।।

विश्वनिष्ठा हि मन्यन्ते वसुधैव कुटुम्बकम् ।
विश्वशान्तिहिते न्यायं बन्धुत्वं वर्धयन्ति ते ।।३८।।

तप्यन्ते विश्वतापेन विश्वाराधनतत्पराः ।
विश्वं विमोचयन्त्येव ह्याधिपत्याच्च सर्वथा ।।३९।।

विश्वसेवासमायुक्तो विश्वबन्धुत्वभूषितः ।
व्यवहारः समुत्कृष्टो विद्वद्भिः परिकीर्त्यते ।।४०।।

सहयोगेन सर्वेषां विश्वनिष्ठः प्रयत्नतः ।
विश्वशान्तिं विश्वसङ्घं विश्वोत्कर्षं प्रसाधयेत् ।।४१।।

समत्वम्

मानवत्वं समत्वं च ह्यन्योन्यस्य गुणोत्तमम् ।
तयोः सह विकासो वै जीवनोत्कर्षलक्षणम् ।।४२।।

समत्वे दृढविश्वास आस्तिक्यं परिकीर्तितम् ।
समत्वाचरणं श्रेयो मानवत्वप्रसाधनम् ।।४३।।

समभावसमायुक्तः सर्वेषां हितचिन्तकः ।
निर्द्वन्द्वो यश्च निर्वैरः स समः परिकीर्तितः ।।४४।।

मेल को पुष्ट करता है, विश्वकल्याण को बढ़ाता है वह विश्वबन्धु है।।३७।। विश्व के प्रति निष्ठावान् सारे विश्व को निश्चय ही कुटुम्ब मानते हैं। वे विश्वशान्ति, विश्वहित, न्याय, बन्धुता को बढ़ाते हैं।।३८।। विश्व की आराधना, अर्थात् सेवा में तत्पर विश्व के तापों के ताप से तापित होते हैं और वे विश्व को आधिपत्य से निश्चय ही मुक्त कराते हैं।।३९।। विश्वसेवा से सम्पन्न, विश्वबन्धुता से भूषित व्यवहार विद्वानों द्वारा उत्कृष्ट कहा जाता है।।४०।। विश्वनिष्ठ सबके सहयोग से यत्नपूर्वक विश्वशान्ति, विश्वसंघ और विश्व के उत्कर्ष को प्रतिष्ठित करे।।४१।।

मानवता और समता एक दूसरे के पूरक गुण हैं, उन दोनों का साथ-साथ विकास निःसन्देह जीवन के उत्कर्ष का लक्षण है।।४२।। समता में दृढ़ विश्वास आस्तिकता है। समता का आचरण सर्वोत्तम है, मानवता का साधन है।।४३।। जो पुरुष समभाव से युक्त, सबका हितचिन्तक, निर्द्वन्द्व और निर्वैर है, वही सम है।।४४।। आत्मतुल्य

आत्मतुल्यो मनुष्यत्व-सत्य-सौहार्दसम्भृतः ।
निष्पक्षो व्यवहारो वै समत्वं परिलक्ष्यते ।।४५।।

क्रौर्य-शोषण-निर्मुक्त-राष्ट्रनिर्माणतत्परः ।
संलग्नो दीनसेवायां मैत्रीभावेन निष्ठया ।।४६।।

रतः सिद्धौ समत्वस्य समाजे व्यक्तिजीवने ।
विश्वकल्याणसन्निष्ठः समत्वार्थी प्रकीर्तितः ।।४७।।

कर्मयोग

समत्वं वै परा निष्ठा तस्य सिद्धिः सुदुष्करा ।
कर्मयोगेन संसिद्धिं सत्यनिष्ठोऽधिगच्छति ।।४८।।

अभ्यासेनैव लोकार्थी संयमी दृढनिश्चयः ।
न्यायनिष्ठोऽनहंवादी कर्मयोगाय कल्पते ।।४९।।

निष्ठया परया तप्तं निष्कामत्वसमन्वितम् ।
कर्तव्येन कृतं कर्म योगयुक्तं प्रकीर्तितम् ।।५०।।

क्रियासु युक्तचेष्टो वै साम्ययोगपरायणः ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो योगयुक्तः प्रकीर्तितः ।।५१।।

समता-सत्य-निष्कामनिष्ठा-मानुष्यमण्डितः ।
रतो लोकहिते नित्यं कर्मयोगी प्रकीर्तितः ।।५२।।

तथा मनुष्यता, सत्य, सौहार्द से सम्पन्न निष्पक्ष व्यवहार ही समभाव का उत्तम गुण है।।४५।। क्रूरता और शोषण से निर्मुक्त, राष्ट्र के निर्माण में तत्पर, मैत्रीभाव और निष्ठा से दीनों की सेवा में संलग्न, समाज और व्यक्ति के जीवन में समता की सिद्धि में रत एवं मानव-कल्याण में निष्ठावान् समत्वार्थी कहलाता है।।४६-४७।।

समता निश्चय ही उत्तम निष्ठा है, इसकी सिद्धि कठिन है। कर्मयोग के द्वारा सत्यनिष्ठ पुरुष ही इस सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।।४८।। अभ्यास द्वारा लोकार्थी, संयमी, दृढ़ निश्चयवान्, न्यायनिष्ठ और अहंवाद से रहित पुरुष ही कर्मयोग के लिए सशक्त है।।४९।। परमनिष्ठा से तप्त, निष्काम भावना से समन्वित तथा कर्तव्य से किया कर्म ही योगयुक्त कहलाता है।।५०।। क्रिया में संलग्न, समत्व योग में लीन, सब कामनाओं से निस्पृह (निस्वार्थ) पुरुष ही योगयुक्त है।।५१।। समता, सत्य, निष्काम निष्ठा तथा मनुष्यता से अलंकृत, नित्य लोकहित में संलग्न कर्मयोगी कहलाता है।।५२।। कार्यशीलता,

कार्यशीलं लोकहितं समत्वं न्यायनिष्ठता ।
निष्कामकर्माभिरतिः कर्मयोगः प्रशस्यते ।।५३।।

कार्यकर्माभिरमणं व्यवहारान्वितं व्रतम् ।
ज्ञानं कर्मसु कौशल्यं कार्यशीलं प्रशस्यते ।।५४।।

सदुद्देश्यसमायुक्तं स्वार्थाहङ्कारनिर्गतम् ।
लोकार्थाय कृतं कर्म निष्कामं कर्म वै स्मृतम् ।।५५।।

समाजः

सुधीः समत्वसंसिद्ध्यै समाजोत्कर्षहेतवे ।
रहितं वर्गसङ्घर्षात् समाजं स्थापयेत् समम् ।।५६।।

स्वराज्यं समताराज्यं श्रम-श्रमिक-गौरवम् ।
लोकार्थो लोकतन्त्रं च समाजः सम उच्यते ।।५७।।

दमनाधिप्यनिर्मुक्तं श्रमिक-क्षेमशासनम् ।
वृत्तेः समाजीकरणं व्यवस्था लोकतान्त्रिकी ।।५८।।

लोककल्याणसंसृष्टा उद्योगाः सार्वलौकिकाः ।
सर्वेभ्यो वृत्तिसौलभ्यं जीवनानन्दसाधनम् ।।५९।।

संस्कृतिः समतामूला वर्गवैषम्यनिर्गता ।
रक्षा सर्वाधिकाराणां साम्यराज्यगुणाः स्मृताः ।।६०।।

लोककल्याण, समता, न्याय के प्रति निष्ठा तथा निष्काम कर्मों में रुचि कर्मयोग कहलाता है।।५३।। कर्तव्य कर्मों में लगन, व्यवहार से समन्वित संकल्प, ज्ञान, कार्यों में कौशल कार्यशील कहलाता है।।५४।। अच्छे उद्देश्य से सम्पन्न, स्वार्थ और अहंकार से रहित तथा लोककल्याण के निमित्त किया गया कर्म निःसन्देह निष्काम कर्म है।।५५।।

बुद्धिमान् समता की सिद्धि तथा समाज के उत्कर्ष के हेतु वर्गसंघर्ष से रहित समसमाज को स्थापित करे।।५६।। स्वराज्य, समता राज्य, श्रम और श्रमिकों का गौरव, लोक-कल्याण और लोकतन्त्र समसमाज कहलाता है, अर्थात् ये सब उसके प्रमुख सद्‌गुण या लक्षण हैं।।५७।। दमन और आधिपत्य से रहित, श्रमिकों का कल्याणकारी शासन, उद्योगों का समाजीकरण, लोकतान्त्रिक व्यवस्था, लोककल्याण पर निर्मित सार्वलौकिक उद्योग, सबके लिए व्यवसाय, रोजगार की सुगमता तथा जीवनानन्द के साधन, वर्ग-विषमता से रहित तथा समता पर आश्रित संस्कृति, सबके अधिकारों की रक्षा समता-राज्य के सद्‌गुण हैं।।५८-६०।। समसमाज में अच्छे पुरुष स्वभावतः समता, सबका

समे समाजे सुजनाः सेवन्ते सहजं समम्।
सर्वोत्थानं समोत्कर्षं सौभ्रात्रं सहकारिताम्।।६१।।

जातिवंशपदानां ते दर्पाहङ्कारनिर्गताः।
वर्गसङ्घर्षनिर्मुक्ताः समाः सर्वोपकारकाः।।६२।।

सर्वक्षेत्रेषु सन्न्यायं लोकतन्त्रं नृगौरवम्।
कल्याणोत्कर्षसौविध्यं यत्नतो वर्धयन्ति ते।।६३।।

साम्याधृतव्यवस्थायां श्रम-व्यक्तित्व-गौरवम्।
स्वातन्त्र्यं समतामूलं सहकार्यसमन्वितम्।।६४।।

आधिपत्याद् विनिर्मुक्तिं शोषणादभिरक्षणम्।
सौविध्यं लोकयात्रायै समोत्कर्षाय साधनम्।।६५।।

प्रबन्धे ह्यधिकारं च वर्तनं मानवोचितम्।
सर्वस्थितौ लोकरक्षां लभन्ते श्रमिका जनाः।।६६।।

समाजहितसंवृद्ध्यै समता-न्यायसिद्धये।
व्यापारोद्योगलाभाः स्यू राज्यादेशनियन्त्रिताः।।६७।।

श्रमिक-क्षेम-सम्पन्नं समत्वेन समन्वितम्।
भूषितं जनकल्याणैः समाजोत्कर्षसंयुतम्।।६८।।

प्रेरितं लोकभावेन शोषणाधिप्यनिर्गतम्।
आर्थिकं संविधानं हि सर्वश्रेष्ठमुदाहृतम्।।६९।।

उत्थान, सर्वांगीण विकास, बन्धुता और सहकारिता का अनुष्ठान करते हैं। जाति, वंश और पद के अहंकार से रहित, वर्गसंघर्ष से निर्मुक्त तथा सबके उपकारी होते हैं एवं सबके प्रति समभाव रखते हैं। वे सब क्षेत्रों में न्याय, लोकतन्त्र, मानव-गौरव, तथा जनकल्याण और उत्कर्ष की सुविधा यत्नपूर्वक बढ़ाते हैं।।६१-६२।। समता पर आश्रित व्यवस्था में श्रम और व्यक्तित्व का गौरव, सहकार्य से समन्वित समतामूलक स्वतन्त्रता, आधिपत्य से रिहाई, शोषण से रक्षा, जीवन-निर्वाह की सुविधा, सर्वांगीण उत्कर्ष के लिए साधन, प्रबन्ध में अधिकार तथा मानवोचित रोजगार और रोजी एवं सभी स्थितियों में लोकरक्षा श्रमिक लोग प्राप्त करते हैं।।६३-६६।। समाजहित की वृद्धि तथा समता और न्याय की सिद्धि के लिए व्यापार, उद्योग और लाभ आदि राज्य के आदेश द्वारा नियन्त्रित हों।।६७।। श्रमिकों के कल्याण से सम्पन्न, समता से समन्वित, जनकल्याण से भूषित, सामाजिक उत्कर्ष से सम्पन्न, लोकभावना से प्रेरित एवं शोषण और आधिपत्य से निर्मुक्त आर्थिक व्यवस्था ही सर्वश्रेष्ठ है।।६८-६९।। समाज के उत्कर्ष की सिद्धि

समाजोत्कर्ष-संसिद्ध्यै जनकल्याणवृद्धये ।
उद्योगानां महाङ्गानां समाजीकरणं चरेत् ।।७०।।

सुव्यवस्थितराष्ट्रे वै समाजीकृतसम्पदः ।
विनाशयति वैषम्यं वर्गसङ्घर्षशोषणे ।।७१।।

प्रतिष्ठापयते न्यायं श्रमिकाणां च गौरवम् ।
संवर्धयति सौभ्रात्रं राष्ट्रोत्कर्षं नृमङ्गलम् ।।७२।।

सम्पदं लोकयात्रार्थं लोकः सर्वः समर्जयेत् ।
अधिकं यदि सामर्थ्यं तल्लोकार्थं समर्पयेत् ।।७३।।

लोकतन्त्र-समायुक्ते समाजे समतास्थिते ।
लोकसेवासमोत्कर्षः स्वातन्त्र्यं सहकारिता ।।७४।।

लोकन्यायसुसम्पुष्टिः सौजन्यं साम्यसंयमौ ।
लोकार्थस्य सुसंवृद्धिः संस्कृतिः समुदाहृता ।।७५।।

व्यक्तित्वं समतासिद्धं समष्टेर्भावविभूषितम् ।
मानवत्व-समायुक्तं लोकात्मोत्कर्षतत्परम् ।।७६।।

लोकज्ञानेन सम्पन्नं शील-साहस-संयुतम् ।
समे समाजे सुजनैः श्रेष्ठव्यक्तित्वमुच्यते ।।७७।।

तथा जनकल्याण की वृद्धि के लिए बड़े-बड़े उद्योगों का समाजीकरण किया जाय।।७०।। सुव्यवस्थित राष्ट्र में समाजीकृत व्यवसाय विषमता, वर्गसंघर्ष और वर्गशोषण को नष्ट करते हैं, न्याय और श्रमिकों के गौरण को प्रतिष्ठित करते हैं एवं बन्धुता, राष्ट्र का उत्कर्ष तथा मानव-मंगल को बढ़ाते हैं।।७१-७२।। लोकयात्रा, अर्थात् जीवन-निर्वाह के निमित्त सभी लोग सम्पत्ति को, धन को अर्जित करें, यदि उनका अधिक सामर्थ्य हो, तो उसे लोक-कल्याण के निमित्त अर्पित करें।।७३।। लोकतन्त्र से सम्पन्न, समता पर आश्रित समाज में लोक-सेवा, सर्वांगीण उत्कर्ष, स्वतन्त्रता, सहकारिता, लोकन्याय की पुष्टि, सौजन्य, समता, संयम, लोक-कल्याण की वृद्धि संस्कृति कहलाती है, अर्थात् उस संस्कृति के ये लक्षण हैं।।७४-७५।। समता से सिद्ध, समष्टि की भावना से विभूषित, मानवता से सम्पन्न, संसार तथा अपने उत्कर्ष में तत्पर, लोकज्ञान से युक्त, शील और साहस से सम्पन्न व्यक्तित्व समसमाज में सज्जनों द्वारा श्रेष्ठ व्यक्तित्व कहा जाता है।।७६-७७।।

लोकतन्त्रम्

स्वातन्त्र्यं जीवनप्राणाः सर्वमानवगौरवम् ।
प्रबुद्धं लोकतन्त्रं वै तस्योत्कृष्टप्रसाधनम् ।।७८।।

सर्वेषु संविधानेषु श्रेष्ठं वै लोकतान्त्रिकम् ।
सर्वे वै राष्ट्रिका यस्मिन् सर्वसत्तासमन्विताः ।।७९।।

समतासहितं न्यायं स्वातन्त्र्यमधिकारकम् ।
मानवं गौरवं ज्ञानमैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति ते ।।८०।।

स्वातन्त्र्यं देशबन्धुत्वं समत्वं सहकारिता ।
न्यायो नराधिकारश्च लोकतन्त्रं प्रशस्यते ।।८१।।

समत्वं लोकतन्त्रस्य गुणो नैसर्गिकः स्मृतः ।
सर्वक्षेत्रेषु तद्वृद्धिस्तन्त्रस्य ध्येयमुच्यते ।।८२।।

जनशक्तिः समाजस्य शक्तेर्हि मूलकारणम् ।
जनशक्त्या धृतं राज्यं लोकतान्त्रिकमुच्यते ।।८३।।

जनशक्त्यभिवृद्धिर्हि जनकल्याणसाधनम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जनशक्तिं विवर्धयेत् ।।८४।।

तितिक्षुर्लोकसन्निष्ठः कार्यशीलः पराक्रमी ।
समत्वार्थी सदादर्शः सौम्यः सर्वोपकारकः ।।८५।।

स्वतन्त्रता जीवन का प्राण है, सब मनुष्यों का गौरव है। सजग और ज्ञान-सम्पन्न लोकतन्त्र ही उसका उत्कृष्ट साधन है।।७८।। सब संविधानों में लोकतान्त्रिक संविधान ही श्रेष्ठ है। इसमें ही सभी नागरिक (राष्ट्रिक) सर्वसत्ता से समन्वित होते हैं, अर्थात् राज्य की सब शक्ति उनमें निहित होती है। वे समतासम्पन्न न्याय, स्वतन्त्रता, अधिकार, मानव-गौरव, ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं।।७९-८०।। स्वतन्त्रता, देशबन्धुता, समता, सहकारिता, न्याय और मानव अधिकार लोकतन्त्र कहलाते हैं, अर्थात् ये ही लोकतन्त्र के प्रमुख लक्षण हैं।।८१।। समता लोकतन्त्र का स्वाभाविक गुण है । सब क्षेत्रों में उसकी वृद्धि लोकतन्त्र का लक्ष्य है।।८२।। जनता की शक्ति ही समाज की शक्ति का मूल कारण है। जनशक्ति पर निर्मित राज्य ही लोकतान्त्रिक कहा जाता है।।८३।। जनशक्ति की वृद्धि ही जनकल्याण का साधन है, इसलिए शुभ यत्नों द्वारा जन-शक्ति बढ़ायी जाय।।८४।। सहनशील, लोकनिष्ठ, कार्यशील, पराक्रमी, समता के लिए प्रयत्नशील, उत्तम आदर्श से सम्पन्न, सौम्य (कोमल, दूसरों का हितैषी), सबका उपकारक, देशभक्त, सदाचारी, न्याय

देशभक्तः सदाचारी न्यायस्वातन्त्र्यनिष्ठितः ।
सहकार्ये राष्ट्रहिते रतो वै लोकतान्त्रिकः ।।८६।।

नराधिकारसम्माने ये नराः सर्वमानवम् ।
आत्मतुल्यं हि मन्यन्ते ते वै सन्नागराः स्मृताः ।।८७।।

लोकतान्त्रिकभावेन सम्भृतो दृढनिष्ठया ।
समाजोत्कर्षसंलग्नो यः स सन्नागरः स्मृतः ।।८८।।

कर्मण्यो राजनीतिज्ञः समाजोन्नतिहेतवे ।
प्रसाधयेत् प्रयत्नेन विधानं लोकतान्त्रिकम् ।।८९।।

पोषयेत् तस्य सम्मानं नीतिसिद्धान्तमान्यताः ।
शोधयेत् तस्य वैकल्यं सद्गुणांश्च प्रसारयेत् ।।९०।।

शिक्षयेज्जनतां तस्य लक्ष्यपद्धतिनीतिषु ।
सार्वलौकिककर्तव्ये समाजस्य परिस्थितौ ।।९१।।

मताधिकारसम्पन्ना जनता राष्ट्रनिष्ठया ।
सेनावर्गदलाधिप्यं नृपतन्त्रं विरोधयेत् ।।९२।।

कुर्याल्लोकसभासभ्यान् वृत्तशीलगुणान्वितान् ।
देशबन्धुत्वसन्निष्ठान् कर्तव्यन्यायनिष्ठितान् ।।९३।।

और स्वतन्त्रता के प्रति निष्ठावान्, सहकार्य और राष्ट्रहित में संलग्न व्यक्ति ही लोकतान्त्रिक है, अर्थात् लोकतान्त्रिक व्यक्ति के यही सद्गुण हैं।।८५-८६।। जो लोग मानव अधिकार और सम्मान में सब मनुष्यों को अपने समान ही मानते हैं, वे ही अच्छे नागरिक हैं।।८७।। जो लोकतान्त्रिक भावना से सम्पन्न तथा दृढ़ निष्ठा से समाज के उत्कर्ष में संलग्न हैं, वे ही अच्छे नागरिक हैं।।८८।। सक्रिय, निपुण राजनीतिज्ञ समाज की उन्नति के हेतु प्रयत्नपूर्वक लोकतान्त्रिक संविधान को कार्यान्वित करे, उसके सम्मान, सिद्धान्त, रीति और मान्यताओं को पुष्ट करे, उसकी त्रुटियों और कमियों को सुधारे, उसके गुणों को प्रसारित करे और उसके लक्ष्य, पद्धति और नीतियों एवं सार्वलौकिक कर्तव्य और सामाजिक परिस्थितियों से जनता को शिक्षित करे।।८९-९१।। मताधिकार से सम्पन्न जनता राष्ट्रनिष्ठा से सेना, वर्ग और दल के आधिपत्य का बलपूर्वक विरोध करे, शील और आचार के गुणों से सम्पन्न एवं देशबन्धुता, कर्तव्य और न्याय के प्रति निष्ठावान् सज्जनों को लोकसभा का सदस्य बनाए, क्रूरता एवं रूढ़ि को बाहर निकाल कर लोकन्याय को पुष्ट

क्रौर्यं रूढिं निराकृत्य लोकन्यायं प्रपोषयेत् ।
लोककल्याणसम्पन्ने नीतिं रीतिं समर्थयेत् ।।९४।।

सभ्यो लोकसभामध्ये लोकसेवाव्रतान्वितः ।
लोकतन्त्रस्य मर्यादां पद्धतिं परिपालयेत् ।।९५।।

सभाध्यक्षस्य सम्मानं लोकन्यायं प्रपोषयेत् ।
साहसेन विवेकेन भ्रष्टाचारं विरोधयेत् ।।९६।।

रचनात्मकसङ्घर्षैरन्यायं प्रतिरोधयेत् ।
वर्धयेल्लोककल्याणं स्वातन्त्र्यं साम्यबन्धुताम् ।।९७।।

जनविश्वाससम्पन्ना मन्त्रिणो न्यायनिष्ठिताः ।
तत्परा जनसेवायां स्वार्थाहङ्कारनिर्गताः ।।९८।।

न्यायिताभाव-चारित्र्यविवेकोत्साहसाहसैः ।
भजेयुर्जनकल्याणं राष्ट्रोत्कर्षं जगद्धितम् ।।९९।।

मायादम्भेन्द्रजालानि परित्यज्य प्रयत्नतः ।
निष्पक्षमतिभावाभ्यां शासको न्यायमाचरेत् ।।१००।।

लोककल्याणराज्यम्

कुरुते जनकल्याणं सुराज्यं प्रगतिप्रियम् ।
रक्षणं रञ्जनं सेवा प्रजायास्तस्य लक्षणम् ।।१०१।।

करे तथा लोककल्याण से सम्पन्न नीति-रीति का समर्थन करे।।९२-९४।। लोकसभा के सदस्य लोकसेवा के संकल्प से युक्त हो लोकसभा में लोकतन्त्र की मर्यादा और पद्धति का पालन करें, सभाध्यक्ष के सम्मान तथा लोकन्याय को पुष्ट करें, साहस और विवेक के साथ भ्रष्टाचार का विरोध करें, रचनात्मक संघर्ष द्वारा अन्याय को रोकें तथा लोककल्याण, स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता को बढ़ायें। जनता के विश्वास-प्राप्त, न्यायनिष्ठ, लोकसेवा में तत्पर, स्वार्थ और अहंकार से रहित मन्त्री लोकन्यासिता की भावना, चरित्र, विवेक, उत्साह और साहस के साथ जनता का कल्याण, राष्ट्र का उत्कर्ष, जगत् का हित निष्पन्न करें।।९८-९९।। माया (धोखा, जालसाजी), दम्भ (घमण्ड, पाखण्ड, दुष्टता), इन्द्रजाल (दाँव-पेंच, छल-कपट) को यत्नपूर्वक छोड़ कर निष्पक्ष विचारों और भावों द्वारा शासक न्याय का आचरण करें, उसे कार्य रूप में परिणत करें।।१००।।

प्रगतिशील अच्छा राज्य जनकल्याण करता है, प्रजा की रक्षा, रंजन और सेवा उसका लक्षण है।।१०१।। राष्ट्र के कल्याण की वृद्धि, दीनों का पालन, सार्वलौकिक

राष्ट्रकल्याणसंवृद्धिर्दीनानां परिपालनम् ।
सार्वलौकिककल्याणविस्तरः परिपोषणम् ।।१०२।।
लोकजीवननिर्माणं दुराचारस्य शोधनम् ।
लोककल्याणराज्यस्य सद्गुणाः समुदाहृताः ।।१०३।।
उद्योगानां समुत्थानं कृषिवाणिज्यवर्धनम् ।
सर्वेभ्यः श्रमसौलभ्यं वेतनं जीवनोचितम् ।।१०४।।
श्रमिकाणामधीकारा गौरवक्षमतोन्नतिः ।
लोककल्याणराज्यस्य सद्गुणाः समुदाहृताः ।।१०५।।
लोकसंस्कृतिसम्पुष्टिर्ज्ञानविज्ञानविस्तृतिः ।
विदुषां चैव सम्मानः कलाकौशलसम्भृतिः ।।१०६।।
विकलाङ्गस्य शुश्रूषा दौर्गत्येषु सहायता ।
लोककल्याणराज्यस्य सद्गुणाः समुदाहृताः ।।१०७।।

राष्ट्रियत्वम्

सर्वेषां जातिधर्माणां देशबन्धुषु सङ्गतिः ।
देशभक्तिसमायुक्ता राष्ट्रियत्वं प्रकीर्तितम् ।।१०८।।
स्वातन्त्र्यं देशबन्धुत्वं समत्वेन समन्विते ।
लोकतन्त्रं देशभक्ती राष्ट्रियत्वगुणाः स्मृताः ।।१०९।।
लोके मानवमात्रस्य स्वातन्त्र्यं क्षेमवर्धनम् ।
स्वातन्त्र्यरहितं राष्ट्रं विश्वकल्याणघातकम् ।।११०।।

कार्यों का विस्तार और पोषण, लोकजीवन का निर्माण, दुराचार का सुधार कल्याण-राज्य के सद्गुण हैं।।१०२-१०३।। उद्योगों का विकास, कृषि और वाणिज्य की वृद्धि, सबके लिए रोजगार की सुगमता तथा जीवनोचित वेतन, मजदूरों के अधिकार गौरव और क्षमता की उन्नति, लोककल्याण राज्य के सद्गुण हैं।।१०४-१०५।। लोकसंस्कृति की पुष्टि, ज्ञानविज्ञान का विस्तार, विद्वानों का सम्मान, कलाकौशल की सम्पन्नता, विकलांग की सेवा, दुर्गति में सहायता लोककल्याण राज्य के सद्गुण हैं।।१०६-१०७।।

सब सम्प्रदायों और जातियों के देशबन्धुओं में देशभक्ति से सम्पन्न साहचर्य राष्ट्रीयता कहलाती है।।१०८।। समता से युक्त स्वतन्त्रता और देशबन्धुता, लोकतन्त्र और देशभक्ति राष्ट्रीयता के गुण हैं।।१०९।। संसार में मानवमात्र की स्वतन्त्रता कल्याण को बढ़ाने वाली है। स्वतन्त्रता से रहित राष्ट्र विश्वकल्याण का घातक है।।११०।।

देशबन्धुत्वसंसृष्टं राष्ट्रियत्वं विवर्धयेत् ।
समाजोत्कर्षकल्याणं स्वातन्त्र्यं लोकसङ्गतिम् ।।१११।।

समता श्रमिकक्षेमं लोकतन्त्रं मनुष्यता ।
भावनां राष्ट्रियत्वस्य शोभयन्ति हि सद्गुणैः ।।११२।।

देशबन्धुत्वसंसृष्टं स्वातन्त्र्यसमतायुतम् ।
श्रमिक-क्षेमसम्पन्नं राष्ट्रियत्वं प्रपोषयेत् ।।११३।।

देशभक्तिसमायुक्तैर्मानवत्वविभूषितैः ।
हिते मानवमात्रस्य कार्या देशसमुन्नतिः ।।११४।।

अन्ताराष्ट्रियभावेन सम्भृतो राष्ट्रनिष्ठितः ।
राष्ट्रविश्वहितार्थाय लोकनीतिं विधारयेत् ।।११५।।

अन्ताराष्ट्रिय-सौहार्दं मानुष्य-समताश्रितम् ।
विधत्ते विश्वसन्धान-सहयोगौ जगद्धितम् ।।११६।।

लोकनेता

सिद्धान्ते दृढविश्वासो विचारः प्रगतिप्रदः ।
तितिक्षा मतभेदेषु कर्तव्यन्यायनिष्ठता ।।११७।।

भावना लोकसेवाया धैर्य-साहस-भद्रताः ।
लोकतान्त्रिक-नेतृत्वसद्गुणाः समुदाहृताः ।।११८।।

देशबन्धुत्व पर निर्मित राष्ट्रीयता समाज के उत्कर्ष और कल्याण को एवं स्वतन्त्रता और लोक-साहचर्य को बढ़ाती है।।१११।। समता, श्रमिकों का कल्याण, लोकतन्त्र और मनुष्यता निश्चय ही राष्ट्रीयता की भावना को सद्गुणों से अलंकृत करती है।।११२।। देशबन्धुता पर निर्मित, स्वतन्त्रता और समता से युक्त तथा श्रमिकों के कल्याण से सम्पन्न राष्ट्रीयता को पुष्ट किया जाय।।११३।। देशभक्ति से सम्पन्न, मानवता से विभूषित सज्जनों द्वारा मानवमात्र के हित में देश की उन्नति की जाय।।११४।। अन्तर्राष्ट्रीय भावना से सम्पन्न राष्ट्रनिष्ठ व्यक्ति राष्ट्र और विश्व के हित के लिए लोकनीति का विधान करे।।११५।। मनुष्यता और समता पर आश्रित अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द विश्व में मेल और सहयोग को तथा जगत् के हित को बढ़ाता है।।११६।।

सिद्धान्त पर दृढ़ विश्वास, प्रगतिशील विचार, मतभेदों में सहनशीलता, कर्तव्य और न्याय के प्रति निष्ठा, लोकसेवा की भावना, धैर्य, साहस और भद्रता लोकतान्त्रिक नेतृत्व के सद्गुण हैं।।११७-११८।। लोकनेता जनता के अधीन, सेवक और

लोकनेता जनाधीनः सेवको मार्गदर्शकः ।
जनविश्वाससम्पन्नो भजते जनमङ्गलम् ।।११९।।

देशभक्तियुतो नेता लोकाराधनतत्परः ।
विधत्ते त्रस्तदीनानां क्षेमोत्कर्षौ विशेषतः ।।१२०।।

आशानुप्राणितो नेता समताऽऽदर्शसंयुतः ।
साहसोत्साहसंयुक्तो विरोधेनाऽपराजितः ।।१२१।।

रचना-क्रान्ति-सङ्घर्षैः समाजोत्कर्षहेतवे ।
स्थापनाय समत्वस्य प्रयत्नं कुरुतेऽनिशम् ।।१२२।।

निर्माणार्थं समाजस्य लोकनेता दृढव्रतः ।
सार्वलौकिकमर्यादां न्यायेन परिशोधयेत् ।।१२३।।

पोषयेज्जनकल्याणं श्रम-व्यक्तित्वगौरवम् ।
रचनात्मकसामर्थ्यं लोककल्याणभावनाम् ।।१२४।।

राष्ट्रकल्याणपुष्ट्यर्थं राष्ट्रिका दृढनिश्चयाः ।
नेतॄणां सर्वकार्याणां समीक्षां कुर्वतेऽनिशम् ।।१२५।।

नेतृत्वाद् हि निराकृत्य नेतारं गुणवर्जितम् ।
समर्थयन्ति नेतारं गुणवन्तं हि राष्ट्रिकाः ।।१२६।।

मार्गदर्शक है, उसे जनता का विश्वास प्राप्त है, वह जनता के मंगल का अनुष्ठान करता है।।११९।। देशभक्ति से सम्पन्न समाज की आराधना, अर्थात् सेवा में तत्पर नेता त्रस्त और दीनों का कल्याण और उत्कर्ष विशेष रूप से बढ़ाता है।।१२०।। आशा से अनुप्राणित, समता के आदर्श से सम्पन्न, साहस और उत्साह से संयुक्त नेता विरोध से पराजित हुए बिना रचना, क्रान्ति और संघर्ष के द्वारा समाज के उत्कर्ष के निमित्त समता की स्थापना के लिए निरन्तर प्रयत्न करता है।।१२१-१२२।। समाज के निर्माण के लिए दृढ़ संकल्पी लोकनेता सार्वलौकिक मर्यादाओं का न्याय से शोधन करे तथा जनकल्याण, श्रम और व्यक्तित्व का गौरव, रचनात्मक सामर्थ्य या शक्ति, लोक-कल्याण की भावना को पुष्ट करे।।१२३-१२४।। राष्ट्र के कल्याण की पुष्टि के लिए दृढ़निश्चयी राष्ट्रिक (नागरिक) नेताओं के सब कार्यों की नित्य समीक्षा करते हैं।।१२५।। गुणविहीन नेता को नेतृत्व से हटाकर गुणवान् नेता का ही राष्ट्रिक समर्थन करते हैं।।१२६।।

प्रगतिः

संसारे नैतिकादर्शो मानव-संस्कृति-स्थितिः ।
व्यवस्था-न्याय-मर्यादाः परिणामगुणान्विताः ।।१२७।।

सर्वे विकाससम्भूताः प्रगतेः क्षमतायुताः ।
प्रभावयन्ति चान्योन्यं विकसन्ति यथाक्रमम् ।।१२८।।

मानवः स्थितियोगेन सङ्घात-बल-पौरुषैः ।
ज्ञान-चारित्र्य-सेवाभिर्विधत्ते प्रगतिं शुभाम् ।।१२९।।

प्रगत्यर्थी प्रपुष्णाति सङ्गतिं समतान्विताम् ।
लोकन्यायं सदादर्शं विधानं लोकतान्त्रिकम् ।।१३०।।

विरुन्धेत् शोषणं क्रौर्यं दमनं मत्सरं भयम् ।
संस्थापयति सौभ्रात्रं समाजं समताश्रितम् ।।१३१।।

नारीणां सर्वकार्येषु ह्यधिकारः समः स्मृतः ।
तासां समः समोत्कर्षः लोकप्रगतिहेतुकः ।।१३२।।

रचना-क्रान्ति-सङ्घैर्दीनानां हितमाचरेत् ।
तेषामुत्कर्षकल्याणं समाजोन्नतिलक्षणम् ।।१३३।।

सङ्घशक्तिर्महाशक्तिर्निर्बलानां परं बलम् ।
कर्मण्यः सङ्घयोगेन नाशयेत् शोषणं भयम् ।।१३४।।

संसार में नैतिक आदर्श, संस्कृति, परिस्थिति, व्यवस्था, न्याय और मर्यादायें परिवर्तन के गुण से सम्पन्न हैं, अर्थात् ये सभी परिवर्तनशील हैं।।१२७।। विकास द्वारा उद्भूत (उत्पन्न) तथा प्रगति की क्षमता से युक्त ये सब एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा क्रमानुकूल विकसित होते हैं।।१२८।। मनुष्य परिस्थितियों के सम्पर्क और मेल से सहयोग, ज्ञान और पौरुष एवं रचना, क्रान्ति, संघर्ष द्वारा शुभ प्रगति को बढ़ाता है।।१२९।। प्रगति का इच्छुक समता पर आश्रित साहचर्य, लोकन्याय, अच्छे आदर्श, लोकतान्त्रिक व्यवस्था को पुष्ट करता है। शोषण, क्रूरता, दमन, मत्सर (डाह, घमण्ड, लोभ) और भय का विरोध करता है तथा बन्धुता और समता पर आश्रित समाज को प्रतिष्ठित करता है।।१३०-१३१।। सब कामों में स्त्रियों का अधिकार निश्चय ही समान है, उनका समान सर्वांगीण उत्कर्ष समाज की प्रगति का उपकरण है।।१३२।। रचना, क्रान्ति और संघर्ष द्वारा दीनों का हित करे, उनका उत्कर्ष और कल्याण समाज की उन्नति का लक्षण है।।१३३।। संघशक्ति बड़ी शक्ति है, निर्बलों का बड़ा बल है। कर्मण्य संघ प्रक्रिया द्वारा शोषण और भय नष्ट करे।।१३४।। वर्गचैतन्य श्रमिक वर्ग-संघ द्वारा

श्रमिको वर्गचैतन्यो वर्णसङ्घेन यत्नतः।
पोषयेद् वर्गसङ्घर्षं वर्गाधिप्यं विनाशयेत्।।१३५।।

व्यक्तिवादमहंवादं यत्नतः प्रतिरोधयेत्।
जनजागर्तिकल्याणे जनानन्दं विवर्धयेत्।।१३६।।

श्रमिकोत्थानसम्मानं समानोत्कर्षमुद्वहेत्।
स्थापयेल्लोकतन्त्रं च समाजं समतास्थितम्।।१३७।।

रचनात्मकसङ्घर्षो राष्ट्रप्रगतिहेतुकः।
नितरां रचनाहीनः सङ्घर्षो नाशकारकः।।१३८।।

नरः स्वमतिचारित्र्यभावकर्माणि शोधयेत्।
मानवोचितमार्गेण शुभं साध्यं प्रसाधयेत्।।१३९।।

नैतिकत्वम्

मानुष्यं सामुदायित्वं समत्वं न्यायनिष्ठता।
स्वैच्छिका लोकसेवा च नैतिकत्वस्य सद्गुणाः।।१४०।।

आदर्शो नैतिकत्वस्य सद्भिः सामाजिकः स्मृतः।
सङ्गतिप्रेरणाबद्धः समाजक्षेममूलकः।।१४१।।

यत्नपूर्वक वर्ग-संघर्ष को पुष्ट करे, वर्गाधिपत्य को नष्ट करे, व्यक्तिवाद और अहंवाद को यत्नपूर्वक रोके, जनता की जागृति और कल्याण एवं जनता का आनन्द बढ़ाये, श्रमिकों का उत्थान और कल्याण एवं समाजोत्कर्ष ऊंचा उठाये तथा लोकतन्त्र और समता पर आश्रित समाज स्थापित करे।।१३५-१३७।। रचना, क्रान्ति और संघर्ष का यथोचित उपयोग (अनुष्ठान) किया जाना चाहिये। उनके समुचित मेल से जगत् के हित को बढ़ाना चाहिये। रचनात्मक संघर्ष राष्ट्र की प्रगति का साधन है, सर्वथा रचनाहीन संघर्ष नाशकारक है।।१३८।।

रचना ही संघर्ष का लक्ष्य है।

मनुष्य अपने विचार, चरित्र, भाव और कर्मों को सुधारे, मानवोचित मार्ग से शुभ साध्य को साधित करे, अर्थात् प्रगति के लिये समाज-सुधार के साथ-साथ व्यक्ति का सुधार तथा शुभ साधनों का प्रयोग आवश्यक है।।१३९।।

मनुष्यता, सामाजिकता, समता, न्यायनिष्ठा और अपनी इच्छा से की गई लोकसेवा नैतिकता के सद्गुण हैं।।१४०।। नैतिकता के आदर्श सज्जनों द्वारा सामाजिक बताये गये हैं। वे साहचर्य की प्रेरणा से सम्बद्ध तथा समाज-कल्याण-मूलक हैं, अर्थात् समाज-कल्याण और सौहार्द की वृद्धि ही नैतिकता के लक्ष्य हैं।।१४१।। नैतिकता गतिशील

नैतिकत्वं गतिस्त्रोतः प्रगतिस्तस्य सद्गुणः ।
प्रगतिक्षेमसामर्थ्यं परीक्षा तस्य वै स्मृता ।।१४२।।

व्यापकं सर्वकार्येषु सर्वकल्याणसम्भृतम् ।
कर्तव्यसमतायुक्तं नैतिकत्वं परं शुभम् ।।१४३।।

स्वेच्छया प्रेरितं कर्म जनकल्याणभूषितम् ।
निःस्वार्थभावसम्पन्नं समताबुद्धिशोभितम् ।।१४४।।

सदन्तः क्षमतायुक्तं शुभसाधनसम्भृतम् ।
सच्चारित्र्यसमायुक्तं नैतिकं सद्भिरुच्यते ।।१४५।।

अन्धविश्वासनिर्मुक्तिर्मानुष्यं न्यायनिष्ठता ।
लोककल्याणलग्नत्वं नैतिकोत्कर्षसाधनम् ।।१४६।।

चित्तशुद्धिः सदाचारो भावना स्नेहसङ्गतेः ।
औदार्यं स्वार्थनिर्मुक्तं नैतिकोत्कर्षसाधनम् ।।१४७।।

भावना नैतिकत्वस्य स्थितिकालप्रभाविता ।
स्थितौ वैषम्ययुक्तायां विक्रियामधिगच्छति ।।१४८।।

ततस्तस्य विकासार्थं नीतिनिष्ठः प्रयत्नतः ।
व्यवस्थां स्थापयेद्राष्ट्रे कल्याणसमताश्रिताम् ।।१४९।।

है, प्रगति उसका सद्‌गुण है। प्रगति और कल्याण का सामर्थ्य ही नैतिकता की परीक्षा है।।१४२।। सभी कार्यों में व्यापक, सत्य और कल्याण से सम्पन्न, कर्तव्य और समता से युक्त नैतिकता बहुत शुभ है।।१४३।। अपनी इच्छा से प्रेरित जनकल्याण से विभूषित, निःस्वार्थ भाव से सम्पन्न, समष्टि तथा समता से शोभित, अच्छे अन्त की क्षमता से युक्त, अच्छे साधनों से सम्पन्न अच्छे चरित्र से युक्त कर्म ही सज्जनों द्वारा नैतिक कहा गया है, ये सब नैतिक कर्म के आवश्यक लक्षण हैं।।१४४-१४५।। अन्ध-विश्वास से छुटकारा, मनुष्यता और न्याय के प्रति निष्ठा, लोककल्याण में लगन नैतिक उत्कर्ष के साधन हैं।।१४६।। चित्तशुद्धि, सदाचार, स्नेह और साहचर्य की भावना, स्वार्थहीन उदारता नैतिक उत्कर्ष के साधन हैं।।१४७।। नैतिकता की भावना परिस्थिति और काल से प्रभावित है। वह विषमता से युक्त स्थिति में विकृत हो जाती है। इसलिए उसके विकास के निमित्त नीतिनिष्ठ, अर्थात् नैतिकता में अनुरक्त राष्ट्र में कल्याण और समता पर आश्रित व्यवस्था यत्नपूर्वक स्थापित करें।।१४८-१४९।। नीतिनिष्ठ स्वार्थ और विषमता से

स्वार्थ-वैषम्य-सम्पन्ने समाजे नीतिनिष्ठितः।
शोषणस्य विनाशाय न्यायसङ्घर्षमुद्वहेत्।।१५०।।

क्रान्तिशीला नैतिकता मानुष्यसमताधृता।
विनाशयति वैषम्यं दमनं शोषणं भयम्।।१५१।।

प्रतिष्ठापयते न्यायं स्वातन्त्र्यं समतां तथा।
राष्ट्रोत्थानं मनुष्यत्वं वन्धुतां सहकारिताम्।।१५२।।

संस्कृतिः समतामूला वर्गवैषम्यनिर्गता।
लोकन्यायसमायुक्ता मानवत्वेन मण्डिता।।१५३।।

भद्रताज्ञानसम्पन्ना क्षेमोत्कर्षगुणान्विता।
भूषिता लोकतन्त्रेण विद्वद्भिर्नैतिकी स्मृता।।१५४।।

कर्तव्यम्

न्यायः कल्याणमुत्कर्षो नूनं सत्कर्मलक्षणम्।
एतैः समन्वितं कर्म कर्तव्यं समुदाहृतम्।।१५५।।

कल्याणार्थाय जीवानां समाजोत्कर्षहेतवे।
स्वातन्त्र्याय समत्वय संस्कृतेरभिवृद्धये।।१५६।।

आत्मोत्थानाय सेवायै सत्यस्थापनहेतवे।
लोकन्याययुतं कार्यं कर्तव्यं समुदाहृतम्।।१५७।।

सम्पन्न समाज में शोषण के विनाश के लिए न्याय-संघर्ष का संचालन करें।।१५०।। मनुष्यता और समता पर आश्रित क्रान्तिशीला नैतिकता विषमता, दमन, शोषण और भय नष्ट करती है तथा न्याय, स्वतन्त्रता, समता, राष्ट्रोत्थान, मनुष्यता, बन्धुत्व, सहकारिता प्रतिष्ठित करती है।।१५१-१५२।। समतामूलक, वर्गविषमता से रहित, लोकन्याय से युक्त, मानवता से अलंकृत, भद्रता और ज्ञान से सम्पन्न, कल्याण और उत्कर्ष के गुणों से युक्त लोकतन्त्र से भूषित संस्कृति विद्वानों द्वारा नैतिक बतायी गयी है।।१५३-१५४।।

न्याय, कल्याण और उत्कर्ष निःसन्देह सत्कर्म के लक्षण हैं। इनसे युक्त कर्म कर्तव्य है, अर्थात् हमें वही काम करना चाहिये, जिससे न्याय की पुष्टि, कल्याण की वृद्धि तथा जीवन और समाज का उत्कर्ष हो।।१५५।। जीवों के कल्याण के लिए, समाज के उत्कर्ष के हेतु, स्वतन्त्रता, समता, संस्कृति की अभिवृद्धि के लिए, अपने उत्थान तथा सेवा के लिए तथा सत्य की स्थापना के हेतु लोकन्याय से युक्त कार्य कर्तव्य कहा गया है।।१५६-१५७।। न्याय पर निर्मित, कल्याण की क्षमता से युक्त, युग के आदर्शों

कर्तव्यं न्यायसंसृष्टं कल्याणक्षमतायुतम् ।
युगादर्शगुणैर्युक्तं जीवनोत्कर्षसाधनम् ।।१५८।।

अन्यायप्रतिरोधो वै कर्तव्यं परमं स्मृतम् ।
कर्तव्ये निरतो वीरो दुराचारं विरोधयेत् ।।१५९।।

दमनस्य विनाशाय निग्रहार्याय दुकृताम् ।
लोककल्याणसंसिद्ध्यै कार्यं कर्म समाचरेत् ।।१६०।।

अधिकार:

स्वातन्त्र्यं समतामूलं कर्तव्येन समन्वितम् ।
समष्टेर्हितसम्पन्नमधिकारो नृणां स्मृतः ।।१६१।।

अधिकारा मनुष्याणां कर्तव्येन समर्थिताः ।
वर्धयन्ति जनोत्कर्षं समाजोन्नतिगौरवम् ।।१६२।।

कर्तव्यरहिता ह्येते जीवनोन्नतिघातकाः ।
परिपुष्यन्ति पाखण्डमाधिक्यमभिमानताम् ।।१६३।।

नूनमुत्तरदायित्वमधिकारस्य लक्षणम् ।
लोककल्याणसंवृद्धिस्तस्य कर्तव्यमुच्यते ।।१६४।।

से सम्पन्न कर्तव्य जीवन के उत्कर्ष का साधन है।।१५८।। अन्याय का प्रतिरोध निःसन्देह श्रेष्ठ कर्तव्य है। कर्तव्य में संलग्न वीर दुराचार का विरोध करे।।१५९।। दमन के विनाश के लिए, दुष्टों के निग्रह, अर्थात् नियन्त्रण के निमित्त तथा लोककल्याण की सिद्धि के लिए कर्तव्य कर्म किये जाँय।।१६०।।

कर्तव्य से युक्त, समष्टि के हित से सम्पन्न, समतामूलक स्वतन्त्रता ही मनुष्यों का अधिकार है।।१६१।।

कर्तव्य, समाज-कल्याण और समता अधिकार के आवश्यक गुण हैं। इनसे विरहित स्वतन्त्रता नैतिक दृष्टि से अधिकार नहीं समझी जा सकती, उसे नैतिकता-विहीन आधिपत्य ही समझा जा सकता है।

कर्तव्य से समर्थित मनुष्यों के अधिकार जनता का उत्कर्ष तथा समाज की उन्नति और गौरव को बढ़ाते हैं, पर कर्तव्य से रहित अधिकार जीवन की उन्नति के लिए घातक हैं। वे पाखण्ड, आधिपत्य और अभिमान को पुष्ट करते हैं।।१६२-१६३।। निःसन्देह उत्तरदायित्व अधिकार का लक्षण है, लोककल्याण की संवृद्धि उसका कर्तव्य है।।१६४।।

समतासहितो न्यायो जीवनस्याभिरक्षणम् ।
स्वातन्त्र्यं सहयोगस्य विचारस्य च संस्कृतेः ।।१६५।।

सौविध्यं लोकयात्रायै समोत्कर्षाय साधनम् ।
श्रमव्यक्तित्वसम्मानो ह्यधिकारा नृणां स्मृताः ।।१६६।।

अधिकारान् मानवानां कर्तव्यानि च यत्नतः ।
राष्ट्रियो ज्ञानसम्पन्नः संरक्षेत् परिपालयेत् ।।१६७।।

लोकन्यायः

विवेकनिश्चितं सत्यं समभाव-गुणान्वितम् ।
लोकधारणसामर्थ्यं लोकरक्षा-बलान्वितम् ।।१६८।।

भूषितं जनकल्याणैः समष्टेर्हितसंयुतम् ।
तटस्थं वैरनिर्मुक्तं लोकन्यायः प्रकीर्तितः ।।१६९।।

व्यवस्था समता शान्तिः स्वातन्त्र्यं सहकारिता ।
कल्याणोत्कर्षसौहार्दं लोकन्यायगुणाः स्मृताः ।।१७०।।

आधिपत्यपराभूतं क्रौर्यशोषणसंयुतम् ।
विधिमन्यायमूलं च दमनं तस्य शोषणम् ।।१७१।।

समतासहित न्याय, जीवन की समुचित रक्षा, सहयोग तथा विचार और संस्कृति की स्वतन्त्रता, लोकयात्रा, अर्थात् जीवन-निर्वाह की सुविधा, सर्वांगीण उत्कर्ष के साधन, श्रम और व्यक्तित्व का सम्मान निश्चय ही मनुष्य के अधिकार हैं।।१६५-१६६।। ज्ञान-सम्पन्न नागरिक मनुष्यों के अधिकारों और कर्तव्यों की रक्षा यत्नपूर्वक करे और उनका पालन करे, अर्थात् उत्कर्ष और कल्याण के लिए अधिकार और कर्तव्य दोनों की रक्षा और पालन जरूरी है।।१६७।।

विवेक द्वारा निश्चित, समता की भावना से युक्त, लोक को सम्भाले रखने की योग्यता तथा लोकरक्षा की शक्ति से सम्पन्न, जनकल्याण से भूषित, समाज के हित से युक्त, तटस्थ, वैररहित सत्य लोकन्याय कहलाता है। ये सभी लोकन्याय के आवश्यक तत्त्व हैं।।१६८-१६९।। व्यवस्था, समता, शान्ति, स्वतन्त्रता, सहकारिता, कल्याण, उत्कर्ष और सौहार्द लोकन्याय के गुण हैं, अर्थात् इनकी संवृद्धि लोकन्याय है।।१७०।। आधिपत्य से पराभूत, क्रूरता और शोषण से युक्त, अन्यायमूलक कानून तथा उसके दमन और शोषण को कर्तव्यनिष्ठ क्रान्ति तथा लोकतान्त्रिक तरीके से हृदय की दुर्बलता

कर्तव्यनिष्ठितः क्रान्त्या लोकतन्त्रपथेन च।
त्यक्त्वा हृदयदौर्बल्यं यत्नतः प्रतिशोधयेत्।।१७२।।

लोकन्यायविशेषज्ञो विधिस्थितिविशारदः।
शोधयेद् विधिवैकल्यं दोषपूर्णपरम्पराम्।।१७३।।

संवर्धयेत् सदादर्शं मानुष्यसमतायुतम्।
काशयेन्नीतिसिद्धान्तान् प्रगतिक्षेमसम्भृतान्।।१७४।।

ज्ञानम्

ज्ञानं न्यायसमायुक्तं समताक्षेमसम्भृतम्।
चारित्र्योत्कर्षशक्तिभ्यां युतं सज्ज्ञानमुच्यते।।१७५।।

शब्दशास्त्रं महारण्यं सज्ज्ञानं परमं स्मृतम्।
कल्याणोत्कर्षसंसिद्ध्यै सज्ज्ञानं साधयेत् सुधीः।।१७६।।

अन्धविश्वासनिर्मुक्तिः समता सत्यनिष्ठता।
मानुष्ये दृढविश्वासो ज्ञानोत्कर्षप्रसाधनम्।।१७७।।

सत्यस्याचरणं श्रेष्ठं मानवानां परं तपः।
सत्यं वै लोककल्याणं मानुष्यं समदर्शनम्।।१७८।।

संवर्धिष्णु हि सत्यं स्यात् सर्वलोकहितात्मकम्।
काशयेन्नयतत्त्वानि कल्याणार्थं न च स्थितौ।।१७९।।

को छोड़कर यत्नपूर्वक अवरुद्ध करे, रोके, अर्थात् लोकन्याय के बजाय दमन और शोषण को पुष्ट करने वाले कानूनों का डट कर विरोध किया जाय।।१७१-१७२।। लोकन्याय का विशेषज्ञ, कानून और स्थिति का जानकार कानून की त्रुटियों और कमियों तथा दोषपूर्ण परम्पराओं का सुधार करे, मनुष्यता और समता से सम्पन्न अच्छे आदर्श को बढ़ाये, एवं प्रगति और कल्याण से सम्पन्न नीति और सिद्धान्तों को उद्घोषित करे।।१७३-१७४।।

न्याय, समता और कल्याण से सम्पन्न तथा चरित्र और उत्कर्ष की शक्तियों से युक्त ज्ञान सज्ज्ञान कहलाता है।।१७५।। शब्दशास्त्र बड़ा जंगल है, सज्ज्ञान ही श्रेष्ठ है। बुद्धिमान् कल्याण और उत्कर्ष की सिद्धि के लिए सज्ज्ञान की साधना करे।।१७६।। अन्ध-विश्वास से छुटकारा, समता और सत्य पर श्रद्धा, मनुष्यता पर दृढ़ विश्वास ज्ञान के उत्कर्ष के साधन हैं।।१७७।। सत्य का आचरण श्रेष्ठ है, मनुष्य का बड़ा तप है। लोककल्याण, मनुष्यता, समदर्शन ही सत्य है।।१७८।। सर्वलोक का हितकारी सत्य निःसन्देह विकासशील है। वह नई परिस्थिति में कल्याण के निमित्त नये तथ्यों को उद्घोषित

नयादानप्रदाने च विश्वज्ञानसमन्वयः ।
प्रपुष्यन्ति विचारस्य स्वातन्त्र्यं विश्वसङ्गतिम् ।।१८०।।
प्रगतिं सर्वविश्वस्य जनताहितमङ्गलम् ।
ज्ञानविज्ञानसंवृद्धिं विश्वविद्वत्सु भद्रताम् ।।१८१।।
नानादेशसमुत्पन्नाः पण्डिताः प्रतिभायुताः ।
ज्ञानविज्ञानशोभाभिर्मण्डयन्ति महीतलम् ।।१८२।।
ज्ञानार्थी निरहङ्कारो मानयेत् सर्वपण्डितान् ।
विवेकेन शुभं ज्ञानं सर्वतश्च समाप्नुयात् ।।१८३।।
राष्ट्रस्य संस्कृतिं ज्ञानमाचारमनुशीलयेत् ।
प्रगतिप्रदतत्त्वानि समारक्षेच्च वर्धयेत् ।।१८४।।
विश्वस्य सञ्चितं ज्ञानं विज्ञानमनुशीलयेत् ।
तयोः प्रगतिदं तत्त्वं निवेशयेत् स्वसंस्कृतौ ।।१८५।।
नवीनस्थितिसन्दर्भे प्रगतिक्षेमहेतवे ।
ज्ञानस्य नवतत्त्वानि पण्डितः प्रतिपादयेत् ।।१८६।।

शिक्षा

सर्वाधिकारो विद्यायां सा वै सर्वस्य गौरवम् ।
तस्याः सर्वस्य सौविध्यं कल्याणोत्कर्षसाधनम् ।।१८७।।

करे।।१७९।। सिद्धान्तों का आदान-प्रदान तथा विश्वज्ञान का समन्वय विचारों की स्वतन्त्रता तथा विश्व के साहचर्य को, सम्पूर्ण संसार की प्रगति को, जनता के हित-मंगल को, ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि को और संसार के विद्वानों में भद्रता को पुष्ट करते हैं।।१८०-१८१।। विभिन्न देशों में उत्पन्न प्रतिभासम्पन्न पण्डित ज्ञान और विज्ञान की शोभा से संसार को अलंकृत करते हैं।।१८२।। ज्ञान का इच्छुक निरहंकार हो सभी पण्डितों का सम्मान करे तथा विवेक के साथ अच्छे ज्ञान को सब जगह से प्राप्त करे।।१८३।। राष्ट्र की संस्कृति, ज्ञान और आचार का अध्ययन किया जाय तथा प्रगतिशील तत्त्वों की ठीक प्रकार से रक्षा की जाय और उन्हें बढ़ाया जाय।।१८४।। संसार के संचित ज्ञान और विज्ञान का अध्ययन किया जाय, उनके प्रगतिशील तत्त्वों को अपनी संस्कृति में समाविष्ट किया जाय।।१८५।। नवीन स्थिति के सन्दर्भ में प्रगति और कल्याण के निमित ज्ञान के नये तत्त्वों को पण्डित प्रतिपादित करे।।१८६।।

विद्या पर सबका अधिकार है, वह सबका गौरव है। सबके लिए उसकी सुविधा कल्याण और उत्कर्ष का साधन है।।१८७।। सर्वसंमत विधान से व्यक्ति और राष्ट्र के

सर्वसाम्यविधानेन व्यक्तिराष्ट्राभिवृद्धये ।
ज्ञानविज्ञानशिल्पेषु सर्वान् सम्यक् सुशिक्षयेत् ।।१८८।।
प्रौढाय दीनतप्ताभ्यां स्त्रियै च श्रमिकाय च ।
राज्यं विशेषसौविध्यं शिक्षायाः सम्प्रसाधयेत् ।।१८९।।
लोकतान्त्रिकचारित्र्य-नीतिसिद्धान्तसंस्कृतौ ।
लोकतन्त्रयुतं राज्यं शिक्षयेत् सर्वराष्ट्रिकान् ।।१९०।।
राज्यं कल्याणसङ्कल्पं क्षमताक्षेमवृद्धये ।
सर्ववर्गेषु यत्नेन जनशिक्षां प्रसारयेत् ।।१९१।।
वैज्ञानिकप्रयोगेण तथ्यं ज्ञानं परीक्षयेत् ।
सत्यं विज्ञानसंसिद्धं क्षेमयुक्तं प्रसारयेत् ।।१९२।।
प्रयोगानुभवेनैव तर्कपूर्णानुमानतः ।
सिद्धं ज्ञानं हि विद्वद्भिर्वैज्ञानिकमुदाहृतम् ।।१९३।।
चिन्तनं युक्तिसम्पन्नं प्रयोगानुभवाश्रितम् ।
वस्तुस्थितिषु संसृष्टं सद्भिर्वैज्ञानिकं स्मृतम् ।।१९४।।
शिक्षको दम्भपाखण्डे जडत्वं मोहमुत्सृजेत् ।
युक्तियुक्तविचारेण सज्ज्ञानं प्रतिपादयेत् ।।१९५।।
समः सर्वेषु शिष्येषु शिक्षको ज्ञानसम्भृतः ।
ज्ञानचारित्र्यसद्भावैः सर्वशिष्यान् सुशिक्षयेत् ।।१९६।।

कल्याण के निमित्त सबको ठीक प्रकार से ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल में शिक्षित किया जाय।।१८८।। प्रौढ़, दीन, पीडित, स्त्री और श्रमिक के लिए राज्य शिक्षा की विशेष सुविधा ठीक तौर पर निष्पन्न करे।।१८९।। लोकतान्त्रिक चरित्र, नीति, सिद्धान्त और संस्कृति में लोकतान्त्रिक राज्य सब नागरिकों को शिक्षित करे।।१९०।। कल्याण-संकल्प राज्य क्षमता और कल्याण की वृद्धि के निमित्त सभी वर्गों में यत्नपूर्वक जनशिक्षा को प्रसारित करे।।१९१।। वैज्ञानिक प्रयोग से तथ्य (वास्तविकता) और ज्ञान की परीक्षा की जाय, तथा विज्ञान से सिद्ध, कल्याण से युक्त सत्य प्रसारित किया जाय।।१९२।। प्रयोग और अनुभव तथा तर्कपूर्ण अनुमान से सिद्ध ज्ञान ही विद्वानों द्वारा वैज्ञानिक कहा जाता है।।१९३।। युक्तियुक्त प्रयोग और अनुभव पर आश्रित, वास्तविक स्थितियों पर निर्मित चिन्तन ही सज्जनों द्वारा वैज्ञानिक कहलाता है।।१९४।। शिक्षक दम्भ, पाखण्ड, जड़ता और मोह को छोड़ युक्तियुक्त विचार द्वारा सज्ज्ञान को प्रतिपादित करे।।१९५।। ज्ञानसम्पन्न शिक्षक सब शिष्यों में समभाव रखते हुए ज्ञान, चरित्र और सद्भावना द्वारा

यो विवेकसमायुक्तं ज्ञानं शीलहितान्वितम् ।
अध्यापयति यत्नेन स स्मृतः शिक्षकोत्तमः ।।१९७।।

विद्यार्थी जडतां त्यक्त्वा ज्ञानविज्ञानमाप्नुयात् ।
भावबुद्धिशरीराणां क्षमतामभिवर्धयेत् ।।१९८।।

न्याय-मानुष्य-सन्निष्ठा ज्ञानविज्ञानसञ्चयः ।
स्वातन्त्र्यं भद्रतायुक्तं सहकार्यं नयान्वितम् ।।१९९।।

शीलचारित्र्यसम्पुष्टिर्देशबन्धुत्वभावना ।
प्रेरणा लोकसेवायाः सङ्गोष्ठी ज्ञानवृद्धये ।।२००।।

सहपाठिषु सौहार्दं गुरुगौरवरक्षणम् ।
सौजन्यं व्यवहारे वै छात्राणां सद्गुणाः स्मृताः ।।२०१।।

मनोयोगविवेकाभ्यां विद्यार्थी सत्यनिष्ठितः ।
ज्ञानस्य नवतत्त्वानि लोकक्षेमं प्रसारयेत् ।।२०२।।

सम्यग् राष्ट्रहितज्ञाने जनतां परिशिक्षयेत् ।
वैज्ञानिकप्रयोगेण कृष्युद्योगौ प्रवर्धयेत् ।।२०३।।

जीवनं यो विजानाति कल्याणानन्दसाधनम् ।
संवर्धयति कल्याणमानन्दं वितनोति सः ।।२०४।।

सब शिष्यों को शिक्षित करे।।१९६।। जो विवेक से सम्पन्न, शील और कल्याण से युक्त ज्ञान यत्नपूर्वक पढ़ाता है, वह उत्तम शिक्षक है।।१९७।। विद्यार्थी जड़ता को छोड़कर ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करे, भाव, बुद्धि और शरीर की क्षमता बढ़ाये।।१९८।। न्याय और मनुष्यता के प्रति श्रद्धा, ज्ञानविज्ञान का संचय, भद्रता-युक्त स्वतन्त्रता, नैतिकता-युक्त सहकार्य, शील और चरित्र की पुष्टि, देशबन्धुत्व की भावना, लोकसेवा की प्रेरणा, ज्ञान की वृद्धि के लिए गोष्ठी, सहपाठियों में सौहार्द, गुरु के गौरव की रक्षा, व्यवहार में सौजन्य विद्यार्थियों के सद्गुण हैं।।१९९-२०१।। सत्यनिष्ठ विद्यार्थी दत्तचित्तता और विवेक से ज्ञान के नवीन तत्त्वों तथा लोककल्याण को प्रसारित करे, जनता को ठीक प्रकार राष्ट्रहितकारी ज्ञान में शिक्षित करे तथा वैज्ञानिक प्रयोगों से कृषि-उद्योग की वृद्धि करे।।२०२-२०३।। जो व्यक्ति जीवन को कल्याण और आनन्द का साधन जानता है, वह कल्याण की वृद्धि तथा आनन्द का विस्तार करता है।।२०४।।

जीवनं योऽभिजानाति सर्वलोकहितात्मकम् ।
स सेवासाम्ययोगाभ्यां वितनोति जगद्धितम् ।।२०५।।

लोकशीलम्

मृदुता मुदिता मैत्री मानवत्वं मनीषिका ।
सौजन्यं समतास्त्रोतः सेवा सौहार्दसम्भृता ।।२०६।।

सामाजिकत्वसंवित्तिर्वैदुष्यं विनयान्वितम् ।
गुणग्राहकगाम्भीर्यं लोकशीलं प्रशस्यते ।।२०७।।

लोकप्राणितचारित्र्यं स्वातन्त्र्यं शिष्टतान्वितम् ।
राष्ट्रकर्तव्यनिर्वाहः शौर्यं मानुष्यमण्डितम् ।।२०८।।

प्रातिवेशिकसौभ्रात्रं सौहृद्यं देशबन्धुषु ।
श्रमव्यक्तित्वसम्मानो लोकशीलं प्रशस्यते ।।२०९।।

सत्याधृतसदाचारः सत्कार्ये सहकारिता ।
व्यवहारान्वितं ज्ञानं कल्याणोत्कर्षवर्धनम् ।।२१०।।

कारुण्यं स्वार्थनिर्मुक्तं समता क्षेत्रसंश्रिता ।
लोककल्याणलग्नत्वं लोकशीलं प्रशस्यते ।।२११।।

सद्बुत्तिरुद्यमोत्साहौ विवेकान्वितसाहसम् ।
सौम्यत्वं भावसंशुद्धिर्जीवनादर्शरक्षणम् ।।२१२।।

जो व्यक्ति जीवन को सम्पूर्ण लोक का हितकारी समझता है, वह सेवा और समता के योग के द्वारा संसार के हित का विस्तार करता है।।२०५।।

कोमलता, प्रसन्नता, मैत्री, मानवता, सूझ (प्रज्ञा), समतास्त्रोत सौजन्य, सौहार्दपूर्ण सेवा, सामाजिकता की संवित्ति (ज्ञान, चेतना, भावना), विनय युक्त विद्वत्ता, गुणों को ग्रहण करने वाली गम्भीरता, लोकशील कहलाती है।।२०६-२०७।। लोकभावना से अनुप्राणित चरित्र, शिष्टता से युक्त स्वतन्त्रता, राष्ट्रकर्तव्य का निर्वाह (पालन), मनुष्यता से अलंकृत शौर्य, पड़ोसियों में बन्धुता, देश-बन्धुओं में सौहार्द, श्रम और व्यक्तित्व का सम्मान लोकशील कहलाता है।।२०८-२०९।। सत्य पर आश्रित सदाचार, सत्कार्य में सहयोग, कल्याण और उत्कर्ष को बढ़ाने वाला व्यवहार-सम्पन्न ज्ञान, स्वार्थ से निर्मुक्त करुणा, कल्याण से समन्वित समता, लोककल्याण में लगन लोकशील कहलाता है।।२१०-२११।। सभा में कल्याण के प्रति मानसिक दृढ़ता, सद्बुद्धि, भद्रता, आत्म-नियन्त्रण, समाजकल्याण की पुष्टि, लोकन्याय का दृढ़तापूर्ण आचरण, प्रस्ताव (विषय)

केलिक्रीडाप्रमोदेषु शीलस्य परिपालनम् ।
संयमो भोगतृष्णासु लोकशीलं प्रशस्यते ।।२१३।।

सत्पुरुषः

लोकस्य संग्रहार्थं यः समो भूत्वा फलं त्यजन् ।
सत्कार्यं कुरुते नित्यं महाकर्ता स उच्यते ।।२१४।।

आशा-शील-प्रमायुक्तो धृत्युत्साहक्षमायुतः ।
लोकात्मोत्कर्षसंलग्नो न्यायशीलो दृढव्रतः ।।२१५।।

सत्यः प्राज्ञः प्रगत्यर्थी मानुष्य-समतायुतः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारो नरः सात्त्विक उच्यते ।।२१६।।

समतासत्यसम्पन्नो विद्यावृत्तव्रतान्वितः ।
शोभितः शौर्यशीलाभ्यां भावभूषणभूषितः ।।२१७।।

निर्भीको निरहङ्कारो निष्कामो न्यायनिष्ठितः ।
मण्डितो मानवत्वेन मानवो मानितो मतः ।।२१८।।

से सम्बन्धित युक्तियुक्त, कल्याण और नय (नैतिकता, सिद्धान्त, आदर्श) से समन्वित वाक्य, मतभेद में सहनशीलता लोकशील कहलाता है।।२१२।। सद्वृत्ति (शुद्ध आचार, व्यवहार, व्यवसाय), परिश्रम, उत्साह, विवेकयुक्त साहस, सौम्यता (कोमलता, निषिद्ध विषयों के चिन्तन का परित्याग, दूसरों के हित की कामना), भावों की शुद्धि (दुर्भावनाओं का परित्याग, सद्भावनाओं की पुष्टि, दूसरों के साथ कपट-रहित व्यवहार), जीवन के आदर्शों की रक्षा, खेल तथा क्रीड़ा और विनोद में शील का पालन, भोगतृष्णा में संयम लोकशील कहलाता है।।२१३।।

लोकसंग्रह (लोककल्याण) के निमित्त जो व्यक्ति फल का परित्याग कर समभाव रखते हुए सत्कार्य करता है, वह महाकर्ता है।।२१४।। आशा, शील, प्रत्यक्ष ज्ञान से युक्त, धृति, उत्साह और क्षमा से युक्त, संसार और अपने उत्कर्ष में संलग्न, न्यायशील, दृढ़वती, सत्यवादी, बुद्धिमान्, प्रगतिशील, मनुष्यता और समता से सम्पन्न, सिद्धि तथा असिद्धि में निर्विकार व्यक्ति सात्त्विक पुरुष कहलाता है।।२१५-२१६।। समता तथा सत्य से सम्पन्न, विद्या, आचरण तथा व्रत (मानसिक दृढ़ता) से युक्त, शौर्य तथा शील से शोभित, सद्भावना के भूषणों से विभूषित, निर्भीक, निरहंकारी, निष्काम (निजी कामनाओं के प्रति निस्पृह), न्यायनिष्ठ, मानवता से अलंकृत व्यक्ति सम्मानित मानव माना जाता है।।२१७-२१८।।

शुभकामना

सर्वः प्राप्नोतु मानुष्यं नैतिकत्वं सुसंस्कृतिम् ।
सज्ज्ञानं सद्विवेकं च सद्वृत्तिं प्रगतिं यशः ।।२१९।।

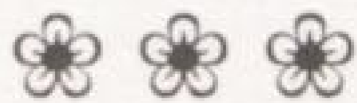
सर्वो भवतु कर्मण्यः सत्यार्थी विश्वनिष्ठितः ।
देशभक्तः समत्वार्थी लोकार्थी लोकतान्त्रिकः ।।२२०।।

सर्वो भजतु कल्याणं बन्धुत्वं सहकारिताम् ।
लोकन्यायं सदादर्शं स्वातन्त्र्यं जगतो हितम् ।।२२१।।

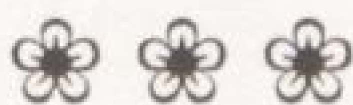
सर्वः पश्यतु भद्राणि सर्वो गच्छतु सत्पथे ।
सर्वोऽत्र शान्तिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ।।२२२।।

सर्वे संघाः स्वसत्कृत्यैर्वर्धयन्तु जगद्धितम् ।
प्रगतिं सर्वसौहार्दं समत्वं सहकारिताम् ।।२२३।।

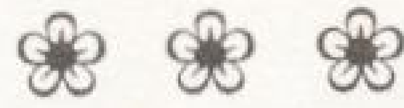
प्रतिभाशीलसम्पन्ना मण्डयन्तु महाशयाः ।
सङ्गोष्ठीं भद्रतायुक्तां सदादर्श-समन्विताम् ।।२२४।।



सभी मानव मनुष्यता, नैतिकता, अच्छी संस्कृति, सज्ज्ञान, विवेक, सद्वृत्ति (अच्छा आचरण, व्यवहार, व्यवसाय) प्रगति और यश प्राप्त करें।।२१९।। सभी कर्मण्य (सक्रिय, निपुण), सत्यार्थी, विश्वनिष्ठ, देशभक्त, समत्वार्थी, लोकार्थी तथा लोकतान्त्रिक हों।।२२०।। सभी कल्याण, बन्धुता, सहकारिता, लोकन्याय, अच्छे आदर्श, स्वतन्त्रता और जनता के हित की आराधना करें।।२२१।। सभी कल्याण देखें, सत्पथ पर चलें, शान्ति प्राप्त करें, सर्वत्र आनन्दित हों।।२२२।। सभी संघ अपने अच्छे कामों द्वारा जगत् का हित, प्रगति, सबके साथ सौहार्द, समता और सहकारिता की वृद्धि करें।।२२३।। प्रतिभा और शील से सम्पन्न व्यक्ति उच्चतम कीर्ति द्वारा भद्रता से युक्त तथा अच्छे आदर्शों से सम्पन्न गोष्ठी को अलंकृत करें।।२२४।।



ग्रन्थ-ग्रन्थकार (प्राचीन) अनुक्रमणी



ग्रन्थ-ग्रन्थकार (नवीन) अनुक्रमणी

